Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनरेश मेहता

का सम्पूर्ण काव्य

समिधा

R
67·8
११-८·2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

102435

मनुष्य के भीतर जो नाना प्रकार के राग-विराग हैं, उनके बीच जब वह अपने अन्तस् में झाँकता है उसे एक भारहीन दिगन्तव्यापी सौन्दर्य-चेतना का साक्षात्कार होता है। एक कवि अपनी काव्य-यात्रा में अपने अन्तस् की उस हिरण्यमयी सच्चाई को साक्षात्कृत करता है। सारी करुणताएँ उसकी दृष्टिक्षेत्र के बाहर चली जाती हैं। केवल सौन्दर्य, केवल मंगल, केवल प्रार्थना का ही अहसास बचा रहता है।

नरेश मेहता की काव्य-दृष्टि में प्रकृति को एक उदात्त रूप में ग्रहण किया गया है। प्रकृति उनकी समूची संस्कृति में एक केन्द्रीय सत्ता बनकर नयी क्रान्ति और नया संस्कार प्रदान करती है। प्रकृति से इस प्रकार का साक्षात्कार पुरुष को अपने विकारों से मुक्त कराता है।

नरेश मेहता की कविताओं में हमें कवि की दृष्टि प्रकृति और पुरुष के उदात्त रूप पर ही गड़ी दिखती है। उनके यहाँ प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर आत्मदान का महत्त्व है। केवल धृति नहीं है, वह उल्लास है, सृजन है, आह्लाद है और एक निरन्तर जीवन्तता है। उसमें संकोच, तिरस्कार या अस्वीकृति नहीं है। वह मनुष्य को एक नव्य मानवीय संस्कार देती है। मनुष्य के भीतर जो आसुरी वृत्तियाँ हैं, उन्हें दैवी वृत्तियों में बदलती चलती हैं।

...कालय
...विश्वविद्यालय
आगत नं० 102435

दिनाँक | सदस्य संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R
67.8
११८.२
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या.........   आगत संख्या 102435

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

DONATION
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिधा

खण्ड—२

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

102435

102435

श्रीनरेश मेहता

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6958
११८.२

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : १९९७

© श्रीनरेश मेहता

लेजर-टाइपसेटिंग
प्रिन्टेक, इलाहाबाद-३

इण्डियन प्रेस प्रा० लिमिटेड
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

दो खण्डों का
संयुक्त मूल्य : ६००.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

पिछले दिनों नंगे पैरों

राग-मन ले, सीढ़ियों की ओर
पिछले दिनों नंगे पैरों ३

खून टपकाते, अँधेरे गुम्बदों के तले
पिछले दिनों नंगे पैरों १५

इतिहास से निरपेक्ष, प्रार्थना के रूबरू
पिछले दिनों नंगे पैरों ११२

काव्य की, निःशब्द अबाधता के बीच
पिछले दिनों नंगे पैरों ११७

देखना एक दिन

माँ १२३
देखना, एक दिन १२३
पुरुषार्थ १२४
कहाँ हुआ? १२५
उस दिन १२६
वही है, वह १२७
द्वार १२८
विपर्यय १२९
विषमता १२९
चिड़ियाँ १३०
आत्मसमर्पण १३०
गन्ध १३१
प्रश्न १३१
सम्भ्रम १३२
सेतुहीनता १३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों?	...	...	१३४
एक स्थिति	...	...	१३४
पूछ देखना	...	...	१३६
जन्म	...	...	१३६
सम्प्रेषण	...	...	१३७
क्या किसी दिन?	...	...	१३७
स्त्री	...	...	१३७
वैषम्य	...	...	१३८
पता नहीं	...	...	१३८
कई बार	...	...	१३९
विलयन ज्वार	...	...	१४०
आना, पर आना	...	...	१४१
बाल्कनी	...	...	१४१
आज यदि	...	...	१४२
स्पर्श-माधुरी	...	...	१४२
नदी और भाषा	...	...	१४३
समझ	...	...	१४४
अपना दर्द	...	...	१४४
भीगना धूप का	...	...	१४५
उन्मुक्तता	...	...	१४५
स्थिति	...	...	१४६
विवशता	...	...	१४६
अनुनय	...	...	१४७
अन्तर	...	...	१४७
सम्बन्ध	...	...	१४७
ऐसा क्यों?	...	...	१४८
आयाम	...	...	१४८
परिणति	...	...	१४८
माया	...	...	१४९
चित्र और उसकी दीवार	...	...	१४९
आबार एशो	...	...	१५०
सायं प्रतीति	...	...	१५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम, एक शब्द-चित्र १५२
टिटहरी १५४
वृक्ष और वह १५६
घर की ओर १५७
कवच १५९
घर १६०
स्मृतिजीव्या १६२
आमेन १६३
क्या किसी दिन १६५
कैसे बता दूँ १६७
हमारे बीच १६८
दाता १६९
वह १७१
अलगूँजा १७२
धूप १७३
व्याकरण १७३
उत्सव १७४
मौन १७५
कौन १७५
इकतारा १७६
मुद्रा १७६
उपस्थिति १७७
परामर्श १७८
सुझाव १७८
संज्ञा से सर्वनाम १७९
किस-किसको? १८१
अग्निबीज १८१
काली कविता १८२

संशय की एक रात

प्रथम सर्ग :

साँझ का विस्तार और बालुतट १८७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय सर्ग :

वर्षा भीगे अन्धकार का आगमन २०९

तृतीय सर्ग :

मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय २३५

चतुर्थ सर्ग :

संदिग्ध मन का संकल्प और सवेरा २५१

महाप्रस्थान

यात्रा-पर्व २६५

स्वाहा-पर्व २९६

स्वर्ग-पर्व ३४६

प्रवाद पर्व

इतिहास और प्रतिइतिहास ३५७

प्रतिइतिहास और तन्त्र ३६९

शक्ति : एक सम्बन्ध, एक साक्षात् ३८१

प्रतिइतिहास और निर्णय ४०१

निर्वेद विदा ४१६

प्रार्थना पुरुष

जीवन प्रभात ४२३

समुद्र का आमन्त्रण ४२९

जीवन से साक्षात् ४३२

तपस्या की ओर ४४०

स्वदेश की पुकार ४४६

स्वाधीनता का मूल्य ४६३

शबरी

त्रेता ४७७

पम्पासर ४८३

तपस्या ४९१

परीक्षा ४९८

दर्शन ५१४

भूमिकाएँ ... ... ५२७.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले दिनों नंगे पैरों

[रचनाकाल : १९९०]

- राग-मन ले, सीढ़ियों की ओर पिछले दिनों नंगे पैरों
- खून टपकाते, अँधेरे गुम्बदों के तले पिछले दिनों नंगे पैरों
- इतिहास से निरपेक्ष, प्रार्थना के रूबरू पिछले दिनों नंगे पैरों
- काव्य की, निःशब्द अबाधता के बीच पिछले दिनों नंगे पैरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग-मन ले, सीढ़ियों की ओर
पिछले दिनों नंगे पैरों

हवाएँ और घासें—
कैसे एकान्त भाव से
निरी रमणियाँ बनीं
अपने केश और वस्त्र ढीले किये
इस पहाड़ी ढलान पर
पैर लटकाये
बातें कम
खिलखिला ज्यादा रही हैं।

चलो,
चलो यहाँ से
ऐसी रमणीय गोपनता को
सुगन्ध देता एकान्त का फूल ही बना रहने दो।

•

तुम्हें क्या कहूँ?
असीरगढ़ की इन पहाड़ी ऊँचाइयों के
क्षितिज पर्यन्ती परिवृत में खड़ी—
कोई बालिका-वधू?
या बिएत्रिस की संगमरमरी पुनरावृत्ति?
कहो, तुम्हें क्या कहूँ?

कुछ ही देर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब वापसी के इस पहाड़ी मार्ग से
हम
जल बनकर ढलँग जाएँगे
तब—
यह सब
यहाँ होते हुए भी बीत जाएगा,
पर क्या सच ही?

असीरगढ़ का
यह ऐतिहासिक गन्धवाला सन्नाटा
जिसमें हमारे साथ लिखे खड़े हैं—
तिलिस्मी आदिम पेड़
बूढ़े पानी वाले चट्टानी सरोवर
भीलनियों सी निर्द्वन्द्व एकान्त हवा
सतपुड़ा के माथों पर
नीमाड़ी पगड़ी-सा बँधा आकाश,
दन्तकथाओं जैसी घासों को गरमाती
यह पश्मीनी धूप,
क़ब्रों पर लिखी आँसुओं-सी इबारतों का
यह सूनापन
और नीमाड़ी धरती पर बैठी इन पहाड़ियों पर
किमख़ाब की झूल-सा लटका पड़ा
यह मौन—
सब
हाँ, सब बीत जाएगा
और शायद मेरे भीतर का
यह दान्ते
और बाँस की टहनी जैसी
मुलायम, चमकदार तुम्हारे व्यक्तित्व की
बिएत्रिस की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुनरावृत्ति भी—
सब
हाँ, सब बीत जाएगा।

चलो, इसके पूर्व कि अँधेरा शुरू हो
चलो, इसके पूर्व कि दान्ते, बिएत्रिस से कुछ कहे—
हमारे जलों के लिए
लौटते पथ की ढलान आरम्भ हो गयी है।

शायद तब दान्ते के लिए भी
वह एक दुःस्वप्न ही रहा होगा
और शायद उसकी यह पुनरावृत्ति मेरे लिए भी
एक दुःस्वप्न ही है—
दान्ते, बिएत्रिस और असीरगढ़ !!

●

मैं जानता हूँ
हमारे बीच आयु का अलंघ्य विन्ध्याचल है।
मैं यह भी जानता हूँ—
किसी वृद्ध बरगद के सम्मुख
हठात्
किसी शंखवर्णी पुष्प का
एक कली
एक रंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूप लिखती एक खिलखिलाहट बन जाना क्या होता है,
मैं यह सब जानता हूँ।

लेकिन
ऐसी ही अलंघ्यता पर खड़े
दान्ते ने
वेनिस की सड़कों पर
जब पहली बार—
त्वचा पर मोती का पानी पहने बिएत्रिस को देखा था
तो क्या उसे नहीं लगा होगा
जैसे किसी पहाड़ को
हठात्
अपनी ही किसी अनाम द्रोणी में
पहली बार
बिल्लौरी जलवाली कोई छोटी-सी नदी
पहाड़ी बाँशी-सी बजती प्रवाहित है?

शंखवर्णी कलिका की
धूप लिखती यह खिलखिलाहट
और बिल्लौरी जलवाली
उस छोटी सी नदी का
पहाड़ी बाँशी सा बजना—
''डिवाइन-कामेडी'' ही तो है।

तुम्हारी आँखों की जलाशयता में झाँकना
और असीरगढ़ की इस बुर्ज पर खड़े होकर
क्षितिज पर्यन्ती गहराई में झाँकना
एक जैसा ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी आँखों की जलाशयता में
सम्भव है मैं लिखा हुआ होऊँ
पर इस वृत्ताकार गहराई में
नीमाड़ी गाँव
काली मिट्टी के खेत
ग्रामीण रास्ते
कम जलों वाली नदियाँ
दरारें भरे सरोवर
और बच्चों के झुनझुनों जैसे
पेड़ ही पेड़ जरूर लिखे हुए हैं।

गहराई—
नहीं, बल्कि प्रत्येक विशालता
आमन्त्रण ही होती है
विलीन हो जाने का,
उसमें सन्तरित हो जाने का।
पर मैं इन दोनों गहराइयों में से
किसी एक को नहीं चुन सकता।
क्यों नहीं यह दृश्य
व्यक्ति बन जाता
और व्यक्ति, दृश्य?

मुझे विलीन होना स्वीकार है
पर विभाजित होना नहीं।

पहली बार जब अंकुर
अपने भीगे-भीगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकोची ताम्रवर्ण को लेकर
तुतलाती पत्तियों के साथ
चिड़ियों के बच्चे-सा
आँखें मिचमिचाते प्रस्फुटित होता है
तो धूप और हवा का
प्रातःकालीन जल धुला मुलायम स्पर्श भी
कैसा जल-सा फिसला-फिसला पड़ता है।

क्या यह मेरा स्पर्श भी
बाँसों-सी चिकनी
तुम्हारी देह-वल्ली पर
धूप और हवा-सा फिसला-फिसला नहीं पड़ रहा है?

वैसे देख तो मैं तुम्हें
इस असीरगढ़ किले
और दृश्य के विशाल परिवृत्त को ही रहा हूँ
पर, न जाने क्यों—
एक महल स्मरण आ रहा है
जिसके लॉन में
वर्षों से
संगमरमर की एक मूर्ति
आकाश के नीचे खड़ी है
हरक्यूलीस की, नितान्त अकेली।

उस मूर्ति का पुरुष
अहोरात्र अपनी उस प्रिया के लिए आकुल है
जो उसे अपने साथ यहाँ ले आयी थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर किसी दिन भी
वह प्रिया नहीं समझ पायी, कि
पुकारों का एक ही प्रकार होता है
चाहे वह व्यक्ति की हो
या मूर्ति की।

यहाँ के इस ऐतिहासिक सन्नाटे में
तुम्हें भी
सिवाय अकेली टिटहरी की आर्तता के
शायद कोई और आर्तता नहीं सुनायी दे रही है।

वैसे ठीक ही तो है—
व्यक्ति में से जब पुकार नहीं सुनायी दे
तो उसे मूर्ति ही समझना चाहिए।

●

वैसे तो उस दिन तुम अपने को ही
असीरगढ़ के उस प्रशान्त एकान्त में
एक कविता-सा लिख आयी थीं,
पर अनजाने ही
छूटा रह गया
प्रातःकालीन पक्षियों की सी प्रसन्नता वाला
तुम्हारा देखना—
जो निश्चित ही अब तक
अलभ्य दृष्टि-फूल बनकर
असीरगढ़ को
अपनी गन्ध से अभिषेकित कर रहा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे, घासों में हिले पड़ते
एक छोटे से बनफूल ने भी तो तुम्हें देखा था
और शायद तुम उसमें
अपनी अँगुलियों का माधवी स्पर्श भी तो छोड़ आयी हो।
अब तक तो वह घास का
अनाम बनफूल—
वर्ण से ही नहीं
गंध से भी नहीं
बल्कि अपने सम्पूर्ण वानस्पतिक स्वत्व से
अकेला ही वन हो गया होगा।
पर न जाने क्यों ऐसा लगता है, कि
इन दोनों देवफूलों की अलभ्यता के होते हुए भी
असीरगढ़ का यह ऐतिहासिक सन्नाटा
प्रतीक्षा है
केवल प्रतीक्षा है।

अच्छा है
हम अपने ये आत्मीय क्षण
असीरगढ़ की इस प्रागैतिहासिकता को सौंप
निश्चिन्त मन नीचे चलें,
क्योंकि
आज का यह आत्मीय दिन भी तो
आखिरकार एक तारीख ही है
और जिसे कल बदल ही जाना है।

यहाँ पर
शताब्दियों पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पेड़ छूट गये थे
वे आज भी पेड़ ही हैं,
सरोवर में जो पानी था
वह आज भी पानी ही है
पेड़ों पर की गाती, फुदकती हवाएँ
आज भी
प्रशाखाओं से कूदकर
दुर्ग के चारों ओर फैले
गहराई वाले शून्य में तैर रही हैं।
हमारे इन आत्मीय क्षणों के लिए
यहाँ के इस एकान्त से उपयुक्त
और कोई स्थान नहीं हो सकता।
सम्भव है कभी
हमें भी पाण्डवों के दिव्यास्त्रों की भाँति
इनकी आवश्यकता पड़ ही जाए—
उस समय
हमें ये आत्मीय क्षण
यहाँ के इस एकान्त में
किसी वृक्ष पर सुरक्षित मिल ही जाएँ।

●

कोई दृश्य
या कोई क्षण
क्यों स्मरण आता रहता है?
अकेले पत्ते-सी अटकी
जैसे कहीं कोई गन्ध है
जो सुगन्ध दे रही है
स्मरण बन कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे वह पहाड़ी पर खड़ा पेड़,
दूसरे सारे पेड़ों की तरह खड़ा
पेड़ ही तो है।
ढलानों पर से उतर कर
नीचे चली गयी
घासोंवाली वह पगडण्डी
आखिर क्या विशेषता है
उसमें
जो लिखी लगती है?
अपने वृद्ध जलों में बुढ़ापा खाँसता
वह चट्टानी जलाशय
शायद दयनीय ही ज्यादा लग रहा है
कि उसे छोड़कर
इतिहास
न जाने क्यों कहीं चला गया।
फिर भी स्मरण के योग्य
कुछ भी तो ऐसा नहीं है—
मात्र एक दृश्य-व्यापार है,
तब क्या स्मरण आता रहता है
और क्यों?

जैसे असीरगढ़ ही—
तो क्या!!

क्या इसे ही
कहीं से लौट आना कहा जाना चाहिए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब भी
उस पहाड़ी दुर्गवाली
सतपुड़ा की ग्रामीण हवाओं में
उड़ी पड़ती तुम्हारी भूषा है—
जिसका उड़ना
शायद वे हवाएँ तो भूल भी चुकी होंगी
पर मैं अपने में की हवाओं को क्या कहूँ
जो अब भी
तुम्हारी भूषा उड़ाती सतपुड़ा पर उड़ी पड़ रही हैं।

वहाँ के उन वृद्ध वृक्षों की
पथरायी आँखों में
कैसी एक प्राचीन भाषा थी
जिसे हम तो नहीं पढ़ सके
उसकी आदिमता के कारण
पर जैसे वे
अपनी वृद्ध सफेद गिरी-गिरी पड़ती भौंहों के भीतर से
काल की दूरियों को एक तरफ ठेलकर
हमारी लिपि को पढ़ने की चेष्टा में
स्तब्ध थे।

मेरे साथ
यह कैसा प्रतिअसीरगढ़ चला आया है
जिसके प्रागैतिहासिक एकान्तों ने
मुझे भी
अभिशप्त चिरंजीवी अश्वत्थामा बना दिया है,
क्यों?
लेकिन क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं आखिरी शब्द
''असीरगढ़'' लिखकर
कविता समाप्त ही कर रहा था, कि
उसमें आये पेड़—
सामने की उस पहाड़ी पर जाकर
वापस पेड़ बनकर खड़े हो गये।
घासें—
स्त्रियों सी घबराकर
फिर से पगडण्डियों और ढलानों पर
अपने वस्त्र ठीक करती
फैल आयीं
और एक अविश्वसनीयता के साथ घूरने लगीं।
जलाशय—
सदियों पुराने जलों की अपनी कथरी को ओढ़ता हुआ
शिकायती मुद्रा में बुदबुदाते
बूढ़े कछुए सा
वापस चट्टानों में दुबक गया,
और हवाएँ तो—
डरी हुई चिड़ियों सी
सारे पेड़ खाली कर उड़ गयीं—
जैसे कविता
एक अप्रिय आवाज
नहीं, धमाका हो।
सबके स्वत्व में जैसे लिखा हुआ था, कि
हमें किसी की कविता बनकर भी
कहीं नहीं जाना—
हम दृश्य हैं
और हम दृश्य बनकर
यहीं खड़े रहेंगे, ऐसे ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जिनके लिए प्रेरणा हुआ करते थे
वे आज भी
यहाँ के इन सन्नाटों में
टूटी सीढ़ियाँ
सूने दालानों में लटकी मेहराबें
उपेक्षित क़ब्रें बनकर हमारे साथ हैं।

यदि तुम
हमारे लिए कुछ और नहीं कर सकते
तो हमें कौतूहल की वस्तु तो मत बनाओ
चाहे वह तुम्हारी कविता ही में क्यों न हो।

और मैं
तथा मेरी कविता
वहाँ से खाली हाथ लौट आये।

खून टपकाते, अँधेरे गुम्बदों के तले पिछले दिनों नंगे पैरों

असीरगढ़—
उत्तर और दक्षिण की ऐतिहासिक दूरियों के बीच
नर्मदा और ताप्ती के विकट जलप्रवाहों पर
सतपुड़ा के पहाड़ों में लगायी गयी
इतिहास की एक गाँठ।

वस्तुतः गढ़ियों, किलों, चौकसियों, सरायों
और छावनियों की गाँठोंवाला
इतिहास का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जाल—
एक खूँखार जिरहबख़्तर
और हिनहिनाते घोड़ों के
टिड्डी दल
रक्त प्यासी तलवारों
और दहशत पैदा करने वाले
फ़तह के दमामों की तबाही में
सभ्यताओं, संस्कृतियों, कलाओं
और बस्तियों पर
फ़ौलादी शिकंजे सा फैला देते हैं।

बहेलिये
पक्षियों के लिए
जंगलों की निश्चिन्तता में
जाल तान देते हैं
और खुद पक्षियों की पहुँच के बाहर
किसी पेड़ की आड़ से
टोह लेते रहते हैं, कि
परिन्दों के पहले पंजे—
किस तरह जाल में उलझकर फँसते हैं
फिर छूट निकलने की
अदम्य पिपासा वाले डैने फड़फड़ाते
कैसे धीरे-धीरे विवश होते हैं
और तब
पक्षियों की स्वतन्त्रता कैसे दम तोड़ देती है।

बस इतिहास के ये बहेलिये भी
दुनिया की सारी पहुँच के बाहर
क़िलों में सुरक्षित बने
छत्र-चँवरों के नीचे बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिलोरियाँ घुलाते
गुलाब सूँघते
ठुमरियों की शराब में धुत्त
सिर्फ इतना ही सुनने को बेताब रहते हैं कि
उनके इतिहास के जाल में
किस सभ्यता
किस संस्कृति
और किस कला के
पहले पंजे फँसे
फिर कैसे डैने अवश हुए
और आखीर में
उनकी स्वतंत्रता ने कैसे दम तोड़ा।

यह कैसा मौन है
जिसमें असीरगढ़
पहाड़ पर पैर रख कर
अपने सारे शिला-व्यक्तित्व के साथ
ऐसा ही सहेजा लग रहा है
जैसे सतपुड़ा ने
अश्वत्थामा के दुर्दान्त प्रसंग की
कोई दुर्लभ प्रति सहेज रखी हो।

एक-एक सीढ़ी
अनबाँची पंक्तियों सी बूढ़ी हो रही है
विशाल दरवाजे
आबनूस हब्शियों जैसे
भारी फाटकों का बोझा उठाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूजे पैरों पर
सदियों से खड़े-खड़े
कितने थके
नहीं, टूटे लग रहे हैं।
फाँसीघर का अन्धा कुआँ
जीभ कटे खोखले मुँह सा
चीत्कार में फटा पड़ा है।
इतिहास का जाना यहाँ से
निश्चित ही
किसी एक तारीख पर समाप्त हो गया होगा
मगर इन गुम्बदों, मीनारों
मेहराबों और गलियारों का जाना—
कैसा पैर तोड़कर बैठा है
जैसे पैरों में कीलें ठोक
खड़े कर दिये गये हैं
मुरदे,
ताकि जिन्दा लगें।
इनके स्वत्व
अपनी तहों में ही टूटते जर्जर हो रहे हैं,
आवारा उड़ते चीथड़ों सा
वातावरण—
कँगूरों पर से छलाँग लगाने के पूर्व
वैसा ही निःशब्द चीख में चिल्ला रहा है
जैसे कोई कबन्ध
अपने सर को लपक लेने के लिए पीछा करते हुए चिल्ला
रहा हो,
और परिवेश का सन्नाटा
भीतर धँसती जाती सुई सा
इतिहस होते जाने की यन्त्रणा में
सबको पिरोते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में चमगादड़ों सा लटका
समय को पंजों में दबाये
उड़ने की प्रतीक्षा में
मौन !!

यह कैसा मौन है
जिसमें हाहाकार, चीत्कार
सब पत्थर हो गये हैं
पत्थर
जो मौन बन कर
अंधी आँखों से देख रहे हैं—
कटे हाथों से पुकार रहे हैं—
मौन !! मौन !! और मौन !!

कई बार
अँधेरे में अपना सीढ़ियाँ चढ़ना भी
चौंकाता है
जैसे कोई और भी
हमारे साथ-साथ है
और हमारी ही तरह सीढ़ियाँ भी चढ़ रहा है—
आहटहीन, चुपचाप
आहिस्ता क़दम।

परन्तु असीरगढ़ की
इस वीरान मस्ज़िद में
सिवाय उधड़ी जरी वाले तार-तार लिबास जैसे
इस बूढ़े, खँखारते सन्नाटे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अजान देती सी
इन मीनारों के
और कोई नहीं है यहाँ
इससे भी डरने की जरूरत नहीं, कि
छोटी से छोटी आवाज
या आहट की भी प्रतिध्वनियाँ
खाली चोग़े सी
लम्बी चली गयी इस दालान की छत
और पलस्तरों में
यहाँ-वहाँ बेल-बूटों की नक्काशियों के टुकड़े सम्हाले
मेहराबों से
पानी की बूँदों सी
टप-टप टपकती सुनायी देती हैं
जैसे आँसू
नहीं, उल्टे टँगे जानवर के जिस्म से
रिसता खून—
टप्-टप्।

मगर इसमें डरने की क्या बात है?
इस तरह के सन्नाटे तो
खुद उस बीते अतीत की प्रतिध्वनियाँ होते हैं
जैसे अकसर इतिहास के गलियारों में
अन्धी चमगादड़ों से लटके रहते हैं
फ़ानूसों की तरह।
वस्तुतः घेर लिये जाने पर
शून्य भी
भय बन जाता है
वर्ना आकाश को देखो—
कैसा मुक्त
कहीं कोई भय नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
61·8
११८·२

न फैलाव, न गहराई
किसी में भी नहीं।
अगर होता—
तो क्या इतनी रात में
ये इतने सारे तारे
तितलियों से निर्द्वन्द्व
चमेलियाँ बिखेरते घूमते होते?

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

वास्तव में तो मनुष्य का बीतना
स्थान को
इतिहास बना देता है
और समय का बीत जाना
इतिहास को खँडहर।

102435

लेकिन इस इतिहास
या प्रागैतिहास से मुक्ति तो
सिर्फ काल ही देता है—
जब अपने पर से सारे स्वरूप उतार
मुक्त सत्ताएँ—
वापस अपनी मूल चेतना और पदार्थ
तथा समय पर पैर रखकर चलने लगती हैं।
इसलिए डरने की कोई जरूरत नहीं
अपने भीतर के आकाश पर विश्वास करो
और तब
इन विवश खड़े खम्भों को अगर छुओगे भी
तो तुम्हें लगेगा कि
हब्शियों जैसे गुलाम
इन खम्भों के वर्तमान
और अतीत के बीच
सदियों बाद
किसी ने स्पर्श का एक फूल लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शताब्दियों से यहाँ का लटका भय उठाये-उठाये
ये इतिहास जरूर हो गये हैं
बल्कि अतीत भी
मगर ये
यह भी भूल गये कि
स्पर्श—
केवल समय, हवा और धूप का ही नहीं होता,
आवाज—
सिर्फ चमगादड़ों की मनहूस आवाज ही नहीं होती
बल्कि ऐसा भी स्पर्श होता है
ऐसी भी आवाजें होती हैं
जिनके कारण चीजें और स्थान
इतिहास नहीं
बल्कि स्वतः होते हैं
सुगन्ध देते एक फूल की तरह,
आकाश नहाते कबूतरों की तरह।

उधर नहीं, वहाँ खतरा है—
वह बुर्ज़ी
मीलों लम्बे फैले
खाई के एकदम खुलेपन में खुलती है।
इस तरह के सीढ़ीहीन खालीपन में
दृष्टि, ध्वनि, हवा, पक्षी, समय जैसी चीजें ही
तैर सकती हैं
हम-तुम नहीं।
फिर बुर्ज पर की हवा भी विश्वास योग्य नहीं है
क्योंकि वह सिर्फ झोंका ही नहीं होगी
बल्कि तुम्हें
तुम्हारे पैरों के खड़े होने को ही तराश
जड़-मूल से हिलाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने साथ शून्य में तिरा ले जाने का
एक ऐसा विराट आग्रह करेगी, कि
जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकेगा
लेकिन जिसकी स्वीकृति—
गहरे समुद्र पर पैर रखकर चलने जैसी होगी।
वस्तुत: किसी भी प्रकार की विराटता से
कभी आँखें नहीं मिलानी चाहिए
क्योंकि विराटता—
सर्पनेत्रों सी
अपने दृष्टिपाश में बाँधकर विवश कर देती है।

चलो—
चलो अब यहाँ से।
अभी ये जो आलाप लेती माधवी हवाएँ हैं
और जिनके साथ संगत करने के लिए
षड़ज में
यहाँ का सन्नाटा सुर साधने लगा है,
अभी थोड़ी देर में
यहाँ की हर चीज से—
गुम्बदों, कँगूरों, मेहराबों, बुर्जियों
सबसे
विलम्बित, द्रुत, मीड़ और तान की
ऐसी गमक
प्रतिगमक आने लगेगी
कि यहाँ की इस वीरान
मंत्रपाश जैसी सन्नाटेवाली महफिल से
फिर नहीं उठ पाओगे,
और इतिहास बन जाने के बाद तो
कभी इन खँडहरों को नहीं लाँघ पाओगे।
ये महफ़िलें ही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें ये चीजें, ये स्थान
प्रतिदिन इतिहास से प्रागैतिहास बनते जाते हैं
और प्रागैतिहास से खँडहर।
चौंको नहीं—
उस धमाके को सुनकर चौंको नहीं
फ़सील ने—
शताब्दियों के बाद
ग़ुलामी की तौक़ीर
इतिहास का बोझ, भय, गर्द
और स्मृतियाँ सब उतार डाली हैं
और कैसे उद्घोष के साथ मुक्ति की साँस ली है
जैसे मुक्ति, शेर की दहाड़ हो।
न जाने कितनी शताब्दियों बाद
पहली बार
फ़सील—
यह घोषणा करना जरूरी समझती है, कि
वह इतिहास
और स्वरूप पर पैर रख
फिर से सत्ता हो गयी है
सिर्फ सत्ता!!

इस सुनसान में लगता है
जैसे कोई उपस्थित है,
लेकिन कौन?

वह कौन होता है
जो हमारे और इतिहास के खाली स्थान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित जैसा लगता है।
खासकर असीरगढ़ के सतपुड़ा वाले गिरि-कान्तार के
इस आदिम सुनसान में
किसी के चलने की
यहाँ-वहाँ आहट—
कभी दालानों में
कभी सीढ़ियों पर
और कभी सरोवर की काई खायी चट्टानों पर
थप्-थप् सुनायी देती है
जैसे कोई
समय को चल रहा हो;
नहीं, जलों को
पैरों में पहनने की कोशिश में थपथपा रहा हो।

पहाड़ी के उस मुहाने पर
वह जो आकाश में
पत्थर की अकेली मेहराब खड़ी है,
नहीं, जैसे पत्थर का कोई अकेला अक्षर खड़ा है—
वहाँ जो सीढ़ियों का सिलसिला है
ऐसा लगता है
जैसे उस मेहराब ने
उन्हें
उस खालीपन में लटका रखा है,
तभी तो वे सीढ़ियाँ
कैसी खड़ी-खड़ी
खोह में नीचे उतरती ही चली गयी हैं।
वो ऽ ऽ देखो—
वहाँ सीढ़ियों पर कोई बैठा है
जिसकी पीठ दिख रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं तो—
कहीं कोई नहीं है।
वहाँ के उस खुले अँधेरे में
प्रपात जैसी झरती
सिर्फ सीढ़ियाँ हैं
जिन्हें वह मेहराब थामे हुए है,
कब से?
शायद कोई नहीं जानता।
और कुछ नहीं है
तब भला कोई कैसे हो ही सकता है वहाँ?
हाँ, हवाएँ जरूर हैं
जो बच्चों-सी
निर्द्वन्द्व किलकारियाँ भरती
सीढ़ियाँ चढ़-उतर रही हैं
बस—
और कोई नहीं है वहाँ।

नहीं,
अभी-अभी कोई था वहाँ—
एक पीठ थी
जो हमारी आहट पाते ही
सीढ़ियाँ उतरी ही नहीं
बल्कि अँधेरों में निःशब्द घुल गयी,
जैसे कोई
पक्षी—
आहट पाते ही
अपने होने के बिन्दु पर से
चौंक
निःशब्द उड़कर आकाश हो जाए
लेकिन तब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण में
एक सरसराहट—
लकीर-सी खिंच उठे
बस—
ऐसी ही एक सरसराहट
....
लेकिन कहीं
कहीं वह अश्वत्थामा तो नहीं था
जो यहाँ के सुनसान में
केवल अपने लिए ही उपस्थित होता है
और शेष सबके लिए
एक लकीर की सरसराहट में
उपस्थित जैसा लगता है?
बस, उपस्थित जैसा।

कार्तिकी अकलंक आकाश की
यह चाँदनी—
बाँशी में बजती
विलम्बित पहाड़ी रागिनी-सी
कैसी बज रही है,
बजने दो
वाद्य के स्वत्व वाली
इस ऐकान्तिकता को अपने ही एकान्त में बजने दो
राग, पाग और रसोई का बानक
कभी-कभी ही बना करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अक्षत यौवना श्यामा रात्री की देह पर
तनज़ेब की यह भूषा
हवा में
कैसी हाथपंखे-सी हलरा रही है।
इस कार्तिकी आकाश में
चाँदनी की यह विद्युत-प्रतिमा—
केवल माइकेल एंजिलो ही बना सकता था
मगर आकाश ने
इस अप्रतिमता को
कैसे अनायास
असीरगढ़ की इस पहाड़ी पर लाकर
खड़ा कर दिया है।
और असीरगढ़—
मत पूछो,
मलमली मुगलिया अँगरखा पहने
कैसा खानदानी लग रहा है
जैसे, बस दरबार लगने ही जा रहा है
और अभी सुनायी देगी
ताकीद—

''बाअदब, बामुलाहिज़ा होशियार !!''

हाँ, ये प्राचीन क़िले
ऐतिहासिक खँडहर—
इसी तरह टुकड़ों-टुकड़ों में
अतीत को
एक आँख से हँसते हुए
और दूसरी से रोते हुए देखते हैं
और जीते हैं
वर्ना इतिहास के बीत जाने के बाद
खँडहर बना रहना भी मुश्किल हो जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वो देखो—
पत्थर के अक्षर जैसी
उस अकेली मेहराब को,
कोई उसे
अपने दोनों हाथों में उठाये खड़ा है न?
नहीं तो—
कहीं कोई नहीं है
यह तुम्हारा मात्र भ्रम है।
तुम इसे मेरा भ्रम कहते हो?
आओ मेरे साथ,
इसके पहले कि वह मेहराब को वापस रख दे
और आकाश में विलीन हो जाए
हमें वहाँ पहुँच जाना होगा।
अब बताओ—
मेहराब अपनी नींव पर ही है न?
क्या अब भी तुम्हें लगता है कि
कोई यहाँ था?
हाँ—
वह था, था, और था
उसी तरह
जिस तरह हम और तुम यहाँ हैं।
मेहराब के दोनों ओर
पहरेदारों के बैठने की पुश्त पर
गीले पैरों के
ये निशान देख रहे हो?
यहीं
हाँ यहीं खड़े होकर
उसने
इस मेहराब को वैसे ही उठाया था
जैसे वह धनुष साध रहा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक योद्धा की तरह
युद्धक्षेत्र में।

भीगे पैरों के निशान!
मगर कहाँ?
यहाँ ऐसे कोई निशान नहीं हैं।
नहीं, निशान हैं—
मेरा विश्वास करो
वह
कोई और नहीं था
अश्वत्थामा ही था
अश्वत्थामा !!
लोग कहते हैं कि
वह
नर्मदा-स्नान करके
रोज रात्रि के तीसरे प्रहर
यहाँ के इन सुनसानों में लौट आता है
चिरंजीविता के अभिशाप ने
महाभारत के अन्तिम दिन के
इस दुर्दान्त, भीषण सेनापति को,
इस पौराणिक पात्र को
उसके जघन्य कृत्य के लिए
भोगने के अँधेरों
और इतिहास के खँडहरों में
अपने घाव ओढ़े भटकने
और रिसते रहने के लिए
काल की अनन्तता में उल्कापात बने रहने के लिए
एक धूमकेतु की तरह छोड़ दिया।
व्रणों का रक्त टपकाता
वह अश्वत्थामा ही था
अश्वत्थामा !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं,
यह तुम्हारा मात्र भ्रम है
यहाँ कोई अश्वत्थामा नहीं है।
देखते नहीं—
यहाँ तो
असीरगढ़ के इन खण्डहरों में
बाँशी में बजती पहाड़ी रागिनी सी
केवल चाँदनी की ऐकान्तिकता है
और वह भी
अब अस्त होने को है।

हर किले से
दिल्ली, आगरा, जयपुर या दक्षिण के लिए रास्ते जाते हैं,
मगर क्या सच ही?
और सिर्फ दिल्ली या दक्षिण ही क्यों?
क्यों नहीं कोई रास्ता
काशी, कांची, अवन्तिका या द्वारिका जाता?

भला इस सवाल का जवाब
असीरगढ़ का
यह बूढ़ा देहाती चौकीदार क्या दे ही सकता है, कि
क्यों कोई रास्ता
काशी, कांची, अवन्तिका या द्वारिका नहीं जाता?
वह तो सिर्फ इतना ही बता सकता है, कि
कौन रास्ता दिल्ली जाता है
और कौन दक्षिण।
उस समय तुम्हें लगेगा कि
तुम्हारे और दिल्ली
या तुम्हारे और दक्षिण के बीच का
सारा फासला तय करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरियाँ—
दरवाजा बनकर कैसी मासूम
हुक्म बजाती दस्तबस्ता खड़ी हुई हैं।
अब सिर्फ
एक डग भरने की जरूरत है
और तुम दिल्ली या दक्षिण में खड़े होगे।

मगर मेरे दोस्त ! सच तो यह है, कि
ये
या ऐसे तमाम रास्ते—
न तब
और न अब,
न कहीं गये थे
और न कहीं जाते हैं,
और अगर कहीं जाते भी हैं
तो सिर्फ गुमनामी में।
गुमनामी?
हाँ, गुमनामी, अस्तित्व की भी
और इतिहासों की भी।
वैसे गुमनामी—
जरूरी नहीं कि जंगलों की ही हो
इतिहास के अँधेरे तहख़ानों की भी हुआ करती है।

वैसे सच तो यह है कि
विराटता या विपुलता के
किसी भी अक्षांश
किसी भी देशान्तर
या किसी भी आयाम वाली
अज्ञातता में चल पड़ना
गुमनाम होना ही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चाहे वह आयाम
काल
आकाश
या समुद्र किसी का भी हो—
एक सुरंग में
जिसका कि मुँह कहीं नहीं खुलता हो,
चल पड़ना है।
हर क़िले से
गुमनामी के ऐसे रास्ते
दिल्ली, आगरा, जयपुर या दक्षिण के लिए जाते
तुम्हें बताये जाएँगे।
वैसे मैं
सत्ता के
जवाहरात जड़े
गुमनामी के उन रास्तों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ
जो ठीक
तुम्हारी उस दरबारी जगह से शुरू होते हैं
जहाँ तुम कोरनिश में झुके खड़े हो
और जो कि
गुलाब सूँघते तख़्तेताऊस तक जाते हैं।
मगर ये रास्ते—
वस्तुतः रास्ते नहीं सुरंगें हैं
और सुरंगों के बारे में
इतना जान लेना ही काफी होगा, कि
इनसे गुजर कर
आदमी क्या
कोई चीज बाहर नहीं आया करती
सिवाय गुमनामी के।

इन अँधेरों को ही ले लो
जो इन सुरंगों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले दिन से ही मशालें लिये गये थे,
क्या वे वहाँ से बाहर निकल सके?
कोई बता सकता है कि
वे वहाँ कब से कैद हैं?
दिल्ली या दक्षिण के लालच में
कोई बता सकता है कि
मशालें जलाये
तलवारें चमकाते,
वे वहाँ कब गये थे?
सच तो यह है मेरे दोस्त! कि
वे बुझी मशालें
जंग खायी तलवारें
सब वहाँ अन्धे बने
इन अजदही सुरंगों की
खौफ़नाक आबनूस दीवारों में कैद
ख़ुद जिन्न हो गये हैं।
अकसर इन सुरंगों से
ऐसी मनहूस आवाजें आती हैं
जैसे अन्धी दीवारें
सुरंगों की बदबू वाले चीथड़ों को
अपने पर से नोंचते हुए चीख रही हों
रो रही हों—
जिन्हें सुन क़िलों के सन्नाटे
भय से पीले पड़ जाते हैं

वैसे ये सुरंगें
एक रास्ता जरूर हैं
मगर कोई रास्ता
इनमें से बाहर की ओर नहीं फूटता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकसर दुर्दमनीय लोग
मशालें लिये
इन सुरंगों में उतरे हैं
और दिल्ली तथा दक्षिण को जाते
इन अँधेरे रास्तों पर चले भी हैं
पर वे सब
और कहीं भले ही पहुँचे हों
मगर किसी ने भी
उन्हें
दिल्ली या आगरा के दरबारों में
फ़र्शी सलाम बजाते
या बीजापुर या गोलकुण्डा के क़िलों पर
फ़तह के झण्डे फहराते नहीं देखा-सुना होगा।

यों भी इन सुरंगों में
इनकी अपनी आदिमता की चमगादड़ी बू तो है ही
मगर इतिहास से खिलवाड़ करने वालों के
कंकालों की बदबू का
एक ऐसा तेज तेजाबी भभका भी है
जिसमें मशालें क्या
स्मृतियाँ, चेतना, समय होशोहवास
सब बुझ जाया करते हैं, गुम हो जाया करते हैं।
और अँधेरे की
एक सुरंग
इतिहास का अजदहा बनकर
जमीन के अन्दर ही अन्दर लहराती होती है
जैसे साँप ने
खुद को ही काट लिया हो
और लहरा रहा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे दोस्त!
असीरगढ़ से जाने वाले ये रास्ते भी
दिल्ली या दक्षिण तो दूर
पास की
उन बस्तियों तक भी नहीं ले जाते
जहाँ लकड़ियों का गट्ठर उठाये
या घास का भारी बोझा उठाये
ये भीलनियाँ जा रही हैं।
अगर जाते होते
तो इतने भारी बोझ के साथ
इतनी
और ऐसी खड़ी-खड़ी हजारों सीढ़ियाँ चढ़ने-उतरने की
इन भीलनियों
या किसी को भी क्या जरूरत थी?
नहीं, मेरे दोस्त!
इन अजदहों के मुहानों पर से चट्टानें मत हटाओ
क्योंकि जिन्दा अजदहे से कहीं ज्यादा
खतरनाक बदबू देता मरा अजदहा होता है।
इतिहास की इन अन्धी सुरंगों से चलकर
तुम क्या
कोई कहीं नहीं पहुँचा है
सिवाय गुमनामी के।

वैसे कहीं भी पहुँचने के लिए
मेरे दोस्त!
यह पगडण्डी ही काफी है
बल्कि निरापद भी
जिस पर से होकर
ये भीलनियाँ
ये प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये धूप
ये हवाएँ
ये फूल, सब
इतिहास-निरपेक्ष भाव से जा रहे हैं।
हाँ, जो नहीं जा पा रहा है
या नहीं जा पाता है—
वह है इतिहास और उसके क़िले।

इतिहास से कट जाने पर
आदमी,
और मनुष्य से कट जाने पर
चीजें, स्थान सब अप्रासंगिक ही नहीं
नितान्त दयनीय भी हो जाते हैं।

क़िले की फ़सील पर खड़ी
यह तोप—
जो कभी थी,
पर क्या आज भी तोप है?
अपने पहियों पर गर्वोन्नत भाव से खड़ी
सतपुड़ा के मीलों लम्बे फैले
इस नीमाड़ी जनांतिक के
बूढ़े खालीपन को
कैसी राजमुद्रा के साथ अवलोक रही है
जैसे कोई सिंह
कँगूरों पर अपने अगले पंजे टिका
शिकार की टोह ले रहा हो,
और जिसकी बब्बर अयाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवा में
राजवस्त्रों सी मन्द-मन्द उड़ी पड़ रही हो।

निश्चित ही कभी यह आक्रमणकारियों पर
झपटते हुए
शेर सी दहाड़ती रही होगी
और खून जमा देने वाली इसकी गरज सुन
दूर-दराज की पहाड़ियाँ तक
गूँजती, सकते में आ जाती रही होंगी।
गोलों की लपक
कंगूरों से
शोलों की तरह आग बरसाती रही होगी।
इतिहास की यह दहाड़ सुनकर
यहाँ के
ये पहाड़, नदियाँ, बस्तियाँ, रास्ते
सब कैसे खौफ खाये
सम्मान देते रहे होंगे।
घरों में दुबके लोग
बच्चों को
''वो ऽ ऽ, वो ऽ ऽ' कह कर दिखाते रहे होंगे
कि तोप किसे कहते हैं।
पर, अपने जिरहबख़्तरों से बाहर आकर
इतिहास ने
जब तोप के माध्यम से गरजना छोड़ दिया,
तो दूसरी तमाम चीजों और पहचान की तरह
इसे भी यहीं छोड़कर
अपने साथ
इस तोप को भी अप्रासंगिक बना गया।

जब तक लोगों के दिलो-दिमाग में दहशत होती है
तभी तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास सुरक्षित रहता है—
क़िले, क़िले होते हैं
बादशाह, बादशाह होता है
और तोपें, तोपें।
मगर इतिहास के चले जाने के बाद
जब क़िलों के
नुकीली कीलों वाले बुलन्द दरवाजे
सुबह-शाम
खुलना और बन्द होना छोड़ देते हैं
तब क़िले, क़िले नहीं रह जाते
बादशाह, बादशाह नहीं रह जाते
और तोपें, तोपें।

वैसे इतिहास के बीत जाने से
बाकी किसी चीज़ को कोई फर्क नहीं पड़ता—
पहाड़, नदियाँ, पेड़, खेत, रास्ते
लोग
और तो और चिड़ियाँ भी
अपने छोटे-छोटे पंखों पर
हवा और धूप को तौलती
उन बारादरियों में चहचहाती होती हैं
जहाँ कभी कोई पर नहीं मार सकता था।
पर इतिहास के बीतने के साथ ही
खुद क़िलों को
भारी पत्थरों वाली फ़सीलों का बोझ
कैसा असहनीय लगने लगता है।
आकाश लिखते इन सदर-दरवाज़ों को भी
बेमतलब टाँगे रहना भारी फाटकों का बोझा
किस कदर भारी हो उठता है,
और तोप को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहियों पर अपना बोझा उठाये रखना भी
ज़ेर हो जाता है।
खड़ी वह अब भी जरूर है
उसी सिंहमुद्रा के साथ
मगर उसे ही लगता है
जैसे वह
अब सिर्फ एक तमाशा है
नहीं,
इन गिलहरियों की कूद-फाँद के लिए
एक ख़िलौना।

कभी जो खुद एक सिंह लगती थी
अब उसके मुँह पर
चीलें—
कितनी निर्द्वन्द्व बैठी
सामने के उस खालीपन को
पंख तौलती
कैसे गर्वोन्नत देख रही हैं
जिसे कभी तोप खुद देखा करती थी,
पर अब
आग उगलती अपनी थूँथ को
कँगूरों पर रखकर
कैसे निरीह
अपनी इतिहासहीनता को विवश स्वीकारे
गिलहरियों के लिए खिलौना बनी खड़ी है।
तभी चील
तोप को पंजों से दबा
एक लम्बी चींईई के साथ
उस खालीपन में अपने परों को लिखते हुए
तैर जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें कभी
तोप
आग बरसाया करती थी
और शोले लिखा करती थी।

मैंने कहा था—
मैंने पहले ही कहा था, कि
इतिहास से ज्यादा क्रूर और भयावह
इतिहास का अतीत होता है,
क्योंकि समय के साथ
वह वक्त की दीवारों पर
अपने कद से
कहीं ज्यादा बड़ा
हजार हाथों वाला विकृत अक्स होता जाता है
और इस तरह के
अष्टावक्री अक्स दहशत पैदा करते हैं।

लेकिन क्यों?
क्योंकि उस वक्त तक अतीत—
एक बिन्दु पर घटित हो जाने वाली
सिर्फ एक घटना न रह कर
निरन्तर फैलता जाता
धमाके का
एक ऐसा वृत्त
एक ऐसा सिलसिला हो जाता है
जो
शताब्दियों दूर खड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों के दिलो-दिमाग को भी झँझोड़ता
मैदानों, टीलों, पहाड़ियों
और उस तवारीखी वक्त को
अपने पकड़ की
लौह-सँड़सियों से दबाता चला जाता है
तब तक दबाता ही चला जाता है
जब तक हर मानवीय विश्वास
हर भोली आस्था के पैर
निर्जीव होकर
चूहों जैसे लटक नहीं जाते।
तभी तो
इतिहास
या इतिहास का अतीत
सिर्फ इन किलों, महलों और खंडहरों में ही
नहीं रिस रहा होता है
बल्कि वक्त
और उसकी स्मृतियों में भी
अपने बघनख
अपने पंजे गाड़
संख्यातीत चमगादड़ों सा
इन सल्तनती तामीरों में ही नहीं
हमारे अन्दर के भी
ऐतिहासिक अँधेरों में
उसी तरह लटका रहता है
जिस तरह
जानवरों के थनों में
खून पीते कीड़े चिपके होते हैं।

मैंने कहा था—
यह मैंने पहले ही कहा था, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यास्त के बाद
बाहर का अँधेरा भी उठाये
इन मातमी क़ब्रिस्तानों में रुकना समझदारी नहीं होगी।
तुम नहीं जानते कि
जब यहाँ इतिहास था
और इन किलों के
ये खौफ़नाक
हब्शियों जैसे सदर-दरवाजे
सुबह-शाम खुलते-बन्द होते थे
तो, एक आमदरफ़्त तो थी,
भले ही वह आमदरफ़्त
खून टपकाते, बेड़ियों में कसे
बाग़ी साहबे-आलमों
या दग़ाबाज़ सूबेदारों-सिपहसालारों की रही हो,
या ज़िबह के लिए ले जाये जाते
भेड़-बकरों जैसी
युद्ध-बन्दियों की रही हो,
या फिर रोती-कलपती
दहशतज़दा औरतों के
आँसुओं से तर नूरानी चेहरों की रही हो—
कुछ हो, एक आमदरफ़्त थी
जिसमें आदमी के पैरों की आहटें तो सुनायी पड़ती थीं।
तुम नहीं जानते, कि
अँधेरों में
खासकर दीवारों से घिरे अँधेरों में
आदमियों की मौजूदगी से
कहीं ज्यादा
आदमियों के पैरों की आहटें जरूरी होती हैं
क्योंकि तब लगता है, कि
वे हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हम उन्हें छू रहे हैं,
और ऐसा छूना
अहसास कराता है, कि
नहीं, अँधेरों में अब भी हम हैं।

इस सचाई को
सूर्यास्त के बाद के
इन ऐतिहासिक क़ब्रिस्तानों में
तुम भी महसूस करोगे
लेकिन यह बात दीगर है, कि
लौटने के लिए तब तक
शायद काफी देर हो चुकी होगी।
वैसे इन वीरानियों में भी
एक तरह की आहट होती है
जिसे सुना भी जा सकता है।
मगर वह आहट
उन पैरों की होगी
जिसे इतिहास का अतीत कहा जाता है
और जिसके कि पैर उल्टे होते हैं।
उल्टे पैर?
हाँ, उल्टे पैर
सिर्फ भूतों के ही नहीं होते,
हर उस ऐतिहासिक अतीत के भी होते हैं
जो इस तरह के तमाम सन्नाटों में
खून और मवाद से लस्त
एड़ियाँ रगड़ता रहता है—
जैसे कोई अश्वत्थामा।
अपने स्वत्व पर से
खून पीती जोंके छुड़ाना
या सूने अँधेरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृतियों का
एड़ियाँ रगड़ता अतीत होना—
शायद अश्वत्थामा होना ही है।

इन वीरान सीढ़ियों
जालीवाली संगमरमरी दीवारों
और शफ़्फ़ाक झँझरीदार बारादरियों में
अतीत के उल्टे पैरों की
ये आहटें—
कभी हँसी का रेला बनकर
हरमख़ानों के फर्श पर
आहिस्ता कदमों में
इत्र के फाहों सी चलती महसूस होंगी
जैसे चमेली बिखरी पड़ी हो।
तो कभी लगेगा
जैसे जुए के पासों की
खनखनाती छितरी कौड़ियों की खिलखिलाहट
पैरों के ऐन नीचे आकर दबी
और कराहें कराह रही हैं।
तो कभी भापवाले
किसी हम्माम से
मादरज़ाद नंगी एक चीख
एक बाज़ की तरह झपटती
तुम्हारे सर पर से गुजर गयी है।

इतिहास के फानूसों की
ऐसी शीशई कराहें
दर्दनाक चीखें
हर छज्जे, बारजे और बुर्जियों में बेहाल
हाँफती-दौड़ती सुनायी देंगी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे सैरन्ध्री
कीचक के डर से
अपनी चीख से
कीचक के राजभवन को तराशती
बदहवास भाग रही है।
अगर तुम
सूर्यास्त के बाद
इतिहास और उसके अतीत के बीच
खड़े होने का खतरा मोल लेते हो
तो ही।
मगर मैं तुम्हें
ऐसी सलाह नहीं दूँगा
क्योंकि इन बारादरियों, बुर्ज़ियों
और संगमरमरी जालियों वाले दालानों का
एक इन्द्रजाल—
मकड़-जाल सा
धीरे-धीरे तुम्हारे चारों ओर बुन उठेगा।
सीढ़ियाँ चढ़ते हुए
दीवारों के मोखों से आती
हवाओं में लगेगा, कि
उबकाई की गन्धवाली
ये दीवारें, रास्ते और गलियारे
अँधेरों में साँस ले रहे हैं,
अभी-अभी
किसी के वस्त्रों का रेशमीपन
तुमसे छुआ
और दोनों हाथों से
दरवाजे की तरह
सामने की दीवार खोलकर समा गया
और दरवाजा बनी दीवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर दीवार हो गयी है—
और जैसे बर्फ की एक कटार
पूरी की पूरी
तुममें किसी ने उतार दी है
और तुम बुत बना दिये गये हो।

इस बीच
इन दीवारों, मेहराबों, जालियों में लिपटे
अतीत के
पंजों जैसे जंगली हाथ उग आये होंगे
और जो अपनी नागफनी गिरफ़्त में कसने के लिए
अँधेरे के बावजूद
ठीक तुम्हारी ओर बढ़ रहे होंगे
जैसे वे आँख वाले हाथ हैं
और शिकार की ओर सटीक बढ़ रहे हैं।
इस शिकंजे
इस गिरफ़्त
और ऊपर से मासूम
तथा खूबसूरत लगने वाली रेशमी पकड़ को
तुम अपने स्वत्व में वैसे ही अनुभव करोगे
जैसे दबोच लिए जाने पर
हरिण—
अपनी गर्दन पर
शेर के दाँतों का धँसाव
और जबड़ों की मजबूत पकड़ को महसूस करता है, कि
एक खूनी कसाव है
जो मांस और रगों में धँस रहा है
और हरिण
बाकी के अपने थरथराते शरीर से
छटपटाते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे धीरे-धीरे छूटने की कोशिश में
एक-एक अंग में
रह-रह काँपते हुए टूटता जाता है
मरता जाता है
और आखीर में
शेर के जबड़ों की गिरफ़्त में जकड़ी
गर्दन में पहुँच
झटके से दम तोड़ देता है।

मैंने कहा था—
यह मैंने पहले ही कहा था, कि
जब यहाँ इतिहास होता है
तब किलों के
ये सदर-दरवाजे
बाकायदा खुलते-बन्द होते हैं।
उनका
तब बन्द होना
उतना खतरनाक नहीं होता
जितना कि
एक यतीमख़ाने की तरह
चौबीसों घण्टे इनका फटक खुला रहना।
मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ, कि
इतिहास या उसका अतीत
जब फटक खुला होता है
तब उससे डरना चाहिए,
क्योंकि अपना ही बुत हो जाने की
वह तुम्हें दावत देता है।
और बुत—
चाहे वे जिस्मानी रहे हों
या आस्था के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर के दबावों के नीचे रौंधे जाते रहे हैं
मसले जाते रहे हैं
या फिर इतिहास की बुर्ज़ियों पर से
खण्ड-खण्ड विद्रूप करके
नीचे खड्ड में फेंक दिये जाते रहे हैं।

मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ, कि
उस वक्त तक काफी देर हो चुकी होगी
न सिर्फ सूर्यास्त की
बल्कि वापस
उस सदर दरवाजे तक पहुँचने की भी
जिसके फटक खुलेपन से होकर
तुम भीतर गये थे,
जबकि बाहर
न केवल प्रतीक्षा करता
आकाश, जंगल और हवाओं वाला खुलापन ही होगा
बल्कि वे तमाम दूसरी चीजें भी होंगी
जो न इतिहास में
और न इतिहास के अतीत में साँसें लेती हैं
बल्कि घास की गन्ध
और मिट्टी के सोंधेपन के बीच से जाती
एक इतिहास-निरपेक्ष
पगडण्डी भी होगी।

निर्णय—
अब सिर्फ तुम्हें ही करना है
मुझे नहीं,
क्योंकि मैं तो पहले ही कह चुका हूँ।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं तुम्हें आगाह करता हूँ—
इस गुम्बद के नीचे खड़े होकर
तालियाँ बजाना खतरनाक है।

यह गुम्बद—
इस क़िले
यहाँ के तख़्तेताऊस
यहाँ के तमाम निज़ाम और तामीरों का
सिर्फ कान ही नहीं है
ऐसा मुँह भी है
जो यहाँ से वहाँ तक
सैकड़ों मुँह बनकर
अपने दालानों, बुर्ज़ियों और मेहराबों में
तुम्हारी ही तालियाँ बजाता
दुहराता, तिहराता
भेड़ियों सा चीखने लगेगा
और तवारीखों का जंगल जाग उठेगा।

जंगल के जाग उठने का मतलब—
हुकूमत की म्यान से
तलवार का बाहर निकलना होता है,
माँद से बाहर निकलता
शेर।
अपने तमाम दालानों, गलियारों, सीढ़ियों के
सन्नाटों को कुचलती
चौकस भारी क़दमों से
लपकती आती
म्यान से बाहर निकली
वह तलवार—
तुम्हारी ओर सवालिया निगाहों से घूरने लगेगी, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसने क़िलों, महलों के भेड़िये मुँहों को
तालियों की यह जुबान सौंपी?
क्या तुमने?
और क्यों?
इसीलिए
मैं तुम्हें आगाह करता हूँ—
इस गुम्बद के नीचे खड़े होकर
तालियाँ बजाना खतरनाक है

वैसे यह मत भूलो, कि
बीतती तारीखें हैं
तवारीखें नहीं।
तवारीख़ें—
तारीख़ें नहीं, घटनाएँ होती हैं
या वो बदनसीब लोग होती हैं
जो
या तो इन दीवारों में
जिन्दा चुन दिये गये होते हैं
या तहख़ानों की असह्य यंत्रणाएँ सहते
छत के कड़ों में टँगे-टँगे
बदबू का भभकारा बनने के लिए
टँगे ही छोड़ दिये गये होते हैं
जो अपने पर से
अपनी चमड़ी, अपना गोश्त उतार कर
ठठरियाँ हो गये होते हैं।
खून लिथड़े
ज़िबह होते
कोड़े खाते
बाग़ी सिपहसालार या सूबेदार
इन किलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तहख़ानों की दरो-दीवारों में
आज भी ज़ार-ज़ार-बेज़ार
चीखते हैं—
रहम के लिए
अपनी मौत के लिए।
आँखों में घुसती गरम सलाख़ें—
जैसे खौलते तेल पर गिरा पानी चिल्ला रहा हो।
ताज, तख़्त, ख़िल्वतें
या सत्ता की सारी नियामतें
सब उतार फेंक देने के लिए
दम तोड़ते
ये जाँबाज़
जाँघों के बीच
गरम सुइयों से दागे जाने की यंत्रणा के सामने
वैसे ही तड़फड़ाते होते हैं
जैसे खाल खींचे जाते वक्त
खून का फिचकारा छोड़ता
उल्टा लटका जानवर का लहूलुहान जिस्म
झटके के साथ
तड़फड़ाने की जुबान में चिल्ला रहा होता है

इसीलिए
मैं तुम्हें आगाह करता हूँ—
इस गुम्बद के नीचे खड़े होकर
तालियाँ बजाना खतरनाक है।

यह तुम्हारा महज भ्रम है
ख़ामखयाली है, कि
चीजें बीत जाया करती हैं
सच तो यह है, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कुछ नहीं बीतता।
सिर्फ चीजें
शक्ल बदलकर
अपनी-अपनी जगह खामोश हो जाया करती हैं।
ये क़िले
ये महल
ये बारादरियाँ
या दूसरी तमाम चीजें
वैसी नहीं हैं
जैसी दिखलायी देती हैं
जो दिखलायी देता है
दरअसल वह उनका नक़ाब है।
और जरूरी नहीं कि
नक़ाब के पीछे ताजमहल ही हो।
मुमकिन है नक़ाब के पीछे
एक ऐसा चेहरा हो
जो अपनी हड्डियाँ ढो रहा हो
ताकि किसी दिन
इन तवारीख़ों से बाहर आकर
ठीक तरह से मरा जा सके,
क्योंकि ठीक तरह से मरने के लिए जरूरी होता है
हड्डियों का भी मरना।

इसीलिए
मैं तुम्हें आगाह करता हूँ—
इस गुम्बद के नीचे खड़े होकर
तालियाँ बजाना खतरनाक है।

तुम्हें भी
आमतौर पर ऐसा ही लगता होगा, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तराश दिये जाने पर
पत्थर—
खूबसूरत जालियाँ, बेल-बूटे
या क्या-कुछ नहीं बन जाया करते हैं।
पत्थरों के कन्धों पर
पत्थर, दर पत्थर
मीनारों की शक्ल अख़्तियार कर लेते हैं,
और अपने जिस्म को पोला करवा कर
पत्थर—
फैव्वारे बन कर
कैसे पानी के मोर जैसे लगने लगते हैं।
हाँ, चीजों को आमतौर पर इसी तरह देखा जाता है
जिस तरह मवेशियों के मेलों में
हम जानवरों के दाँत, कसे पुट्ठे लासनी सींग
और चमकते जिस्मों को देखते गुजर जाते हैं
यों चीजें भी अपने बीच से
तुम्हें भी
आमतौर पर गुजर जाने देती हैं
जब तक कि तुम उन पर हाथ नहीं धरते।
तुम्हारा छूना खतरनाक भी हो सकता है
क्योंकि तुम्हारा छूना
उन्हें भी वैसा ही जगा सकता है
जैसे छूने पर
मवेशी की चमड़ी
उस जगह थरथराने लगती है
और ज्यादा छूने-छेड़ने पर
वह जानवर
सींग बनकर
एक प्रतिशक्ति सा खड़ा हो जाता है।
इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दीवारों को छूना
या यहाँ के तहख़ानों में उतरना
यहाँ के इतिहास को
एक प्रतिशक्ति बनाना होगा।
और हर प्रतिशक्ति की
घूरती आँखें होती हैं
नुकीले सींग होते हैं
और खूनी पंजे भी।
वैसे भी इतिहास से—
किसी भी काल के इतिहास से
आँखें मिलाना खतरनाक ही होता है

इसीलिए
मैं तुम्हें आगाह करता हूँ कि
इस गुम्बद के नीचे खड़े होकर
तालियाँ बजाना ख़तरनाक है।

कौन?
हम्माम में पैर लटकाये
पिछली रात की इस एकान्त चाँदनी में
हाथों की रची मेंहदी देखता
चमेली की ख़ुशबू सा
यह कौन बैठा है?

कैसी निरभ्र निस्तब्धता है,
इस एकान्त चाँदनी में
कहीं कोई शब्द नहीं है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलक झपकाने तक का भी—कोई शब्द नहीं है।
बस है
तो एक देह-गन्ध
और श्वेत पंखों वाली चाँदनी ही चाँदनी।
न तो दूर से सुनायी पड़ती पहरेदारों की
कोई आवाज है
और न ही ख़ूँख़ार तातारी निगहबानों के
मुस्तैद कदमों की कोई आहट।
कहीं कोई शब्द नहीं है
शमादान भी—
गिरे-गिरे दुपट्टों वाले थके जिस्मों जैसे
अपनी ही रौशनियों में धीरे-धीरे उतर रहे हैं,
खामोश!!
कहीं कोई शब्द नहीं है।
एक गीत का मुखड़ा
उन पत्तियों जैसे पतले ओठों से
कैसा गुलाब-पंखुड़ियों सा
गिरा-गिरा पड़ रहा है
अपनी सुगन्ध के टुकड़ों के साथ,
जैसे शराब की एक बूँद
थरथराते ओठों पर लटकी
भीगी चमक के साथ मोती सी चमकी
और सन्दली दुपट्टे पर टपक पड़ी
निःशब्द।

कहीं कोई शब्द नहीं है—
सिर्फ फौवारे के छिंटे पड़ते छींटों की
फुहारी मुलायम आवाज के।
और वह फुहारी आवाज भी
हम्माम को चैन नहीं लेने दे रही है,

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस, छिंटी पड़ रही है
जैसे खुशबुएँ
हम्माम में अपने छोटे-छोटे पंख धो रही हों।
गरारे से बाहर झाँकते से
गुलबदन के
दो मोतिया पैर
हम्माम के पानी के ठंढेपन और खुशबू को
तैरती खामोश मछलियों की तरह
कैसे निःशब्द पी रहे हैं।
ख़ुशबुओं वाला वह ठण्ढापन
भीगे मोतिया पैरों से चलकर
धीरे-धीरे
पिंडलियों
और पिंडलियों को सुरसुराता
कैसे रानों पर
और रानों से भी ऊपर
....
जैसे एक हाथ है
ख़ुशबुओं वाले एक ठण्ढे हाथ का अहसास है.........
हाय अल्लाह !!

नहीं,
जैसे खुशबुओं की लतरें
दो सन्दली शाखों पर
आहिस्ता
अधूरे ठंडे ठंढे कदमों से
निहायत पोशीदगी के साथ
चढ़ रही हैं
चढ़ रही हैं—
उफ् !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पूरा बदन
लिबास के कसेपन से छूट
गुलनार का मुक्त दरख़्त बनकर
कैसा तालियाँ बजा खिलखिलाने लगता,
हाय, किसी ने सुन लिया हो
तो!!
नहीं,जिस्म
बोलते जरूर हैं
खिलखिलाते भी हैं
मगर ओठों पर अँगुली रखे
रेशमी लिबासों की सात पर्तों के अन्दर
सिर्फ पोशीदगी में ही,
यों नहीं,
हम्माम में पैर लटकाये तो नहीं ही।

और एक साया—
फर्श पर की बिखरी चाँदनी में
कैसे धीरे-धीरे
अपने को लिखते हुए बढ़ता है
और मेंहदी रचे हाथों वाले
गुलनार जिस्म को
लपक कर
अपने आगोश में कस लेता है
जैसे सुगन्ध बजाता सन्तूर आगोश में आ गया हो।
और सन्तूर के तार
सारे तार खामोश तूफान बन कर
अंग-प्रत्यंग में
कैसे एक साथ झनझना उठते हैं।
नहीं,
दरख़्त के सारे खिले, अनखिले फूल
निःशब्द झरने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आगोश का पुरुषत्व
सन्दली जिस्म के फूलों से लद उठता है।
आगोश के चौड़े सीने पर
थरथराती गुलाबी पत्तियाँ फुसफुसाने लगती हैं—
''नहीं, साहबे-आलम!
मेरे आक़ा! कनीज़ को इस तरह
आपके आगोश में कोई देख लेगा तो......''

और कोई कैसे नहीं देख लेता?

एक कटार—
बाज की तरह
अपने शिकार पर टूट
खून का फौवारा बना देती है,
और फूलों वाला
दरख़्त
गुलनार फूलों की आरक्तता में नहा उठता है।
हम्माम का पानी
अपने में हठात् गिरे दरख़्त से चौंकता है
और फिर भीगती मलमली चाँदनी के साथ
लाल होने लगता है—
धीरे-धीरे।

अपने मर्तबे को छुपाये
साया—
उसी तरह ख़ामोश
चाँदनी में अपना लौटना लिखते हुए
बेबस
अँधेरों की तरफ बढ़ता है
एक अँधेरा बन जाने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कोई शब्द नहीं है।
इस शाही माहौल में
चारों ओर खड़े लम्बे दालान
उनकी मेहराबें
और उनमें के लटके परदों में
कैसी चौकन्नी निस्तब्धता है
जैसे शाही माहौल की म्यान में
तलवार आराम फरमा रही हो।
हम्माम के लाल होते पानी में
चाँदनी भी बहुत-कुछ लाल हो गयी है।
हौज में तिरी पड़ती
मेंहदी वाले हाथों की लाली के अलावा
एक शब्द—
सिर्फ एक शब्द है
जो लाल होते हम्माम के पानी में
कभी-कभी दिख जाता है,
वह शब्द है—
कटार!!

बाकी कहीं कुछ और नहीं है—
लहूलुहान इस फर्श से लेकर
चाँदनी बरसाते अर्श तक
एक निस्तब्धता है
सिर्फ निस्तब्धता—
शब्दहीन।

फाँसी !! हत्या !! क़त्लेआम !!
ये भी तो शब्द ही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ शब्द—
जिस प्रकार तमाम दूसरे शब्द होते हैं—
जैसे फूल, आकाश, नदी
घर, रोटी, मट्ठा
या और कुछ भी।
मतलब यह कि
कोई सा भी भला, निर्दोष या निरीह
ऐसा शब्द
जिसका कि उच्चारण
किसी भी हाक़िम-हुक्काम के डर के बिना
चौराहे पर खड़े होकर भी किया जा सके।
मगर ऐसा भोलापन
सिर्फ उनके लिए सम्भव है
जो तमाशबीनी मुद्रा में
इतिहास की मेड़ पर खड़े
व्यक्ति से भीड़ बने.
फाँसी, हत्या या क़त्लेआम जैसे
इतिहास सिद्ध शब्दों का
फन्दों में झूलते
खून के फौवारे छोड़ती पेट की अंतड़ियाँ सम्हाले
गाजर-मूली की तरह कटते देखते हैं
और उदास हो जाते हैं
एक सदाशयी की तरह।

वस्तुतः इतिहास—
सदाशयी लोगों के लिए नहीं होता
क्योंकि वह सदाशयी व्यक्तियों का नहीं होता।
अगर होता—
तो ये सारे शब्द
जैसे ग़ुलाम, ग्लेडिएटर, दास-दासियाँ आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके कंधों को
कोड़ों की मार से झुकाया जाता है
ताकि ये क़िले, तख़्तेताऊस,महल, पालक़ियाँ उठा सकें—
इस तरह ज़रखरीद ग़ुलाम या असीर बन कर
ये शब्द
लहूलुहान न हुए होते,
तवारिख़ों में गिड़गिड़ाते न रहते
तब ग़ुलाम या ग्लेडिएटर
मात्र एक शब्द नहीं होता।
एरीना की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच
यह शब्द—
कैसे एक लहूलुहान तमाशे में तब्दील हो जाता है।
ग़ुलाम के खून से
इतिहास के ग़ालीचे कहीं खराब न हो जाएँ
इसलिए एक खच्चरगाड़ी पर
लहू टपकाते इस शब्द की लोथ को हटा दिया जाता है
ताकि कुलीनताएँ और सम्भ्रान्तताएँ
लहू और मांस हो गये
इस शब्द को देखकर ग़श न खाने लगें।

मतलब यह कि जब तक
हमारे और इतिहास के बीच
मेले-ठेलों में तमाशा दिखाने वाले की चकंरी
और उसके उस डिब्बे में मोटे शीशों के मोखे हैं
तब तक कुछ फर्क नहीं पड़ता कि
हम क्या देख रहे हैं—
ये शब्द
शब्द-कोश में सजे हुए हैं
या इतिहास के जलते तवे पर
अपने पैरों को झुलसने और जलने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचाने की कोशिश करती
छनछनाती पानी की बूँदें हैं।
हम आराम से
उस तमाशा दिखाने वाले के
डिब्बे के शीशई मोखों में आँखें गड़ाये देख सकते हैं—
फिर चाहे वह
दिल्ली की कुतुब-मीनार हो
या अशोक की लाट,
बारह मन की भारी भरकम
लेटी हुई धोबिन की नंगी गोरी जाँघें हों
या जर्मन की लड़ाई,
दिल्ली-दरबार का
तमगों और लिबासों वाला मसखरापन हो
या सबसे आखीर में
(इस जेट-युग में भी दिखलायी जाती)
माचिस के खाली-खोकों वाली रेल—
हाँ, कुछ फर्क नहीं पड़ता,
क्योंकि उनके लिए नहीं
बाकी सबके लिए भी
इतिहास, महज एक किताब है
जिसमें वल्दियत और सक़ूनत की सच्चाई के अलावा
ख़ुदा गवाह है
और कुछ सच नहीं होता।

वास्तव में ऐसा भ्रम न हो
तो किसी भी युग के
ये क़िले
इनका मुकुट पहना इतिहास
शिलालेखों वाली प्रशस्तियाँ
कमर से लटकता तलवारों वाला रौबदाब—
हमारे स्वत्व में
अवांछित, अमानवीय तत्व सा पहुँच कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी न कभी
हमारी शिरा-उपशिराओं से
न सही प्रतिशोध
पर कारगर प्रतिकार का
एक शब्द
एक धमाका बनकर ही सही
फूटता तो!!

मगर नहीं—
मखमली जूतियाँ पहने इन ताजदारों की
ऐसी सारी महान कारगुजारियों के
ऐतिहासिक मौकों पर
मुकदमा लिखने वाले
या इतिहासकार निहायत मुस्तैदी के साथ
कलम के साथ-साथ
गुलाबपाश भी लिये रहते हैं
ताकि केवड़ई जल का
जरूरी छिड़काव भी साथ-साथ होता रहे
और लोगों के दिमागों
तथा तवारीख़ों के फर्श पर से
गैर जरूरी धब्बे पोंछे जा सकें।
इस तरह के सुगन्धित छिड़काव
इसलिए भी जरूरी होते हैं कि
भविष्य में इन घटनाओं को पढ़ते समय
किसी को कोई दुर्गन्ध न आए,कि
दरबारों में भी बदबुएँ हुआ करती हैं।
देश और समाज के स्वास्थ्य के लिए
इतिहास का
गुलाब थामे नूरानी चेहरा होना कितना जरूरी है न?

आमीन !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आईनाख़ाना—
ऐशगाह, विलास की माँद—

ऐसा शीशई हम्माम
जिसमें तुम
तुम्हारी हर चीज़
हर कारनामा,
दुहराता, तिहराता
बिम्बों-प्रतिबिम्बों की कटार हाथ में लिये
तुम्हारे चारों ओर मुस्तैद, मौजूद होगा—
जैसे आबनूसी फौलादी देहवाला
हब्श ग़ुलाम
बाहर की शाइस्तगी
और विलास की माँद के भीतर के
इस आदिम नंगेपन के बीच
दस्तबस्ता पहरे पर मौजूद हो।

सिर्फ तुम ही नहीं
या तुम्हारे काँपते हाथों वाला जाम
और उसमें की छलकती शराब ही नहीं
बल्कि औरतों के नंगे जिस्मों के
हर उभार को टटोलती
और उस पर से गुजरती
चमड़ी उधेड़ लेने वाली
तुम्हारी निगाहों का
वह वहशीपन भी
इस शीशई तिलिस्म की दीवारों, छतों से
बिम्ब-प्रतिबिम्ब बनकर
रक़्क़ासा बना फैला होता है।
क़ुश्ते खाये तुम्हारे जिस्म के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थुलथुलेपन को ही नहीं
बल्कि परीवश के
उस ज़रख़रीद, विवश नंगेपन को भी
जो तुम्हारे नामर्द आग़ोश में
निर्लज्जता से पड़े
नीमबेहोशी में भी
छूटने की बेताबी में कँपता होता है।
तलवार की नोक पर लिखा गया
ऐश की दरिन्दगी का यह
शराब नहाया नंगापन उठाये
आईनाख़ाने के ये शीशे,
शीशों की यह फौज़
फर्ज़ के खौफ़ से
गर्दनें झुकाये मजबूर,
मगर शराब नहाये नंगेपन ने
हमेशा के लिए
शीशों की इस फौज़ को भी
एक ऐसा मादरज़ाद नंगापन दे दिया है, कि
जिसके बाहर निकल कर
ये किसी दिन
कोई लिबास नहीं पहन सकेंगे।

जिस्म की भेड़ियाई भूख वाली
खून सने दाँतों की
एक वहशी चीख—
जो अपनी ही प्रतिध्वनि बनकर
उद्दाम और निर्बन्ध काम के
इस आईनाख़ाने के
हर शीशे से टकराती है
सिर मारती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर-फिर चीखती है, कि
बाहर की तमाम दरबारी शाइस्तगी के बावजूद
तख़्तेताऊस यहाँ नंगा है
मादरज़ाद कामान्ध नंगा,
क्योंकि इन आईनाख़ानों में
किसी का भी
कोई लिबास नहीं होता
सिर्फ जिस्म होता है—
हुस्नो-शराब में ग़ुस्ल लेता
मादरज़ाद नंगा एक कामान्ध जिस्म।

आईनाख़ाना—
ऐशगाह, विलास की माँद—

शीशे के इस जिन्न महल में
एक बिम्ब
चाहे वह मोमबत्ती की अकेली रौशनी का हो
या फिर
फ़ानूस से लटका दी गयी
किसी ख़ातून की
मादरज़ाद नंगी लाश का हो—
शीशे के इस जिन्न महल में
प्रतिबिम्बों का विराट अट्टहास बन जाता है।

आईनाख़ाने के
लाखों-लाख जड़े इन शीशों में
जिस तरह
मोमबत्ती के बिम्ब का बिम्ब,
उस बिम्ब के प्रतिबिम्ब
और उन प्रतिबिम्बों के भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर-नीचे
दूर-पास
छोटे-बड़े
सुलगती आँखों वाले
सिर्फ़ बिम्ब ही बिम्ब होते हैं
जिनमें शीशे
शीशे नहीं रह जाते
बल्कि शख़्सियत अख़्तियार कर लेते हैं,
सुलगते नंगेपन की शख़्सियत।
बल्कि जैसे
बिम्बों का एक पाश—
आईनाख़ाने में फैलते हुए
दीवारों पर रेंगते हुए
फ़र्श पर फिसलते हुए
विलास की इस माँद को
अकेली इस रौशनी के द्वारा
काम की सुलगती भट्टी बना रहे हों
जिसकी आग से
हुस्न
शबाब
औरतपन के जलने की चिरायँध आती है।

उसी तरह
फ़ानूस से लटकी
मादरज़ाद नंगी लाश वाली
उस ख़ातून को दुहराते-तिहराते
विलास की यह माँद
अपने शीशई लिबास में लकदक करती
बदज़ात फ़ाहशा हो जाती है,
और तब—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाश के वे बेजान हाथ
कुछ और बेजान हाथ
नहीं, सैकड़ों-हज़ारों बेजान हाथ हो जाते हैं।
लाश की वे शर्मसार छातियाँ,
कुछ और शर्मसार छातियाँ,
नहीं, सैकड़ों-हजारों शर्मसार छातियाँ हो जाती हैं।
लाश के वे बेज़ुबान नितम्ब
कुछ और बेज़ुबान नितम्ब
नहीं, सैकड़ों-हजारों बेज़ुबान नितम्ब हो जाते हैं।
लाश की गोरी जाँघों के बीच से रिसता खून
कुछ और रिसता खून
नहीं, रिसते खून के
सैकड़ों-हजारों अक्स बन जाते हैं
जो विलास की माँद वाले
इस आईनाख़ाने को
हविस का बूचड़खाना बना देते हैं।
बूचड़खाना—
हाँ, जहाँ उल्टे टँगे
खून टपकाते थरथराते जानवर को
चमड़ी से उधेड़ कर
लज़ीज़ ज़ायके के लिए
बोटियों और गोश्त में तब्दील किया जाता है।

ये क़िले
ये महल
ये आईनाख़ाने
तवारीख़ों की बदबू देती इबारतें हैं
जिन्हें छुआ नहीं जाता—
इन्हें छूने वाला ग़ुलाम हो जाता है
और इन्हें छूने वाली रक़्क़ासा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय की खूँटियों पर टँगे हुए
इतिहास के ये लिबास
तार-तार हो रहे हैं।
तुम्हारे और इनके बीच
एक हद है
जिस पर वक्त की तलवार रखी हुई है,
जिसे लाँघकर न ये आ सकते हैं
और जिसे लाँघकर न तुम जा सकते हो।
आखिर तुम क्या देखने के लिए
इस आईनाख़ाने के गुम्बद के नीचे
अकेली मोमबत्ती लिये खड़े हो?
मुझे डर है कि
इसे जलाते ही
तुम्हारे हाथ की
यह अकेली मोमबत्ती
बिम्ब दरबिम्ब में आग के अट्टहास करती
ख़ातून की मादरज़ाद नंगी लाश बनकर
इस शाही-फ़ानूस से कहीं लटक न जाए,
तब तुम क्या करोगे?
हाँ तब तुम क्या करोगे?
मत जलाओ
अपने हाथ की इस अकेली मोमबत्ती को
इस आईनाख़ाने में मत जलाओ,
माना कि यह बूढ़ा हो गया है
मगर यह मत भूलो, कि
आदमी
और उसके खून की बू के लिए
आखिरी साँस तक शेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेर ही रहता है—
इसलिए मत जलाओ
अपने हाथ की इस अकेली मोमबत्ती को
इस आईनाख़ाने में मत जलाओ।

कभी किसी क़िले के
किसी तहख़ाने में
बालों के सहारे लटके
किसी कटे सर को
अपनी ओर घूरते
या बोलते सुना है?
या देखा है?
नहीं—
भाग्यवान् हो, खुशक़िस्मत हो।

आदमी—
जब सिर्फ़
ऐसा एक कटा सर हो जाता है
हुकूमत पर खून टपकाता,

उसे तब इतिहास कहा जाता है।

मगर
जब वह कटा सर—
तुम्हारी ओर मुखातिब होकर
अपने सर के कटेपन,
खून में नहाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने तड़फड़ाते धड़
और उस तलवार के वहशियाना रिश्ते को
सुनाने के लिए आमादा लगता है
तब वहाँ की अँधेरी दीवारें तक चिल्लाने लगती हैं—

यह अतीत है
इतिहास का अतीत है
तवारीख़ों के जबड़ों से बाहर निकला पड़ता
खून टपकाता अतीत है।

इतिहास
या उसके अतीत के पन्नों पर
उस सर से टपकते खून का
यह सिलसिला
जब पूरी तरह खत्म हो जाता है
तब वहाँ का वह
फर्श पर का जमा खून
खुद एक शक्ल अख्तियार कर लेता है
और उसमें आँखें उग आती हैं
तवारीख़ को घूरती आँखें—
जिनमें खून सवार हुआ रहता है।
मगर—
तब तक न उस सर
और न उस काल के इतिहास
किसी की भी रग़ों में
न खून रह जाता है
और न बयान पर आमादा ज़ुबान,
रह जाती है
तो सिर्फ
म्यान में वापस लौट गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्न जटित
वह बेशक़ीमती तलवार
जो तख़्तेताऊस की कमर में लटकी होती है

और तब उसे
इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जाता है।

उस छज्जे पर
अपना ज़रकशी चोग़ा सम्हालते हुए
आसमानों को भी चाक़ करती सी
उठती है
एक आक्रमणकारी ख़ूनी तलवार—
और जो जारी करती है
एक हैरत अंगेज़ ख़ूँरेज़ी फ़रमान,
तवारीख़ों के भी चिंद्दे उड़ा देने वाला
ऐलान—

बहादुरी की तवारीख़ी मिसाल क़ायम करने वाले
लामिसाल जाँबाज़ बहादुरो!
क़ुबूल करो फ़तह की मुबारकबाद।
इस्तकबाल में
कदम चूमता मशरिक़ सुबुक रहा है।
जंजीरों में जकड़े
बेनूर ताज और तख़्त
तहख़ानों में ख़ुदा-ख़ुदा कर रहे हैं
कैद कर लिया गया है
किला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हलाक़ कर दी गयी हैं
कोरनिशें, मनसबदारियाँ, कुल्हे और पगड़ियाँ।
सरकश जिरहबख़्तरों
और धोखेबाज़ अँगरखों के सर कुचल दिये गये हैं
दहशतज़दा हरमख़ाने
अब हमारी मिल्कियत हैं।
हाथियों, ऊँटों और खच्चरों पर लादे जा रहे हैं
इस नाक़िस सल्तनत के
खज़ाने और तोशाख़ाने
कालीनों और नायाब चीजों के
ज़ख़ीरे ही ज़ख़ीरे।
हुनरमंद कारीगरों, संगतराशों
और कारचोरबी के फ़नकारों के अलावा
ग़ुलामों की एक पूरी फौज
कूच के हुक्म की मुन्तज़िर है।

मगर नहीं—
जश्ने-फ़तह के इस अज़ीम मौक़े पर
हम अपनी फ़ौज़
और इसके जाँनिसार हमवतनी बहादुरों को
एक तोहफ़ा देने की पेशकश करते हैं—
हाँ, एक नायाब तोहफ़ा
जो कोहेनूर से भी बड़ा
और कहीं ज्यादा बेशकीमती है—
यह शहर।
यह शहर, शहर नहीं है
इस सल्तनत की अँगूठी का
वो नायाब नगीना है
जिसकी खूबसूरती के पानी को
तवारीख़ों के संगतराश तराशते रहे हैं

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परवान पर चढ़ाते रहे हैं
अपनी तलवारों से।

तीन दिन और तीन रातों के लिए
यह नगीना
यह शहर तुम्हारे हवाले किया जाता है—
लूटने के लिए
तबाह कर देने के लिए
और इसके अख्लाक़ का पानी उतार कर
ज़मीदोज़ कर देने के लिए।
बढ़ो,
हमारे नूरेचश्म बहादुरो!
अपनी तलवारों और घोड़ों के साथ
हर गली-क़ूचे, मुहल्ले और बाजार में
क़यामत बरपा कर दो।
अपनी मशालों से
इस गुलबदन शहर की रातों के अँधेरों को
इतना रौशन कर दो, कि
हर घर, हर मकान आग के लिबास पहने
बाजारों, गलियों में रक्क़ासा बना नाचता फिरे।
''सोने की चिड़िया'' कहे जाने वाले इस मुल्क के
हर घर में चोर तिजौरियाँ हैं
दीवारों-तहख़ानों में महफ़ूज़
बेशुमार दौलत ही दौलत है
जिसके हीरे-जवाहरात
सोना-चाँदी और जेवरात
तुम्हारी
सिर्फ तुम्हारी मिल्कियत बनने को हैं।
हर बन्द दरवाजे
हर खिड़की के पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुपट्टों में, ग़रारों में, चुनरियों में, ओढ़नियों में
सन्दली बदन
गुलनार चेहरे
तुम्हारे
सिर्फ तुम्हारे होने जा रहे हैं
क्योंकि तुम्हीं उनके आक़ा होगे।
हमारे हमवतनी जाँबाज बहादुरो!
तुम्हारे तेजोतुंद हथियारों
और बेपनाह रंगीन मंसूबों के लिए
आज से ये
तीन दिन और तीन रातें
नौरोज़ के जश्ने-चराग़ाँ होंगे।
लूट लो
जो कुछ
और जितना कुछ भी लूट सकते हो,
लूट लो इनके दीन, धरम, ईमान, ज़मीर
इज़्ज़त, आबरू
दौलत के बेशुमार ज़ख़ीरे सब कुछ लूट लो
और
लगा दो आग
इस पसेमर्ग सल्तनत के द्रम तोड़ते गुलबदन शहर को।
एक भी छत्री, कलश, मीनार या गुम्बद
तुम्हारी तलवारों के सामने
सर उठाये न खड़ा हो,
क्योंकि सर तो
सिर्फ तुम्हारा
सल्तनतों को यहाँ से वहाँ तक
तबाह करती आयी तुम्हारी तलवारों का
और तुम्हारे इन जाँनिसार घोड़ों का ही उठा रहना चाहिए
न कि
इस नाकारा और नाक़िस मशरिक़ी सल्तनत का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज से तीन दिन और तीन रातों में
कोई भी ख़ास-ओ-आम
अगर सर उठाने की जुर्रत करता है—
तो फिर चाहे वह तस्बीह हो या जनेऊ
तो फिर चाहे वह डाढ़ी हो या चोटी
तो फिर चाहे वह चोग़ा हो या अँगरखा
तो फिर चाहे वह पर्दानशीं हो या रक्कासा
कहर ढाती तुम्हारी तलवारों के लिए
वह सिर्फ़ एक गर्दन है
और शहज़ोर गर्दन को काँधों पर नहीं होना चाहिए।
जाओ—
बढ़ाओ अपने नेज़े, तलवारें, फ़रसे
और घोड़े
और पाट दो इस शहर के तमाम रास्ते
यहीं के हर ख़ास-ओ-आम बाशिन्दों के
ख़ून और गोश्त से।

आज से ये तीन दिन और तीन रातें हैं
और है—
इस पसेमर्ग सल्तनत का
लबालब भरे जाम सा यह गुलबदन शहर।
टूट पड़ो इसके जिस्म और ज़मीर पर
मसल दो इसका शबाब।
यहाँ की यह फ़ाहशा
दौलत—
यहाँ के हर मकान, हर गोशे
और खिड़की से चिलमनें उठा
हर आक्रमणकारी को
इशारों से दावत देती रही है, कि
आओ, हमें लूटो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल, मसले जाने पर ही ख़ुशबू देता है
खासकर जब वह गुलाब हो।
इस शहर के गुलाब की ख़ुशबू को
तुम्हारी अँगुलियों में सूँघने के लिए
तुम्हारा मुल्क बेताबी से इन्तजार कर रहा है

वतन की वापसी के
अब सिर्फ तीन दिन और तीन रातें हैं।
बढ़ो, अपनी तलवारों और घोड़ों के साथ बढ़ो।
तवारीख़ के अज़ीमुश्शान बुलन्द दरवाजे
इस तरह
रोज-रोज खुले नहीं मिला करते
वह भी सबको
इसलिए बढ़ो
और इस तवारीख़ी फ़तह को मुकम्मिल अंजाम दो।

यह कौन
इतनी रात में
किले के इन लावारिस सन्नाटों में
उजड़े दयार सी
इन बेवा, बेआबरू तामीरों के नीचे
दहशतज़दा आबनूस अँधेरों में
बुझा हुक्का गुड़गुड़ाता
तवारीख़ का टूटा बुत बना
यह कौन
अकेला बैठा है?
क्या आलीजाह हैं?

आलीजाह!
सलाम कुबूल हो गुलाम का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह बेअदबी के साथ
पेशेख़िदमत होने के लिए
यह नाचीज़ निहायत शर्मिन्दा है,
आपका
आपकी अज़ीम सल्तनत का
यह आला शहर आदाब बजा लाता है।
आप हैराँ न हों मालिकेजहाँ!
आग और बदबू का यह पैरहन
भेस नहीं है
और न ही
बहुरूपिये के स्वाँग का मसखरापन।
नहीं, आलीजाह! नहीं
यह तो इतिहास की नंगी सचाई है,
तवारीख़ की जलती और बदबू देती हक़ीक़त है
जो अपनी महज़ मौजूदगी से ही नुमायाँ
और खामोश वजूद से
हुज़ूर के सामने बयाँ हो रही है।
हुज़ूरे-आलिया के सल्तनत की
और आपके इस शहर के अख़्लाकी शान का पानी उतार
गयी है
वह तलवार
जो लूट ले गयी है—
हुकूमत का रौबदाब, हरमख़ाने, ख़जाने, ताज और तख़्त
और खसोट ले गयी है
फ़नकार, कारीगर, हुस्न और बाजार
जो बेड़ियों में जकड़े
ग़ुलामों के क़ाफ़िलों से बढ़ गये हैं
अपने वतन की ओर जाते
मैदानों, नदियों और दर्रों की ओर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलीजाह! आग की लपटों चलकर
बदबुओं के चीथड़े लपेटे
यहाँ की शाही फ़िज़ाओं में
चिरायँध लिखते
खून सने पैरों के निशान बनाते हुए आने के लिए
यह ग़ुलाम क़ुसूरवार है
मगर मेरे आक़ा!
हर मकान, हर गली, हर छज्जा
तन-बदन में लिपटे आग के साँपों से
अपने को छुड़ाता बेहाल, बेतहाशा
बाजारों, शहरपनाह की दीवारों
और दरवाजों की ओर
एक मशाल की तरह खुद जलता भागता
चिल्ला रहा है, चीख रहा है,
पुकार रहा है
अपना खुदा, अपना ईश्वर, अपना करतार।

हलाक़ कर दिये गये मर्द
ज़िबह कर दी गयी औरतें
और यतीम बना दिये गये मासूम—
घर-आँगनों, नालियों, सड़कों पर
खून में लिथड़े
आग में भुने पड़ रहे सड़ाँध मार रहे हैं।
बदबुओं का भभकारा
घरों, गलियों-मुहल्लों में ही नहीं उठ रहा है
आलमपनाह!
बल्कि मादरज़ाद नंगे लोगों के जिस्मों और आँखों में लिखा
सड़कों पर रहम की भीख माँगता भाग रहा है।
खिड़कियों से कूद कर ख़ुदकुशी कर रहा है।
दरिन्दी हविस की शिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ की कटी छाती
दूध के लिए मुँह में दबाये बच्चों को
कुत्ते घसीट रहे हैं।
इतनी दूर से
वाक़यात की यह हैवानियत
यह क़ैफियत बयानी
हुज़ूर को सुनायी तो दे रही है न?
वैसे भी
किसी नाचीज़ ग़ुलाम को
अपने आक़ा के ज्यादा नजदीक नहीं जाना चाहिए
और इस वक्त तो
ग़ुलाम सिर्फ आग, ख़ून और बदबू है।
और यों भी
आग ही आग के
और बदबू ही बदबू के करीब हो सकती है।

जहाँपनाह! तवारीख़ की दोज़ख़ी आग का
यह पैरहन
जो आग भी है
और जिसमें से जलते, ख़ून और गोश्त की
तेज चिरायँध भी आ रही है।
माफी और जाँबख़्शी चाहता हूँ आलीजाह!
इस बेअदबी के लिए, कि
मुझे
क़िले के शाही रौब
और दरबारी रवायात के कालीनों पर
ख़ून सने पैरों के
फरियादी निशान
शिकायती धब्बे छोड़ते हुए नहीं आना चाहिए था
और न ही अपने साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आग को लाना चाहिए था
जिसमें तामीरें, तहज़ीबें और तमाम रियाया भस्म हो रही है।

वैसे उस खूनी तलवार ने
जो भी क़हर यहाँ ढहाया हो
बेआबरू किया हो
फिर भी हुकूमत को
सल्तनत को
और रियाया को
यह तो मालूम ही होना चाहिए कि
तख़्तेताऊस, तख़्तेताऊस ही होता है
क़िले, क़िले ही होते हैं
और दरबार, दरबार।
मेरे आलीजाह !
मेरी जान और माल के मालिक!
मेरे आक़ा!
इस बेअदबी और बदज़ुबानी के साथ
पेशेख़िदमत होने के लिए
और हैरतअंगेज़ वाक़यात बयानी के लिए माफी चाहता हूँ।

मगर सल्तनते-आलिया! इतना जरूर है, कि
यहाँ इस क़िले में
बारादरियों में, मेहराबों में, दालानों में
क़ब्रस्तान का सा सन्नाटा तारी है
और
आपके इस आला शहर में
धू-धू करता
सल्तनत और हुकूमत का
जलता महाश्मशान—
अघोरी सा चीखते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लपटों वाले हाथों से
आसमानों को पीट रहा है
दस्तक दे रहा है
और रहम के बन्द दरवाजों के सामने
धीरे-धीरे खाक होता जा रहा है।

खाई और मैदान के सामने
क़िले के कँगूरों वाला ताज पहने
यह जो खूनी बुर्ज़ है
इस पर से
कितनों ने खुद छलाँगें लगायी होंगी
और हलाक़ कर दिये जाने के बाद
कितने यहाँ से
नीचे फेंक दिये जाते रहे होंगे
इसे कोई नहीं जानता,
शायद खुद हुकूमत भी।
कैसे हुकूमते आलिया के
खूनी तेवर
और सल्तनती शान से खड़ा है
यह बुर्ज़
जैसे फौलादी निज़ाम
एक हाथी बनकर
तवारीख़ पर पैर रखकर खड़ा हो।

आज की यह जलसा-सुबह
अबीर-गुलाल सी
किले, मैदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और क्षितिज तक फैले, तने
आसमान में
अबाबीलों सी उड़ रही है।
सुबह की हवा का मलमली ठंढापन
गुलाब-जल के ठंढे छींटों सा
कैसा ख़ुशगवार है।
सुबह की धूप
न सिर्फ आसमान का चन्दनी दुपट्टा है
बल्कि किले की पथरीली दीवारों पर
वैसी ही सुनहरी झूल लग रही है
जैसी कि हाथी पर की झूली पड़ती
किमख़ाब की झूल हो।
लहरा रहे हैं
यहाँ से वहाँ तक
कँगूरों पर, फ़सीलों पर, बुर्ज़ियों पर, मीनारों पर
सल्तनते-आलिया के
रेशमी परचम
हुकूमत के सुनहरे निशान
और परिन्दों सी पंख फड़फड़ाती झण्डियाँ।

किले से निगरानी करती
तोपें—
दहाड़ने के लिए तैयार
मगर तोपची
जैसे उन पर लगाम लगाये हुए हैं।
तातारी और हब्शी गुलाम
सल्तनत की चौकन्नी और खूँखार आँखें बनकर
धूप में चमचमाती तलवारें लिये
निगहबानी में मुस्तैद हैं।
हर अमीर-उमरा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस्म और लिबास को
दूर से सूँघते
आँखों से टटोलते
तथा कमर में लटके उनके हथियारों के इरादों से
इस आला निज़ाम के
जासूसी करते भाले और नेज़े बाख़बर हैं,
क्योंकि ऐसे ही
जश्न और जलसे
आस्तीन के साँपों के लिए सुनहरे मौके होते हैं
जो मनसबदारियों, जागीरदारियों
ख़िल्वतों और पदवियों के भेस में
कोरनिशें बजाते
तख़्तेताऊस के चारों ओर घात में रहते हैं।

आज की इस जलसा-सुबह में
सामने के मैदान के सिरे पर
रंगीन झालरें फहराता
पूरी शान-शौकत के साथ खड़ा है
गुलदस्ते सा
एक शाही शामियाना—
जिसे घेर कर
चौपड़ की फ़र्द पर रंग-बिरंगी गोटों जैसी खड़ी हैं
छोलदारियाँ।
हथियार बंद पल्टनें दरपल्टनें
अपनी जर्सियों, हथियारों और अस्लाह से
खौफ पैदा करतीं
आम और खास की हदबन्दी किये
मैदान के सिरों पर खड़ी हैं।
अरबी, तुर्की और सिन्धी घोड़े
हिनहिनाते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़िज़ाँ में होने वाली
हर मुमकिन, गैर मुमकिन हरकत को
सूँघते हुए खड़े हैं
ताकि मौका पड़ते ही
या किसी के पर मारते ही
उसे अपने खुरों से रौंद दें।
और हुकूमत की
इन सारी बारीकियों से
दरबारी नजाकतों से
बेखबर रियाया
दूर-दराज़ से आये तमाशाई
कुतूहल और दहशत के साथ
पीछे दूर
कहीं तो भी ठट्ठ के ठठ्ठ में
भीड़ बनकर
धक्का-मुक्की करते
टीलों पर
इमारतों की सीढ़ियों पर
छज्जों और बारजों पर
नदी के कगारी टिब्बों पर
पेड़ों पर चढ़े
न जाने कब से
आज का यह जलसा देखने आये बैठे हैं, कि
कब यह तमाशा शुरू होता है।
तवारीख़ की अहमियत
और सल्तनत के रुतबे से बेखबर
आम रियाया
यह नहीं जानती, कि
ऐसे जश्न
मेले-ठेले या तमाशे नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास बनाने वाले इन जश्नों को
अहले-ज़ुबान में
तमाशा भी नहीं कहते।
ये तो
सल्तनतों की फ़तहयाबी के मौके के
जश्ने-फतह होतें हैं,
इन्हें तमाशा कहना
तौहीन है—
ज़ुबान की भी और सल्तनत की भी।
जश्ने-फ़तह के मौके पर
खाई और मैदान के सामने
किले के कँगूरोंवाला ताज पहने
यह जो खूनी बुर्ज़ है—
अभी-अभी वहाँ
बिगुलों की आवाजों के बीच लाया जाकर
वहाँ की उस ऊँची धूप में
लम्बे भाले में छिदा
खड़ा कर दिया गया है
एक सर—
जो बाग़ियों के किसी सरगना का ही होना चाहिए,
क्योंकि इस तरह की नुमाइश
खास सरों की ही हुआ करती है।

भाले में छिदा खड़ा सर
लगता है
जैसे बुर्ज़ का ही सर है,
मगर भला वफादार बुर्ज़ के कन्धों पर
बाग़ी सर कैसे मुमकिन है?
नहीं,
यह सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाग़ियों के किसी सरगना का ही है
बुर्ज़ तो इसे सिर्फ़ उठाये हुए है
ताकि लोग देख सकें, कि
यह—
बाग़ी का वह सर है
जिसे, उठाने की कोशिश की गयी थी।
सर—
भाले में छिदा खड़ा सर,
जो कल तक जिरहबख़्तर से लैस
हाथ में सल्तनत की फौलादी तलवार लिये
अरबी घोड़े पर सवार
तवारीख़ के पन्नों पर
शाही फ़रमान की तरह
खौफ़ पैदा करता ग़ुजरता रहा होगा।
मुमकिन है यह सर—
ताज के किसी दावेदार का हो
या सल्तनत का खौफ़
हुकूमत का क़हर
और निज़ाम की दशहत फैलाते हुए
विन्ध्या-सतपुड़ा के पार
कृष्णा-गोदावरी के पानियों को भी
पानी पिला देने का सेहरा
जिसके सर बँधा हो,
यह सर—
उसी जाँबाज़, शेरदिल सूबेदार
या सिपहसालार का हो
जो सियासी मात खा गया हो
और शतरंज की किसी चाल में
वज़ीर ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि पिटे प्यादे सा
बिसात पर ही
जिसका सर-क़लम कर दिया गया हो।
फिर भी सर—
किसी का भी हो
अपने कंधों पर
तभी तक बने रहने का हक़दार है
जब तक वह
सिर्फ़ दरबार में ही
कोरनिश में झुका हुआ न हो
बल्कि सल्तनते-आलिया में
कहीं भी उठा हुआ सर न हो,
वर्ना हुकूमतें
उन कंधों और सर के बीच
सिर्फ अपनी तलवार लिख दिया करती हैं।
और तब वह सर
ग़ुलामों के द्वारा उठाये
जवाहरात जड़े बड़े से तश्त में
रेशमी रूमालों से ढँका
एक बेशकीमती तोहफ़े
एक नायाब नज़राने के रूप में
पेशेख़िदमत किया जाता है
और तख़्तेताऊस की
सिर्फ एक
हिक़ारत
उसे
भाले से छेद कर
एक नुमाइशी चीज बनाकर
सल्तनत और आम रियाया के लिए
इस खूनी बुर्ज़ पर खड़ा कर देती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकि लोग जानें और समझें कि—
सल्तनतें
हुक़ूमतें
बाग़ियों को इसी तरह ख़िल्वतें देती हैं।

बेड़ियों में, हथकड़ियों में
गले और कमर से कसी रस्सियों में जकड़े
लाये जा रहे हैं हतभागी बाग़ी,
सल्तनत की निगाह में दग़ाबाज़ सूबेदार,
हुकूमते आलिया के लिए
चुनौती बन जाने वाले नमकहराम सिपहसालार
और बदक़िस्मत, दोज़ख़ी कुत्तों से भी गये गुज़रे
हजारों युद्धबन्दी।
तलवारों, भालों और कोड़ों से घिरे
ये बदहवास, त्रस्त, फटेहाल, अधनंगे
मगर संगीन गुनहगार
जो मार और यंत्रणा से पहले ही अधमरे हो गये हैं
ज़िबह और हलाक़ के लिए
जानवरों से ठेले जा रहे हैं।
मैदानों में, खुदे गड्ढों में
बँधे हाथों उन्हें उतार कमर तक गाड़ा जा रहा है,
जंजीरों में जकड़े हुए ही
तरह-तरह से खम्भों से बाँधा जा रहा है
किसी की गर्दन
तो किसी की टाँगें बाँध दी गयी हैं
ताकि कुत्तों के झपटने से समय अपने को छुड़ा न सकें।
तिकटी पर खड़ा कर कुछ की टाँगें
इतनी फैला कर बाँध दी गयी हैं, कि
घुड़सवार
इन्हें बीच से चाक़ करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसानी से घोड़ों के साथ गुजर सकें।
किसी को नुकीले कीलों वाले तख्त पर खड़ा कर
रस्सियों से कस दिया गया है
कुछ को उल्टा टाँग दिया गया है
ताकि घोड़े दौड़ाती आती तलवारों को
इनके सर क़लम करने में कोई दिक्कत पेश न आये
कीलों ठुकी खून सनी हथेलियों पर लटके
दहशतज़दा नामुराद
उन भालों का रास्ता देख रहे हैं
जब भाले उन्हें छेदते हुए गुजरेंगे
और अन्तड़ियाँ ख़ून उगलती लटक आएँगी।

और शाही इस्तकबाल में
तोपें दहाड़ने लगी हैं
नौबतें झड़ने लगी हैं।
होशियार करते बिगुल
नौबतख़ाने के ऊपर मुँह उठाये बजने लगे हैं।
सल्तनती ताक़ीदें
किले के रास्ते से गुजरते हुए
फाटक दर फाटक गुँजाते हुए
सदर-दरवाजे के मुहाने पर पहुँच
पूरे मैदान और माहौल पर तारी हो जाती हैं—
बाअदब, बामुलाहिजा होशियार!!

ख़ुशबुएँ, अँगरखे, चोग़े, डाढ़ियाँ, तिलक
पगड़ियाँ, कमरबन्द सबकी निगाहें
लकदकाते, खामोश तख़्तेताऊस पर लगी हैं
और धड़कते दिलों के साथ
रास्ता देखा जा रहा है—
उस शाही-हाथ के उठने का—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो तवारीख़ों के लिए हुक्म होता है
सल्तनत के लिए फरमान होता है
और बाग़ियों के लिए
क़हर।
और ऐसा हाथ—
शाही-हाथ उठता है।

अंकुशों से पीड़ित हाथियों का
एक गुस्सैल रेला
महावतों को लिये-दिये
दौड़ता पहाड़ बना
कमर तक गड़े बन्दियों की ओर हुमसता है
और तरबूजों की तरह बाग़ियों के सरों को
चटखाता, चूर करता
खून टपकाते धड़ों को सूँड़ों में लपेट
हवा में उछाल
गले के घंटों की आवाजें झुलाता
मैदान से गुजर जाता है।
रही होंगी
जरूर रही होंगी चीखें—
इन नामुराद, बदनसीबों की भी,
मगर वे सब
गलों से फूटने के पहले ही
हाथियों के वजनी पैरों से दबकर, कुचलकर
सूँड़ों से कहीं दूर फिंकी दम तोड़ बैठी होंगी।
मांस के छितरे छीछड़े, टूटी हड्डियाँ
खून में लिथड़ी पड़ी थीं।
अब कहीं कुछ नहीं है।
आदमी
लिथड़े टुकड़ों-टुकड़ों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ुद अपने ही ख़ून में डूबा, सना
तवारीख़ का एक नेवाला बना छितरा पड़ा था।

भाले उठाये
तलवारें लपलपाते
बाज़ की तरह झपटते चले आ रहे हैं
घुड़सवार।
एक तेज झटके के साथ धँस जाते हैं भाले
सीनों में, पेट में
और गुजर जाती हैं सर-क़लम करती तलवारें
और लिख उठते हैं
ख़ून में सने धड़ और सर।
अँतड़ियाँ भरभरा कर
ख़ून की कै करतीं
छटपटाती रग़ों के साथ बाहर लटक आती हैं।
असह्य पीड़ा में झटके पड़ते सरों को
कन्धों से उड़ा दिया जाता है
और कबन्धों के
कन्धों से खून के फौवारे ही फौवारे
चारों ओर हवा में
छूट उठते हैं, नाच उठते हैं।
अपने ही खून के फौवारे में नहाते
तड़फड़ाते धड़—
खून के अनार लगने लगते हैं।
बिना सर के
अँतड़ियाँ लटकाये
तिकटी में हथेलियाँ जड़े बाग़ियों के
टूट-टूट उठने वाले कबन्ध
चीत्कार की खामोश ज़ुबान में
मछलियों से छटपटाते उछले पड़ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है चीखों की भी अँतड़ियाँ
खून उगलती
कबन्धों की जीभ बनकर बाहर लटक आयी हैं।

भेड़ियों जैसे खूँख़ार कुत्तों की दरिन्दगी को
अपनी ओर झपटते देख
खूँटों और खम्भों से बँधे
बाग़ियों और बन्दियों की हौलनाक चीखें
माहौल को और भी चींथने लगती हैं
कुत्ते
भूखे भेड़ियों जैसे कुत्ते
लार टपकाती
खौफनाक लाल-लाल लम्बी जीभें निकाले टूट पड़ते हैं—
पंजों से, दाँतों से
जबड़ों की नुकीली पकड़ से
नोंचते, बकोटते फाड़ने लगते हैं—
जिन्दा आदमी का गोश्त और खून—
और खूँख़ार होने के लिए उन्हें चाहिए ही क्या?
बोटी-बोटी नोचते, चबाते
पंजों से जिस्म उधेड़ते
खून में पूरी तरह नहा उठे हैं।
खून की बू
आदमी के खून की बू ने
उनके भेड़ियेपन को
और भी खूँख़ार, खौफनाक जंगली बना दिया है।
गोश्त
ऐसा गोश्त
इतना सारा गोश्त वह भी ख़ून से तरबतर
चबाते लम्बे मुँह के दोनों ओर
खून टपकाता गोश्त बाहर निकला-निकला पड़ता है

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पंजे अँतड़ियाँ उधेड़ने लगते हैं।
यह सीमातीत यन्त्रणा
असह्य पीड़ा
ज़िबह और हलाक़ से भी ज्यादा
क्रूरता का पैशाचिक खेल—
खून की होली बनकर
हुकूमत के लिबास
अमीर-उमरा के अँगरखों
सिपहसालारों के जिरहबख़्तरों
डाढ़ियों की पाक़ीज़गी
और तिलकों की पवित्रता को सराबोर कर गया है।
हैरतअंगेज़ रियाया
अपनी अनामता पर
क्या आदमी के ख़ून के धब्बे लगवाने आयी थी?
किले के हरमख़ानों की संगमरमरी जालियों के पीछे
गुलाबी चेहरों और नरगिसी आँखों को
जैसे काठ मार गया,
अनायास दुआ में उठे
उनके निर्दोष, बेज़ुबान हाथों से भी
जैसे खून
आदमी का खून
टप-टप टपक रहा है—
''परवरदिगार! किस मुँह से दुआ माँगी जाए?
रहम कर, मालिकेजहाँ! रहम कर!! रहम!!''

मँडराने लगी हैं आसमान में
चीलें
और नजरें जमाये बैठे हैं
उस बड़े से पेड़ पर गिद्ध।
सिवाय हड्डियों के, बेटियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खून में लिथड़े पड़े गोश्त के टुकड़ों के,
कटे सरों से निकली पड़ती खून सनी आँखों के
और चिपचिपाते
थक्कों में जमते जाते खून के डबरों के
और कौन बचा है यहाँ?
कभी कोई हरकत करते जिस्म के किसी टुकड़े के
और क्या बचा है यहाँ?
हवाओं को भी गुजरते डर लग रहा है कि
कहीं उनके दामन पर भी
आदमी का खून न लग जाए।
बेचारी धूप तो
पहले ही लहूलुहान
हाथियों के पैरों
घोड़ों के खुरों से रुँधी
मैदान में खुद ही लिथड़ी पड़ी थी।

खाई और मैदान के सामने
किले के कँगूरेवाला ताज पहने
खूनी बुर्ज़ पर से
भाले सहित
सर—
बाग़ी का सर
हमेशा के लिए खाई में फेंक दिया गया है
क्योंकि जश्ने-फ़तह समाप्त हो गया है।
तोपें फिर गरजने लगी हैं
होशियार करती ताकीदें
सदर-दरवाजे से गुजर कर
किले के भीतर से सुनायी दे रही हैं
और मैदान में
तिकटियों में झूले पड़े कबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस्म के चिथड़े
खून-मिट्टी में सने कटे सर
गोश्त पर टूटे पड़ते कुत्ते
नीचे उतर आयी चीलें और गिद्ध
तथा स्याह होता
आदमी का मरा खून सुन रहा है
ताक़ीदें, दर ताकीदें—

बाअदब, बामुलाहिजा होशियार!!

संगमरमरी गुम्बद के
इन सायंकालीन सन्नाटों में
यह कौन
छुपते-छुपाते
बूढ़े पैरों सीढ़ियाँ चढ़ते हुए
निहायत आहिस्ता
झँझरियों वाले पल्ले खोलता है
ताकि खामोश सोयी
रागात्मिकता को
काई ख़लल न हो।

उजड़ी महफिल की आखिरी बन्दिश सा
कँपते हाथों में
जैसे मोमबत्ती नहीं
खुद को उठाये-उठाये
यासमीन के ज़ईफ़ दरख़्त सा
अपने फूलों को सम्हाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज
सिरहने आकर खड़ा हो जाता है
सहलाने की तरह।
धूल ही नहीं
वक्त को भी पोंछ,
मोमबत्ती सुलगा
आँख बन—
पुतलियों के पानियों के भीतर से निकलते हुए
भर आँख
उसे देखने लगता है
जो उसके लिए क़ब्र नहीं है।

अँगुलियों और आँखों का
यह संगमरमरी राग-स्पर्श
ग़ुजरी जिन्दगी पर
कैसे नाजुक कदमों चलता लगता है
जैसे खुशबुओं के रंगीन कदमों वाला
गुलाब हो,
नहीं,
खुशबुओं के जल वाला
छिंटा पड़ता फौवारा हो।

दीवारों-गुम्बदों से
अपनी सारी रौशनियाँ उतार
और उस सन्नाटे से भी अपनी रौशनियाँ समेट
मोमबत्ती—
धीरे-धीरे अपनी रौशनियों में उतर
धुएँ की एक लकीर में लहराती
गुल हो जाती है,
गोया यह मोमबत्ती की नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी इबादत थी
जो खत्म हुई।

बूढ़े पैरों को घसीटते हुए
किसी तरह वापस
किले के अपने बन्दी छज्जे में खड़े हो
सामने के घिरते अँधेरों में
देखने लगता है—
वहाँ भी तो
गुम्बदों से अँधेरा
अब लटक आया होगा,
दीवारों से निकल
अँधेरे और सन्नाटे चहलकदमी करने लगे होंगे।
उसे—
इन चहलकदमियों से जरूर ही परेशानी होती होगी।
इबादत के खत्म होने से
मोमबत्ती के बुझे रहने का
क्यों कोई ताल्लुक़ होना चाहिए?
नहीं, कल से नहीं होना चाहिए?
और मुमकिन है
नदी की ओर से आती ठंढी हवाओं में
खासकर पिछली रातों में
संगमरमर ओढ़े रहने पर भी
कुछ तो........
नहीं,
इसके लिए भी कुछ तो करना ही होगा,
मगर चुपचाप
अपने वहाँ जाने की तरह।

किले से कब्र के फासले पर
उड़ते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद वक्त के कुछ वर्क़
जिन पर
किसी के पैरों के निशान जैसे
कुछ निशान,
यासमीन के फूलों जैसे
कुछ फूल
मगर आहिस्ता, पोशीदा।

किले की कलगी जैसे
नौबतखाने के इन कँगूरों पर
आकाश की गहराइयों को
और भी गहराते हुए
कुछ टँगा है।

हाँ, जो टँगा है
वह मैं हूँ
अनाम
मैं।

मैं
न तो आदमी हूँ
न उसकी लाश ही
बल्कि इन दोनों पर से
उधेड़ कर उतार ली गयी
खून टपकाती खाल हूँ।
इतिहास की धूपों में
सूखती हुई एक खाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझमें
जो आदमी था
वह इतिहास के घाट उतार दिया गया
लाश का क्या हुआ नहीं जानती,
मुमकिन है वक्त के जंगलों में फेंक दी गयी हो।
अब जो निश्चित रूप से अपने बारे में पता है
वह यह, कि
मुझे नहीं ही मरना है
कभी—
क्योंकि मरते आदमी हैं
प्राणी हैं
खालें नहीं।
मुझे तो
भेड़ियों को अपने में छुपाये रख
आदमी बना दिखना है।
आदमी—
हाँ आदमी, जिन्दगी चलता नहीं
इतिहास चलता।

हर इतिहास
हर तवारीख़ का अपना एक किला होता है
और किले में होता है
एक तख़्तेताऊस—
जो अपनी जड़ाऊ तलवार
ढाकई मलमल की ज़रकशी भूषा
और शाही रौबदाब के साथ
कभी अकेला
तो कभी कोरनिशों और आदाब-अल्क़ाब से घिरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कभी ख़ुशबुओं वाले
लहराते गुलबदनों की शराब में मख़्मूर।

वैसे तख़्तेताऊस भी
शाही लिबास और जाहोजलाल में तलवार ही है,
और तलवार—
हमेशा
हर जगह
हर मौके
और हर किसी के हाथों में तलवार ही होती है
गुलाब सूँघते वक्त भी।
दरअसल यह उसकी मजबूरी ही है, कि
उसे ख़ुद से भी ज्यादा
एक तलवार ही होना होता है।
वैसे ख़ुदा जाने वह खुद कब होती है
या हो भी पाती है कि नहीं।

चाहे वह अकेली बुर्ज़ पर खड़ी
बीते इतिहासों में खोयी
कुछ देख रही हो
जैसे जमशेद का प्याला हाथ में है
और इतिहास की घटनाएँ
आँखों के आगे से गुजर रही हैं—
कोड़े खाते गुलामों का
आलीशान पिरेमिडों का बनाया जाना,
खूँखार घोड़ों का भाले चमकाते
पामीर के पठारों से नीचे आकर
तमाम मुल्कों में तबाही ढाना,
या संगमरमर के रौज़े का
एक हसीन ख्वाब बनकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फौवारे सा धीरे-धीरे उठना
और गहरे आसमान में
यासमीन के बड़े से फूल की तरह
नाजुक खुशबू बनकर खिल उठना,
या जलते क़ुतुबख़ानों की ख़ाक होती तामीरें हों,
या फौजियों के खौफ़ के आगे
दम तोड़ती, चीखती-चिल्लाती मासूम बस्तियाँ हों—
जमशेद के प्याले में यह सब दिखता है।
मगर ऐसी तसव्वुरी के वक्त भी चौकस तो रहना ही होता है
खुद तलवार से ज्यादा
हिफाजत में तैनात निज़ाम को।
इसीलिए रेशमी परदों की
हर आड़
हर सलवट
या हर हरकत पर निगहबानी जरूरी होती है
क्योंकि कुछ भी बेमानी नहीं होता।
जैसे ही कोई परदा
सलवटों के पीछे आहिस्ता कदम
एक तलवार बनकर
झाँकने की अभी कोशिश ही कर रहा होता है, कि
तभी उसकी पीठ में उतर गयी होती है
कोई मुस्तैद तातारी कटार।
इसलिए खुद तलवार को भी
तसव्वुरी के लमहों में भी चौकस तो रहना ही होता है।

वैसे दरबार भी
सिर्फ खुशबुओं, तस्लीमों
और कोरनिशों में फर्श चूमती पगड़ियाँ
या सर से तलवार लगाये
जिरहबख़्तरों की वफ़ादारियाँ ही नहीं होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि कसमें खाती हुई
हर आँख के पीछे के
निहायत पोशीदा शिगाफ़ों को भी कहते हैं
जिन्हें उतनी ही मासूमियत से पढ़ भी लिया जाता है।
फिर भी
इतने लाव-लश्कर
दरबारियों और जनानख़ानों की रंगीन गहमागहमियों के भी
कभी-कभी तख़्तेताऊस
अकेला
सिर्फ़ अकेला—
तमाम हिफाजतों की मौजूदगी के भी
अपने ही किले
अपनी ही हुकूमत
और अपने ही निज़ाम के बीच
निहायत डरी हुई एक शख़्सियत—
जो ज़रियों, कारचोबी के जवाहरात जड़े पोशाकों से लैस
हर जश्न, हर फतह, हर जंग
और क़त्लेआम के बाद परेशान
सिर्फ परेशान टहलती होती है—
कभी दालानों में, कभी गलियारों में
मगर ज्यादातर खुद के भीतर के
उन अँधेरों में
जहाँ न मशालें जल रही होती हैं
न रौशनी देते फानूस होते हैं
और शायद
किसी अकेली शमा की
मासूम आँखें भी नहीं टिमटिमा रही होती हैं।
वहाँ होता है
सिर्फ अँधेरा—
बल्कि ऐसा अँधेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो किसी शाही हुक्म का ताबेदार नहीं
बल्कि वहाँ तो तवारीख़ों के अँधेरे भी
बमुश्किल तमाम दीवारें टोहते-टटोलते
अन्धों की तरह चल रहे होते हैं।
मगर ऐसे अँधेरों में
यह कौन और क्या होता है—
जो होते हुए भी नहीं जैसा होता है
और जो न होते हुए भी होने जैसा होता है,
यह कौन और क्या होता है?
हाँ, कौन और क्या होता है?

तख़्तेताऊस! यह तुम्हारा ही अँधेरा है
जिसमें यह तुम्हारी अन्तरात्मा
यह तुम्हारा ज़मीर—
होते हुए भी नहीं जैसा लगता है
और न होते हुए भी होने जैसा लगता है।
शाही हुकूमत के सारे लिबास और जामे उतार
तुम्हारे सामने
तुम्हारी ही सच्चाई बन कर खड़ा है।
मगर तुम्हें
यह अँधेरे की दीवार लगती है
जिसको तुम अपनी काँपती अँगुलियों से टोह रहे हो
ताकि दस्तक दे सको
और तुम्हारी अन्तरात्मा
तुम्हारा ज़मीर
उस डरी दस्तक की प्रतिगूँज दस्तक बनकर
तुम्हें सिर से पैर तक ठंढा कर जाएगी।
यह जमशेद का प्याला नहीं है
जिसमें सिर्फ चीजें दिखती हैं
यह ज़मीर का वह प्याला है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें तुम
और तुम्हारा वजूद ही दिखलायी देगा।
चारों ओर तवारीख़ों के
और अपने इस अँधेरे में
आसमान का स्याह फैलापन देख रहे हो?
आसमान जैसे अपने हजारों पैरों के साथ
नीचे उतर रहा है,
नहीं, ये आसमानी पैर नहीं
फन्दे हैं, फन्दे—
लटकते फन्दे, झूलते फन्दे
सिर्फ फन्दे ही फन्दे हैं
जैसे इतिहास की वर्णमाला
आसमान के अँधेरों में
तवारीख़ों ने लटका दी हों।
हाँ, इन फन्दों में लटके हुए हैं
लोग ही लोग—
जिन्हें तुमने
और तवारीख़ों ने
धरती और आकाश के बीच
अँधेरों में टाँग दिया है।
इनमें से ज्यादातर ऐसे हैं
जिन्हें तुम नहीं जानते हो
मगर कुछ ऐसे जरूर हैं
जिन्हें तुम इतना ही जानते हो
जितना कि खुद को।
वैसे डरो नहीं
तख़्तेताऊस होकर डरा नहीं जाता
फिर, मुरदे चला भी नहीं करते।
मगर क्या यह ताज्जुब की बात नहीं है, कि
इन तमाम नीले पड़े ओठों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नाम
सिर्फ एक नाम
ज़मीं पपड़ी सा चिपका रह गया है?
तुम शायद यही न कहने जा रहे हो, कि
यह एक नाम
तुम्हारा नहीं हो सकता?
मगर सवाल है, क्यों?
क्यों नहीं हो सकता?
इस मुल्क में
इस सल्तनत में
सिर्फ एक नाम के ही तो डंके बजते रहते हैं
भला कोई दूसरा नाम
अपने कंधों पर सलामत रह सकता है?
वक्त और सल्तनत पर तारी
इस अँधेरे में
फन्दे ही फन्दे झूल रहे हैं
और जिनमें बाहर निकली पड़ी आँखें लिये
झूली पड़ती गर्दनें हैं
जो वैसे तो मर चुकी हैं
मगर दूसरों के लिए।
तख़्तेताऊस की अदम मौजूदगी में
इस्तकबाल ये आज भी कर रही हैं
सिर्फ घूरने की थोड़ी बेअदबी के साथ।
जाने दीजिए
इन मरे हुओं की जाँबख्शी कीजिए।

तुम शायद कुछ परेशानी महसूस कर रहे हो न?
ठीक ही है,
अपनी अन्तरात्मा
अपने ज़मीर से आँखें मिलाते खड़े रहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परेशानी का बायस तो होता ही है।
पैरों के नीचे,
तहख़ानों से आती चीखें
चींटियों सी
पैरों पर चढ़ने की कोशिशें कर रही हैं न?
दरअसल मसल दी जा सकने वाली चींटियों की
भला औक़ात ही क्या होती है
फिर भी ये कुछ ज्यादा ही मगरूर होती हैं।
झाड़ दिये जाने पर भी
फिर वहीं चढ़ती हैं
जहाँ उन्हें चढ़ना होता है,
इसलिए परेशान होने से कोई लाभ नहीं,
क्योंकि कभी न कभी चीखें ऊपर आती ही हैं
जिस तरह लाशें
पानी की सतह पर उतरा आती हैं,
खासकर तब और भी
जब ये चीखें
या तो ख़ुद कभी तख़्तेताऊस रही होती हैं
या उसकी हकदार होती हैं।
फिर भी परेशान होने की जरूरत नहीं है
क्योंकि चीख़ों के जिन्दा रहने से
आदमी जिन्दा नहीं रहा करता।

सिर्फ आग ही नहीं
कभी-कभी कुछ आवाजें भी होती हैं
जो खाक़ चाहे न भी कर सकें
मगर जला तो दिया ही करती हैं।
हाँ, यह जलने की बू
पैरों के नीचे बिछे इस कालीन से आ रही है
जो तहख़ाने के मुँह पर बिछा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँधेरे में तुम्हें ख़याल ही नहीं रहा, कि
तुम
गुम्बद में लटकी खून टपकाती लाश के नीचे खड़े हो।
ज़मीर से कहीं ज्यादा बेशकीमती
यह शाही लिबास है
जिस पर कोई धब्बा नहीं लगना चाहिए,
ज़मीर का क्या!!
वैसे भी ज़मीर या अन्तरात्मा जैसी चीजों को
ज्यादा अहमियत नहीं दी जानी चाहिए
क्योंकि ज़मीर का सामना करना
अपने को न सिर्फ पशोपेश में डालना है
बल्कि मुश्किलों में ही डालना होता है,
वर्ना कितनी हत्याओं, ख़ुदक़ुशियों
और क़त्लेआमों के जवाब हैं?
और किसके पास?
किस-किस फानूस
किस-किस शमा
किस-किस मेहराब की
किस-किस बात के लिए
कितनी बार जबानें काटेंगे
तुम्हारे ये हब्शी और तातारी ग़ुलाम?
यहाँ कौन है
जो गवाही नहीं दे सकता?
क्या यह तुम्हारा किला
या किलों के अँधेरे तहख़ाने
या नंगे जिस्मों से भरे हम्माम—
कौन नहीं गवाही दे सकता है?
इसीलिए मुझे डर है, कि
तुम्हारी अन्तरात्मा
तुम्हारा ज़मीर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं तुम्हारी तख़्तेताऊस वाली शख्सियत को ही
कठघरे में न खड़ा कर दे
और सवाल दर सवाल न दागने लगे, कि,
ऐ सलामती के लिए उठायी जाने वाली तलवार!
दुनिया के मालिक पुकारे जाने वाले
ऐ तख़्तेताऊस!
यह कैसा निज़ाम है
यह कैसी हुकूमत है
जाहोजलाल का यह कैसा मरतबा है
जिसे सल्तनत का हर अदना से अदना आदमी भी
अपने सीने में
कटार की तरह उतारे रहने
और बनाये रखने के लिए
इसलिए मजबूर है
ताकि किलों को
ताज और तख़्त को
इन कारचोबी पोशाकों को
दरबारों और हरमख़ानों को
मय तुम्हारे फौज-फाटे के अपने कंधों पर
न सिर्फ उठाये खड़ा रहे
बल्कि चले
उसी दुलकी चाल में चले
जैसे पालकी के कहार चलते हैं
ताकि तुम्हें तवारीख़ होने का मरतबा मिले
और तख़्तेताऊस होने का रुतबा।

मगर कब तक?
कब तक ये
या ऐसे सारे किले
ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या ऐसे सारे तख़्तेताऊस
ये
या ऐसे सारे निज़ाम
ये
या ऐसी सारी तवारीखें, ताक़ीदें, हुक्म और फ़रमान
ज़ुबानों पर
कन्धों पर
गर्दनों पर
दहशतज़दा दिलों पर ढोने होंगे?
तख़्तेताऊस! बादशाह से वापस आदमी बन सकने के लिए
किसी किले में ऐसी कोई सीढ़ी नहीं होती
जादुई सीढ़ी, कि—
जिसके सहारे नीचे उतरकर
अपने शाही-व्यक्तित्व में छुपी
सत्ता की जड़ाऊ तलवार को निकालकर
इतिहास के दरिया में फेंका जा सके,
और एक इन्सान बनकर
एक मानवीय सुगन्ध वाला गुलाब बनकर
इस धरती पर निर्भय चला जा सके।
अपनी अन्तरात्मा
अपने ज़मीर में ऐसा सवाल उठने पर
क्या जवाब दोगे, कि
मनुष्य
और सत्ता के प्रतीक
इन किलों के बीच के
ये खाई-जल
कब तक ऐसे ही लाल होते रहेंगे?
और क्यों?
कब तक?
हाँ, कब तक?

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास से निरपेक्ष, प्रार्थना के रूबरू
पिछले दिनों नंगे पैरों

कोई खड़ा है वहाँ—
उन सीढ़ियों पर
जहाँ
किले की दीवार,
जो कि तवारीख़ है किले की, को
फोड़कर
चश्मे का पानी बह रहा है।
पैर धोता
कोई खड़ा है वहाँ।

नहीं,
वह सिर्फ खड़ा ही नहीं रहा करता
रोज वह
इसी तरह वज़ू में
हाथ-पैर धोकर
उस मेहराब के खुलेपन में लिखे
आकाश की साक्षी में
दोनों हाथ उठा
प्रार्थना की भाषा में
इबादत की तल्लीनता के साथ
रोज यही कहता है—
तब तक—
हाँ, तब तक
जब तक दीवारें हैं
इबादतें नामुमकिन हैं
प्रार्थनाएँ असम्भव हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घरों, किलों, इमारतों को दीवारों वाला होने दो
मगर दीवारों वाला आदमी तो मत बनाओ।
तौक़ीरें हैं
गुलामी की तौक़ीरें हैं ये—
जिन्हें तुम अपना नाम समझते हो
जिन्हें तुम अपनी पहचान बताते हो,
प्रतीकों की तरह
जिन्हें तुम उठाये-उठाये
देश और काल में
सदियों से चल रहे हो।
थक गये होगे—
जरूर ही थक गये होगे
कुछ देर को ही सही
क्या तुम इन्हें उठाकर
एक तरफ नहीं रख सकते?
इबादत या प्रार्थना के समय भी नहीं?

तरह-तरह की ये दीवारें उठाये-उठाये
तुम ख़ुद एक दीवार बने
भूल गये, कि—
आकाश का खुलापन
हवाओं का ताजापन
जलों का मीठापन
और धूपों का गुलालपन भी कुछ होता है
और जिन्हें उठाना
उठाना नहीं होता
बल्कि प्रार्थना या इबादत करना होता है।
क्यों नहीं तुम
दीवारों का यह
सदियों पहले सिला तंग लिबास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पर से उतार देते?
साँस लेने में भी तो परेशानी होती ही होगी।
तुम नहीं जानते कि
जो भी अपने पर से
ज़ेर देती दीवारें उतार देता है
फ़कीर हो जाता है
बादशाहों का भी बादशाह हो जाता है,
क्योंकि वह
आकाशों का लिबास पहने अवधूत हो जाता है।
और तुम्हारी
ये तमाम तरह की तवारीख़ें, तामीरें, इमारती बुलंदियाँ
आकाश पहने
उस अवधूत के टखनों तक भी नहीं पहुँच पाती हैं
क्योंकि उसके लिए—
हर घर की आग, सिर्फ आग होती है
उसके लिए—
कोई सी भी रौशनी सिर्फ रौशनी होती है
उसके लिए
हर हवा, सिर्फ हवा होती है
और उसके लिए
हर पानी, सिर्फ पानी
इबादत करता, प्रार्थना करता पानी।

इबादतख़ाना है, मन्दिर है—
आग की यह पवित्रता
हवा का यह सुगन्धपन
रौशनी की यह धवलता
और पानी का यह मीठापन आराधनाघर है
जहाँ जूते पहन कर नहीं जाया जाता।
वैसे भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये तरह-तरह के
सदियों पहले पहने जूते
चीनी जूतों की तरह
अब तक तो तंग भी हो गये होंगे
जिनमें तुम्हारे पाँव ही नहीं
व्यक्तित्व भी ऐंठ गये हैं।
अब तुम इबादत
प्रार्थना के रूबरू खड़े हो
उतार दो जूते
लगने दो हवा
और फिर धुले की पैरों की राह
पहुँचने दो भीतर
अपने स्वत्व तक—
हर घर की आग की पवित्रता
हर घर की रौशनी की धवलता
हर घर की हवा की मधुमाधवता
और हर घर के चश्मे के पानी का मीठापन।
व्यक्तित्व में इनका पहुँचना ही
इबादत होगी, प्रार्थना होगी
और
तब कहीं नहीं सुनायी देगी
किलों के भीतर से आती
ताक़ीदें करती आवाजें—
बाअदब, बामुलाहिज़ा होशियार!!
क्योंकि इबादत या प्रार्थना के रूबरू खड़े होने पर
दूसरी कोई आवाज नहीं सुनायी देती—
सिवाय अपने ज़मीर
और अपनी अन्तरात्मा की वाणी के
पवित्र वाणी के
सोऽहं !! केवलोऽहं !!

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई अवधूत है
जो अपनी ही धूनी जगाते हुए गाता है—

''शाह के न राजा के
किसी के नहीं चोबदार
अलख बादशाहत का भेद मत देना
अवधू! भेद मत देना।''

कोई अवधूत है
जो हमें-तुम्हें फूटी पखावज सा
खूँटी पर टाँग
चीमटा बजा-बजा
ठाठें मार
अपनी सधुक्कड़ी में अनासक्त गाता है—

''देश के, न काल के
किसी के नहीं ताबेदार
निर्गुण निरंजन का भेद मत देना
अवधू! भेद मत देना।''

कोई अवधूत है, रमता जोगीड़ा
जो हमें-तुम्हें अपनी चिलम में भर
धुएँ का सुट्टा बना गटक जाता है,
लाल-लाल आँखें लिये
चिकारे के चीखते स्वरों में
आकाशों के गोपुर पर
भरथरी बना
दिशाओं की पींगला जगाता गाता है—
''जागो काल के इस सुन्न महल में सोयी
पींगला! जागो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमता जोगी बहता पानी किसके हुए हैं
जागो, पींगला! जागो—
काल के प्रवाह में
देखो बहे जा रहे हैं—
किले, महल, सिंहासन औ सब अटारियाँ,
मसानों से निकली औ मसानों को जाती
काल-भैरव की इस सवारी का भेद मत देना
अवधू! भेद मत देना।''

कोई अवधूत है
जो अपनी ही धूनी रमाये हुए गाता है—
''भेद मत देना अवधू! भेद मत देना''
गाता है!! गाता है!!

काव्य की, निःशब्द अबाधता के बीच पिछले दिनों नंगे पैरों

पिछले दिनों, नंगे पैरों
चलना जो हुआ
इतिहास पर,
कह लें
जलते तवे पर,
झुलसना ही था
पैरों को,
आकण्ठ दग्ध नहीं हुआ
यही क्या कम था!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले दिनों, नंगे पैरों
किलों, महलों, बारादरियों में चलते हुए भी
दिख जाता रहा बार-बार
आकाश—
या उसका कोई एक टुकड़ा
नीली सुगन्ध देता यहाँ-वहाँ।
छूती रही धूप—
झँझरियों में टूटी-टूटी
या मेहराबें लिखती
दालानों में खिली, बिछी
घेरे रही।
बुर्जियों से झाँकते
मुँह पर ठण्ढे पानी के छींटों सी
या सीढ़ियों पर चढ़ते-उतरते
मोखों से
सतपुड़ी हवाएँ
कपड़े उड़ाती
बनी रहीं पूरे समय साथ-साथ,
लेकिन क्यों?

अब जब मैं
घासों की विस्तीर्णता में
हवाओं के खुलेपन में
भीलनियों सी अल्पवस्त्रा
धूप के सान्निध्य में खड़ा हुआ हूँ
इतिहास—निरपेक्ष—
घास का तिनका मुँह में दबाये
यह जो छोटी-सी चिड़िया
छोटे-छोटे पंखों में उड़ते हुए भी
विलीन होती जा रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती जा रही है
और अब तो हो भी गयी है—
चिड़िया से आकाश।
सामने के फैले, खुले विराट में
दूर, दूर, दूर!!
क्या विलीन होते हुए
चिड़िया का यह आकाश होना ही
कविता है?
कविता—
जो कि मुक्ति है
अपने में,
पर उड़ान है
अपने से बाहर
देश और काल में
दूर, दूर, दूर!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखना एक दिन

[रचनाकाल : १९९०]

- माँ
- देखना, एक दिन
- पुरुषार्थ
- कहाँ हुआ?
- उस दिन
- वही है, वह
- द्वार
- विपर्यय
- विषमता
- चिड़ियाँ
- आत्मसमर्पण
- गन्ध
- प्रश्न
- सम्भ्रम
- सेतुहीनता
- क्यों?
- एक स्थिति
- पूछ देखना
- जन्म
- सम्प्रेषण
- क्या किसी दिन?
- स्त्री
- वैषम्य
- पता नहीं
- कई बार
- विलयन ज्वार
- आना, पर आना
- बाल्कनी
- आज यदि
- स्पर्श-माधुरी
- नदी और भाषा
- समझ
- अपना दर्द
- भीगना धूप का
- उन्मुक्तता
- स्थिति
- विवशता
- अनुनय
- अन्तर
- सम्बन्ध
- ऐसा क्यों?
- आयाम
- परिणति
- माया
- चित्र और उसकी दीवार
- आबार एशो
- सायं प्रतीति
- शाम, एक शब्द-चित्र
- टिटहरी
- वृक्ष और वह
- घर की ओर
- कवच
- घर
- स्मृतिजीव्या
- आमेन
- क्या किसी दिन
- कैसे बता दूँ
- हमारे बीच
- दाता
- वह
- अलगूँजा
- धूप
- व्याकरण
- उत्सव
- मौन
- कौन
- इकतारा
- मुद्रा
- उपस्थिति
- परामर्श
- सुझाव
- संज्ञा से सर्वनाम
- किस-किसको?
- अग्निबीज
- काली कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहन गीता पंडित

तथा

श्री भवानीशंकर पंडित को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ

मैं नहीं जानता
क्योंकि नहीं देखा है कभी—
पर, जो भी
जहाँ भी लीपता होता है
गोबर से घर-आँगन,
जो भी
जहाँ भी प्रतिदिन दुआरे बनाता होता है
आटे-कुंकुम से अल्पना,
जो भी
जहाँ भी लोहे की कड़ाही में छौंकता होता है
मैथी की भाजी,
जो भी
जहाँ भी चिन्ता भरी आँखें लिये निहारता होता है
दूर तक का पथ—
वही,
हाँ, वही है माँ!!

देखना, एक दिन

देखना
एक दिन चुक जाएगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सूर्य भी,
सूख जाएँगे सभी जल
एक दिन,
हवा
चाहे मातरिश्वा हो
नाम को भी नहीं होगी
एक दिन,
नहीं होगी अग्नि कोई
और कैसी ही,
और उस दिन
नहीं होगी मृत्तिका भी।

मगर ऐसा दिन
सामूहिक नहीं है भाई!
सबका है
लेकिन पृथक—
वह एक दिन,
हो रहा है घटित जो
प्रत्येक क्षण
प्रत्येक दिन—
वह एक दिन।

श्रीमती महादेवी वर्मा के निधन पर

पुरुषार्थ

गये होंगे निश्चित ही
ये पाँव
ठाँव-कुठाँव
पर, क्या वह तेरी गली नहीं थी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखे होंगे निश्चित ही
इन आँखों ने
रूप भरे हाट
पर, क्या वह तेरी बाट नहीं थी?

किये होंगे निश्चित ही
इन हाथों ने
भले-बुरे कर्म
पर, क्या वह तेरी प्रेरणा नहीं थी?

यदि ऐसा नहीं था,
सब कुछ मेरा ही था
तो फिर मुझे स्वीकार हैं
ये सब—
क्योंकि मेरे पुरुषार्थ हैं।

कहाँ हुआ?

लिखा तो गया
पर, कहना कहाँ हुआ?

किससे कहते—
तुम यदि होते
राह भले ही तपती होती
पर बातों के द्रुमदल-मृगजल कुछ तो होते
हाँ, नदियाँ थी दिखीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलीं भी
पर, बहना कहाँ हुआ?

किसे दिखाते—
कितने पैबन्दोंवाली थी अपनी कथरी
राग और वैराग्य बीच हम
होते गये विवश भरथरी
उतर गया भूषा सा जीवन
मन से, तन से
चलो बटोही?
इस सराय में रहना कहाँ हुआ?

उस दिन

उस दिन
हाँ, उस दिन—

यदि आँखें
देख रही हों पेड़ या कि आकाश
देखने देना,
यदि अधर
बुदबुदाते हों कोई भी नाम
बोलने देना,
यदि हाथ
उठे हों देने को आशीष
असीसने देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि तत्व
माँगने आये हों निज तत्व
उन्हें ले जाने देना;

उस दिन
हाँ, उस दिन ही सही,
पर जागेगा
अन्तर बिराजा अवधूत वह
जिसे लेना कुछ नहीं है
किसी से भी नहीं—
केवल देना, देना, देना।

वही है, वह

व्यथा में भी
जो गा रहा है
गाने दो उसे,
वही है
वह—
जो सबको ले जाएगा
उस पर्वत की ओर
जिसके शिखर पर
स्वयं को उत्सर्ग कर
केवल वही
सबकी ओर से
देखेगा सूर्य को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखना—
हर व्यथा के लिए
वह लाएगा माँगकर सूर्य से
प्रकाश की अलग-अलग डालियाँ।
और बाँट कर ज्योतियाँ
हो जाएगा
फिर से अनागारिक
नि:शेष।
उसे जाने दो
वही है
वह—
जो व्यथा गाते हुए
सूर्य की ओर बढ़ रहा है।

द्वार

द्वार है
हर दूरी एक द्वार।
यात्राएँ समाहिति के लिए
दूरियों के द्वार।
फिर चाहे वह यात्रा
पंखों की
पैरों की
पालों की
किसी की हो
दूरियों के द्वार पर द्वार खुलते ही जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह खुलना ही
द्वारों का बन्द होना भी है।

विपर्यय

वर्षा में भीग कर
चित्र
बदरंग हो गया
और तुमने
दीवार पर से ही नहीं
मन पर से भी उसे उतार दिया—
यह मैं था।

वर्षा में भीग कर
कविता
कैसी रंगों नहायी फूल हो आयी
और मैंने
उसे वृन्त पर ही नहीं
अपने में भी धार लिया—
यह तुम थीं।

विषमता

तुम्हारे फेरते ही
आँख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबने फेर ली है
आँख—
मेरे इस एकान्त ने भी।

चिड़ियाँ

चिड़ियाँ क्या हैं—

उड़ते हुए शब्द हैं
बोलते हुए पेड़ हैं
आकाश में
उड़ती हुई पंक्तियाँ हैं।

वन की भाषा है—
जो शब्द-शब्द बन
उड़ती है
गाती है।
गाता हुआ वन
चिड़ियाँ है
तो चुपायी चिड़ियाँ ही तो वन है।

आत्मसमर्पण

स्वतः तो फूल को झरना ही था
पर यदि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंप देता अपनी सुगन्ध
किन्हीं अँगुलियों को
तो सब कुछ बीत जाने पर भी
वे अँगुलियाँ
जब भी लिखतीं
लिखतीं फूल ही।

गन्ध

कमरे में गन्ध थी
गुलाब की,
पर फूल ने कहा—
केवल कल तक ही,
आज जो यह गन्ध है
वह मेरी नहीं
उस स्पर्श की
जिसने मेरे फूल को
तुममें गुलाब कह टाँका था।

क्या तुम
उस स्पर्शकर्ता को नहीं जानतीं?

प्रश्न

जब-जब भी बाँधना चाहा
जीवन को भाषा में
(तात्पर्य सत्य को)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हँसा—
तुम मुझे बाँधना चाहते हो
भाषा की मेड़ से,
सकोगे बाँध
बाढ़ को?

अच्छा—
तुम इतना ही बता दो
वह कौन है
(या कौन-कौन हैं)
जिसे तुम बारम्बार
अपनी कविताओं में सम्बोधित करते हो,
क्या है उस सर्वनाम ''तुम'' की वास्तविक संज्ञा?
नहीं बता सकते न?
और चले हो
जीवन को भाषा में बाँधने
क्या नहीं है यह प्रवंचना?
स्वत्व पर से कवच-कुण्डल
चीर कर उतारने जैसा है
भाषा में जीवन को बाँधना—
(तात्पर्य सत्य को)।

बन सकते हो
ऐसे निर्भय या निर्विकार?

सम्भ्रम

उस दिन
चन्द्रोदय की साक्षी में

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ती जंगली हवाओं के बीच
हमारी गुँथी अँगुलियों में
कैसे एक राग-फूल ने जन्म लिया था।
देवताओं ने तो नहीं
पर आकाश
जरूर कुछ-कुछ पुष्प वर्षा करता लग रहा था।

पर
आज तुम
अपने थरथराते व्यक्तित्व से उपस्थित
ऐसी लग रही थीं
जैसे तुमने
अपनी अँगुलियों पर से ही नहीं
उस राग-स्पर्श को पोंछ डाला है
बल्कि वे सुगन्धित अँगुलियाँ ही
अपने स्वत्व पर से उतार दी हैं
और ऋतु-स्नान किये
नयी अँगुलियाँ धारे
सम्भ्रम में आधे खुले द्वार में
लिखी हुई खड़ी हो, जैसे
कोई अपरिचिता।

सेतुहीनता

शायद सब नदियों पर
सम्भव नहीं होते
सेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये जाने पर भी,
यदि होते
तो क्या हम-तुम ऐसे होते—
इस पार
उस पार?

क्यों?

दिन
कुछ खुल सा आया था उस दिन,
पर तुमने
आज गिरा ली उस पर चिलमन

एक स्थिति

शायद दूसरा कोई शब्द नहीं हो सकता
यह कहने के सिवाय, कि
कितना रोमांचक लगता है
बल्कि, सर्वथा अभूतपूर्व—

जब अनायास
रात के सुनसान में
जंगल के बीच
आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस किसी कारण से भी हों
और क्षितिज में
श्रावणी बादलों के पीछे
आरम्भिक पंक्ति सा
चन्द्रोदय
लिखा जा रहा लगता हो
और आपके तथा आकाश के बीच के
अकल्पनीय विराट खालीपन में
कहीं किसी व्यक्ति
छत या वृक्ष जैसी
किसी की कोई बाधा न हो
तो आकाश कैसा बड़ा सा लगता है
जैसे आकाश ही आकाश है।
और उसमें
ग्रामीण खुले स्वभाव वाली
भीगी श्रावणी बनी
जंगली हवा
आपके कपड़ों के साथ-साथ
आपके व्यक्तित्व से भी शैतानी कर रही हो,
तो उसे पकड़ने के लिए उठे
आपके हाथ
जब पास में खड़े व्यक्ति की उड़ती
नारी-भूषा
और ठंडी हवा में सियराती देह का
अनायास स्पर्श कर उठें,
और आपका वह चौंकना
हठात एक वाक्य बन ओठों पर आ जाए, कि
''यू फेसनेट मी''—
तो, पूरी पंक्ति में लिखा जा चुका
वह चन्द्रोदय
और सम्पूर्ण आकाश
वाक्य सुनते ठिठके नारी-नेत्र बन जाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ऐसे
जैसे कह रहे हों—
इस वाक्य की कब से प्रतीक्षा थी।

पूछ देखना

दिया प्रकम्पित हाथ
मुझे
पर कहा कुछ नहीं,
केवल पलकें मूँद
उतरती चली गयी थीं
तुम
अपने में—
या मुझमें?
एकान्त मिले
तो पूछ देखना
हाथ स्वयं ही कह देगा
किसमें उतरी थीं
उस दिन, उस जंगल में।

जन्म

घाटियों की जंघाएँ चीर
पर्वत प्रस्त्रवित करवा रहे हैं
पार्वती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रेषण

टेबल के ऊपर
मैं काँटे से
लकीरें खींचते हुए बोलता रहा
जबकि तुम
टेबल के नीचे पैरों से
सुनती भी रहीं
और बोलती भी।

●

क्या किसी दिन?

दिखना, होना नहीं होता
क्योंकि दिखना तो
कहीं भी हो सकता है
होता भी है,
पर होने को तो यहाँ ही होना होगा न?

प्राय: तो दिखती हो
पर क्या किसी दिन.....

●

स्त्री

स्त्री
अपने एकान्त में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री होती है
बाकी समय
वह केवल सम्बन्ध होती है।

वैषम्य

तुम वहाँ
परिवार—
कहने को,
मैं
अकेला यहाँ—
सहने को।

पता नहीं

पावस सन्ध्या
देखी हमने साथ-साथ
औ' देखा हमने
काले मेघ भरा आकाश
जितना सम्भव था खिड़की से।
पर मेघों में
अभी शेष था
जाता सन्ध्यालोक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीगे पंखों वाली चिड़ियों सी
वह हवा पनीली
भिगो रही थी तुम्हें
मुझे भी।

मन तो हुआ
समेट लूँ भुज में
औ' इस पावस-सन्ध्या को
पावस-ऋतु कर लूँ,
पता नहीं
करता
तो तुम क्या करतीं, कहतीं।
फिर भी पावस-ऋतु सी
वह सन्ध्या
है टँकी हुई मुझमें
अशेष—
क्या तुममें भी?

कई बार

टेबिल पर फैली
सवेरे की इस धूप में
कितना अकेला है
पीछे छूट गया
साक्ष्य देता
चाय का यह खाली कप, कि
वह अतिथि सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी खिड़की को फ्रेम बना
रेम्ब्रां के एक चित्र सी बैठी थी।
पत्तियों जैसे ओठों पर
चाय की
पतली, पारदर्शी
छोटी-छोटी भाप
उस मुख पर
कोमल सी उड़ती रही थी।

कई बार
व्यक्ति से अधिक तो
वस्तुएँ और क्षण
अधिक सौभाग्यशाली होते हैं।

विलयन ज्वार

तुमने
देखा तो होगा
कई बार चाँद—
देवदार की फुनगियों के ऊपर
या अपनी छत से ही,
पर कभी चाँद देखते हुए
अपनी अँगुलियों के माध्यम से
किन्हीं अन्य अँगुलियों में होने का सुख जाना है?
अपनी देह की नदी को
किसी पुरुष के सागर में विलीन करना जाना है?
पूर्णिमा बन
किसी सागर में ज्वार लाना जाना है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना, पर आना

जैसे कल आयी थीं
अनायास,
क्या ऐसा कल
रोज-रोज नहीं सम्भव है?
चलो, न सही रोज-रोज
तो कभी-कभी ही सही
पर ऐसा कल हो।

हर आज और परसों के बीच
हुआ करता है
कल—
ओ आगामी कल!
उस बीते कल जैसे ही तुम आना,
पर आना।

बाल्कनी

चाहता तो हूँ
वहाँ उस बाल्कनी में दिखे
वह
बनकर अकेला फूल
सद्यःस्नात!
पर प्रायः खड़ा दिखता है
बाल्कनी के पार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधूरा आकाश,
रेलिंगों पर झुका
कुहनी टिकाये
एक खालीपन।

आज यदि

आज यदि हुआ होता
द्रौपदी का चीर हरण
तो
न तो दुर्योधन को ही निराशा होती
और न ही
दुःशासन की बाँहें थकतीं।
स्वयं द्रौपदी ही कहती—
अपनी पार्टी और नेता के लिए
चीर-हरण क्या
शील-हरण भी स्वीकार है।

निश्चित ही
तब महाभारत न हुआ होता
और कितने पहले लोकतंत्र भी स्थापित हो गया होता।

स्पर्श-माधुरी

हवा ने
चोरी से छुआ तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्तों पर बैठी
सुकंठी धूप को था,
पर वृक्ष ने देख लिया
और पूरा वन खिलखिला उठा,
लेकिन क्यों?

नदी और भाषा

वैसे तो
नदी है ही—
जंगलों में, पठारों में
मैदान की विस्तीर्णता में
बहते हुए।

नदी वह—
मुझमें भी है
बहते हुए भी
पर
नदी नहीं,
बनकर नदी की भाषा।

मेरी नदी का भाषा होना
मैदानों में बहती नदी
जैसा ही जरूरी है—
क्योंकि जंगलों को, पठारों को
मैदान की विस्तीर्णता को बताती है, कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जो
रूप-रस-गन्ध देता
तुममें प्रवाह है
नदी है वह।
इसलिए
नदी को भी चाहिए होती है
एक भाषा—
नदी जैसी ही प्रवाहिता।

समझ

अपनी-अपनी समझ है—
भीगी घासों पर
धूप के पापड़ ही
वर्षा ने
सूखने के लिए फैला दिये।

अपना दर्द

क्या तुम जानती हो
दर्द मेरा
ओ हवा!
यदि कहूँ भी तो
समझ पाओगी
शाश्वत खड़े रहने का दर्द?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर—
क्या तुम भी जानते हो
दर्द मेरा
पेड़!
यदि कहूँ भी तो
समझ पाओगे
दिग्-दिगन्त भटकने का दर्द?

सबको
अपना दर्द ही दर्द लगता है।

भीगना धूप का

मैदान में
भीगी घास,
घास पर
फैली धूप।
सूख रहीं
घासें
पर धूप जो
भीगी पड़ रही—
वो?

उन्मुक्तता

बाँध लिया होता
भुज-बन्धन में यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो निश्चित ही
मैं उन्मुक्त हो गया होता,
पर सौंप मुझे
आकाश मुक्तता
दे दी कैसी कारा—
हारा, हारा, हारा।

स्थिति

वहाँ तुम सो रही होगी
निश्चिन्त
मेरी नींद,
यहाँ मैं जागता
अपलक
तुम्हारा जागरण।

विवशता

आँखें आ रही हैं
इधर
बाँहें जा रही हैं
उधर
(बल्कि जाना चाहती हैं)
पर मजबूरियाँ
ये दूरियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुनय

मैं
तुम्हारी आँख बन
भर आँख
तुमको चाहता हूँ
देखना।
कर न देना
तुम कहीं, ना
देखना।

•

अन्तर

तुम्हारी चिरौरियाँ करते हुए
वे तो
वहाँ पहुँचे,
मगर तुम—
उनके सामने रिरियाते हुए
क्या कहीं पहुँचे?

•

सम्बन्ध

वे जितना-जितना
उड़ते जाते हैं
उतना-उतना
देश
रसातल जाता है।

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा क्यों?

खुली आँखों
तुम
बन्द आँखों
देह।
चाहिए तो था—
खुली आँखों
देह
बन्द आँखों
तुम।

आयाम

पहाड़ी नदी जैसी
जो अकेली
जा रही है
चीड़-वन के बीच
जाने दो उसे,
उसकी यह असम्पृक्तता ही
इस दृश्य के एकान्त को
आयाम देती है।

परिणति

गंगा की विस्तीर्णता में
जाता हुआ

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँटों का काफिला
आखिरकार
चींटियों की रेखा बन
डूब रहा।

माया

खुली आँखों
देख पाता हूँ
तुम्हें औ
परिधान भी,
पर मूँदते ही आँख
न जाने परिधान क्या हो जाते?

चित्र और उसकी दीवार

शाल वनों से होकर
जाने को वह चली गयी
पर कितना-कुछ है
छोड़ गयी
मुझमें अपने को।

मुकुर नहाते
सम्भव है
श्यामा अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोज रही हो वहाँ—
जलों पर रख उरोज का भार
बाँह से वृत्त बनाते।

लौटाना चाहूँ भी
यह
नारी सुगन्धवाला उसको उसकापन
पर लौटाऊँ कहाँ?
नाम-गाम
कुछ पता-ठिकाना हो
तब तो लौटाऊँ

चलो
वह वहाँ अपने बिना रहेगी
रह ही लेगी,
यों भी अनाम बन रहना ही था
उसे,
भला तब
यहाँ-वहाँ में क्या अन्तर है?
मुकुर नहाती
मुकुर देखती
श्याम कदम्बी रूपश्री का चित्र वहाँ है
और प्रतीक्षा करती
यह दीवार यहाँ है।

●

आबार एशो

गर्मियाँ तो नहीं—
पर हाँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हुए आमों की सुगन्धें
और इन सुगन्धों का
अपने साथ
कोयल के स्वरों का भी ले जाना
दर्द देता है।
दर्द ही क्यों—
बल्कि एक खालीपन
मुझे भी
आम्रवन को भी।
विश्वास करो आगामी वत्सर
प्रतीक्षा करता
यह आम्रवन तो मिलेगा ही
सम्भव है, मैं भी होऊँ ही।

क्या हमारी यह रिक्तता
भाषा नहीं है?
जाते आमों की सुगन्धों से
विदा होते
कोयल के इन स्वरों से
निवेदन नहीं है
आम्रवन में
या मुझमें—
कि, भले ही
तपती गर्मियाँ चलकर ही आना
पर आना
ओ कोयल की पुकार!
अपने पर आमों की सुगन्धें खोंसे आना
पर आना
आना, आना!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायं प्रतीति

किसी दिन भी तो ऐसा नहीं होता
हाँ, किसी दिन भी तो—
जब सन्ध्याकाश में
न लिखे गये हों
तोते
या कि कोई से भी
पाखियों के दल के दल,
पर क्यों?
आकाश में
यहाँ-वहाँ
ऐसी उड़ती पंक्तियाँ
होना क्यों जरूरी है?
यह कोई ग्रन्थ-लेखन तो नहीं है,
सायं-प्रतीति है,
इसे सम्पन्न होने दो
बिना लेखन के।
यदि किसी दिन
ये पंक्तियाँ न हों
तो क्या
शाम ही नहीं होगी
उस दिन?

शाम, एक शब्द-चित्र

बड़े पाखियों से लेकर
छोटी गौरैयाएँ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोंचों में थामे
बिछाती आ रही हैं
शाम, आकाश में।
हर पक्षी दल
अपने पेड़ों के आते ही
थमा देता है
आगे जाने वाले पाखियों को
शाम की यह जाजम
और स्वयं
अपने पेड़ों पर उतर
कैसा शोर करते
अपने बच्चों को
पेड़ों को सुनाने लगते हैं—
यह जाजम-पुराण।

और इस तरह
पूरे आकाश में
शाम की नीली जाजम बिछाते हुए
सूरज को ही सब कहते होते हैं—
''पीछे हटो'', ''पीछे हटो''—
आखिर पश्चिम से ज्यादा
कोई कहाँ
और कितना पीछे हट ही सकता है,
क्या गिर पड़े?
मगर पाखियों को इससे क्या
उन्हें तो बस
आकाश में यहाँ से वहाँ तक
नीली जाजम बिछा
लौट जाना है
अपने-अपने बसेरों को—
इसलिए जल्दी पीछे हटो, पीछे हटो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हटते-हटते सूरज
आखिरकार अस्ताचल से नीचे गिर ही पड़ता है।
इससे क्या
जाजम तो पूरी बिछ गयी न?
लो,
जाजम के बिछते ही
कूद-फाँद करने के लिए
बच्चों जैसे आने लगे हैं
तारे—
भला कोई जाजम क्या बिछाये!
होगा, हमें क्या
हमारा काम था बिछाना
अब यह आकाश जाने
और इसकी यह जाजम,
हमें क्या!!

टिटहरी

टिटहरी को कुछ ज्यादा ही शिकायत है
इन मैदानों से
वृक्षों से
सूखे तालों के किनारे
उदास बैठे बगुलों से
या चरागाहों में चरती इन बकरियों से,
कोई शिकायत है
लेकिन क्या?
यह तो मैं ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद ये सब भी नहीं जानते
जिनके बीच
कभी बैठे
कभी उड़ते हुए
लिखती ही रहती है
काँच की लकीर सा
झींखते हुए सा अपना चीखना
या फिर किसी को पुकारते हुए सा
पुकारना, पुकारना।

सुबह होते ही शुरू हो जाती है टिटहरी—
बेचारी सुबह की धूप
अभी आयी-आयी ही होती है
पेड़ों पर
मैदानों पर
और टिटहरी का चीखना सुन
कान पक जाते हैं उसके।
तपती दोपहरियों की लू भी घबराती है,
पर मैं क्या करूँ?
सुबह की धूप सा बीत नहीं सकता
या अपने पर से तपती दोपहरियाँ उतार
सुखद शामें भी तो नहीं हो सकता,
आधी रातों के सन्नाटों में
अँधेरों में,
आकाश के कपाटों पर सिर धुनते
इस टिटहरी के चीखने का
मैं क्या करूँ?
मैं क्या करूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष और वह

वृक्ष कुछ ज्यादा ही सघन था
ऊँचा भी
इसलिए आमों को टोहने के लिए
कुछ ज्यादा ही देखना-बूझना पड़ा
इधर से भी
उधर से भी।
हाथों से संभव नहीं था
कुछ ज्यादा ही ऊँचे लटके थे
वे पत्तों की आड़ में !
ढेलों पर उतर आना ही था
सो उतरा—
पर पत्ते थे
वह भी हवा में झूमझूम पड़ते
बचाते रहे कैसे साफ
पास से सनसनाते गुजरते ढेले।
पसीने-पसीने वह
हारकर तब अपनी आँखें भी
उन्हीं आमों में टाँग
लौटा।
जहाँ पहले आमों ने डरते हुए उसे आते देखा था
अब आम और उसकी आँखें
हवा और धूप में अपने को लिखते,
खिलखिलाते
कैसे देख रहे थे
उसका पराजित लौटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर की ओर

वह—
जिसकी पीठ हमारी ओर है
अपने घर की ओर मुँह किये जा रहा है
जाने दो उसे
अपने घर।

हमारी ओर उसकी पीठ—
ठीक ही तो है
मुँह यदि होता
तो भी, हमारे लिए वह
सिवाय एक अनाम व्यक्ति के
और हो ही क्या सकता था?
पर अपने घर-परिवार के लिए तो
वह केवल मुँह नहीं
एक सम्भावनाओं वाली
ऐसी संज्ञा
जिसके साथ सम्बन्धों का इतिहास होगा
और होगी प्रतीक्षा करती
राग की
एक सम्पूर्ण भागवत-कथा

तभी तो
वह—
हाथ में तैल की शीशी,
कन्धे की चादर में
बच्चों के लिए चुरमुरा
गुड़ या मिठाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या अपनी मुनिया के लिए होगा
कोई खिलौना
और निश्चित ही होगी
बच्चों की माँ के लिए भी...
[जाने दो
उसकी इस व्यक्तिगत गोपनीयता की गाँठ
हमें नहीं खोलनी चाहिए।]
वह जिस उत्सुकता और तेजी से
चल रहा है
तुम्हें नहीं लगता कि
एक दिन में
वह पूरी पृथ्वी नाप सकता है
सूर्य की तरह?
बशर्ते उस सिरे पर
सूर्य की ही तरह
उसका भी घर हो
बच्चे हों और....

इसलिए घर जाते व्यक्ति में
और सूर्य में
काफी-कुछ समानता है।
पुकारो नहीं—
उसे जाने दो
हमारी ओर पीठ होगी
तभी न घर की ओर उसका मुँह होगा!
सूर्य को पुकारा नहीं जाता
उसे जाने दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवच

मैं जानता हूँ तुम्हारा यह डर
जो कि स्वाभाविक ही है, कि
अगर तुम घर के बाहर पैर निकालोगे
तो कहीं वैराट्य का सामना न हो जाए,
तुम्हें भी कहीं
नदी की भाँति
निर्जन कान्तारों में चलना न पड़ जाए,
या तुम्हें कहीं
क्षितिज पर खड़ा करके
कन्धों पर
एटलस की भाँति आकाश न रख दिया जाए।

ऐसी अनन्त सम्भावनाएँ हो सकती हैं
इसलिए मैं समझता हूँ
तुम्हारा यह डर, कि
निरापद नहीं है
घर से बाहर पैर निकालना
क्योंकि व्यक्ति का
इस प्रकार विराट हो जाना
किसको प्रिय लग सकता है?
नदी की भाँति
जंगलों में अनाम भटकना
या आकाश उठाये एटलस बन जाना—
ये दुर्घटनाएँ तो हो सकती हैं
पर वैराट्य कैसे?
निश्चित ही अन्तर तो है ही—
निरे आकाश को देखने
और बन्द खिड़की से सुरक्षित होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश को देखने में।
व्यक्ति—
चिनार या पर्वत तो नहीं
जो भीगते हुए
या तपते हुए
आकाश उठाये खड़ा रहे।
नदी होने से अधिक मार्मिक तो
उसका वह चित्र होगा
जो कमरे में टँगा होगा।
मौसम—
केवल फूल ही तो नहीं होता,
वह माथे पर का पसीना भी होता है
और प्रायः फेफड़ों में भी जकड़ उठता है।

इसलिए
व्यक्ति और वैराट्य के बीच
कितनी जरूरी होती है
एक खिड़की—
क्योंकि वह सुरक्षा कवच है।

घर

घर तो ठीक है—
पर घर, आखिर क्या है?

इतने बड़े आकाश
ढेर से प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रसन्न हवाओं की
उन्मुक्त विपुलता को—
दीवारों से घेर कर
एक छोटा सा आकाश
कमरों में टुकड़े-टुकड़े प्रकाश
और खिड़कियों से आती हवा बना लेना—
शायद
इसे ही तुम घर कहना चाहते हो न?
ठीक है—
पर इसमें रहता कौन है?
तुम?
तुम इस घर में रहते हो?
लेकिन कब?

वर्षों से—
सुबह से लेकर देर रात तक
रोज ही तो
शहर के बदहवासपन में
उड़े चेहरे में मैंने तुम्हें देखा है।
और घर पर भी
तुम क्या सचमुच ही होते हो?
अपनी देह को सोफे पर निढाल डाल
अपने अन्दर के मायालोक में भटकना
क्या घर में रहना है?

तब फिर यह किसके लिए है?
हाँ, यह घर किसके लिए है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृतिजीव्या

चाहो तो कह सकते हो
जल को
कृतघ्न
या और कुछ भी
क्योंकि वह कितने ही
कैसे ही
अन्तरंग सान्निध्य तक को
एक क्षण के लिए भी
स्मृति बनाकर
अपने में नहीं रख सकता।
भले ही प्रतिबिम्ब के समय
वह कितना ही कोमल
या आत्मीय हो
पर उसकी वह माधवता भी
अविश्वसनीयता ही है।

पर शिला को तुम
जो भी कहो,
जैसी भी हो वह
आदिम
या कि कुरूप,
पर वह सान्निध्य को
वक्ष पर शैलचित्र बना
केवल धारती ही नहीं है
वहन तक करती है।
न हो वह
जल की भाँति पारदर्शी सुषमित
माटी सनी अनगढ़ हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गड़ी हो
धरती के अन्तर में
कितने ही गहरे—
पर, शताब्दियों बाद भी
अनावृत्त होते ही
वह अपने उसी श्यामापन में
स्मृतियों के गुदने जैसे
शैलचित्रों के साथ
स्मृतिजीव्या ही मिलेगी।

आमेन

वह जो बिना पलक झपकाये
सूर्य से आँखें मिलाये हुए है
वही है
वह—
जिसने गुजरे जमानों में
हाथ की छड़ी उठा
सागर से रास्ता माँगा था,
और तब भी
लोगों ने आश्चर्य से देखा था, कि
सागर
एक कपड़े की तरह
बीच से चिर उठा था,
और रास्ता देते हुए
सारा पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो दीवारों में बँट गया था।
आमेन!!

देखना आज
बल्कि अभी
वह अंजीर के पेड़ की तरह खड़ा होगा
चोगा सम्हालते हुए
और अपनी तर्जनी से
उदय और अस्ताचल की दिशाओं के बीच
एक रेखा जैसी खींचकर
रोक देगा सारे प्रकाशों को।
लोग अभी यह भी देखेंगे, कि
वह अपने चोगे से
आकाश को पोंछ कर उजलाएगा
और बटखरों की तरह
प्रकाशों को पोंछ-पोंछ कर
सूर्य को लौटा देगा
ताकि सूर्य, सूर्य लगे
आमेन!!

आज भी वह
भीड़ को भेड़ों के झुण्ड की तरह
पहाड़ के पदतल पर ही रोक
अकेले ही
गीत गाते हुए पहाड़ चढ़ेगा
और पुरोहितों की तरह
बलि-पशुओं के पवित्र खून को छिड़कने की भाँति
वह अपनी अँगुलियाँ झटकारेगा
ताकि आकाश पवित्र हो जाए
और तब—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने दोनों हाथ
इस तरह फैलाएगा
गोया वे हाथ न होकर
उड़ने के लिए आमादा
बलिष्ठ डैने हों,
और तब हमेशा की तरह
एक आवाज सुनायी देगी—
ओ तू!
यह वही है
वह सेतु
जिससे होकर गुजरे जमानों में
आसमानी नियामतें
धरती पर उपस्थित हुई थीं
यह वही है
वह सेतु।
आमेन!!

और लोग भी
हमेशा की तरह ताज्जुब में
और कह ही क्या सकेंगे
सिवाय ''आमेन'' के?

क्या किसी दिन

एक दीवार है
हमारे और तुम्हारे बीच
शीशे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हमें व्यक्ति से प्रतिदृश्य बनाती है।
इस शीशई तिलिस्म में
हम एक-दूसरे को दिखते जरूर हैं
पर विवश।
वैसे दिखना भी—
शीशे के आरपार जाना जरूर है,
मगर दृश्य का
व्यक्ति का नहीं।
और संलाप—
चिड़ियों की तरह
इस शीशे की दीवार पर चोंचे मार
हर बार घायल हो जाता है,
वह नहीं जानता कि
दिखना, मार्ग नहीं होता।

पर क्या किसी दिन
किसी अनपेक्षित भूकम्प में
यह तिलिस्मी अभेद्यता ध्वस्त नहीं होगी?
क्या किसी दिन
फिर उसी असीम
उन्मुक्त आकाश के नीचे
हंस-मिथुन से नहीं खड़े होंगे?
जहाँ तुम्हारा स्पर्श
तुम्हारे नेत्रों में बजते पीलू राग का स्पर्श लगेगा?
और हम अपने
केवल अपने आकाश की यात्रा पर होंगे?
क्या किसी दिन नहीं?
क्या किसी दिन भी नहीं?

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे बता दूँ

यह मैं
तुम्हें कैसे बताऊँ कि वह क्या है
मुझमें?
यदि कहूँ—
वह दुर्निवार सागरी विवशता है
जो कहने के बिन्दु पर
फन सी समग्र
फिर भी अपने अनकहेपन में
केवल घोष बन बिखर जाती है।
यह कैसी वर्चस्विता है
प्रतीतिहीन लौट जाने की?
भाषा का यह अनकहापन वहन करना
केवल लौटना नहीं—
टूटना है, टूटना है
टूटते चले जाना है सागर-स्वत्व का।

यह मैं
तुम्हें कैसे बता दूँ कि वह क्या है
मुझमें?
यदि कहूँ—
वह अनिर्वचनीय पर्वत होने की विवशता है
जो कहने के शिखर पर
धुरी सी समग्र
फिर भी अपनी अद्वितीयता में
केवल मौन हो जड़ा जाती है।
यह कैसी तपस्विता है
निपट नितान्त हो खड़े होने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ स्वयं भाषा बन
अपना अनकहापन वहन करना
केवल होना नहीं
होते हुए टूटना है, टूटना है
टूटते चले जाना है पर्वत-स्वत्व का।

हमारे बीच

अन्तर तो रहेगा ही
हमारे बीच—

क्योंकि, जहाँ तुम खड़े हो
वह मुहाना है
नदी का,
और जहाँ मैं हूँ
नदी का उत्स है
वह।

तुम तक पहुँचने तक
वह समाप्त ही नहीं कर चुकी है
अपनी सारी यात्रा,
बल्कि सम्भावनाएँ भी।
वस्तुतः सौंप देने के बिन्दु पर
सागर की विपुलता के सामने
वह केवल थरथराता
विवश

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रवाह भर है
शेष।
किन्तु जहाँ मै हूँ—
एक सम्पूर्ण नदी
अपनी अकलंकता में
निरन्तर जन्म ले रही होती है।
एक प्रदीर्घ यात्रा की सम्भावना में
द्रोणियों की अतलता में भी
कूद जाने को आकुल
प्रसन्न प्रपात है,
तभी तो
पर्वत की देवदारुओं वाली भव्यता भी
इस हठी
कृतकर्मा को रोक पाने में
असमर्थ।

वही अन्तर रहेगा हमारे बीच—
जो आरम्भ और समाप्ति के
विपरीत छोरों पर खड़े होकर
किसी सर्जना को
जन्मते
और पर्यवसित होते देखने में होता है,
इसलिए अन्तर तो रहेगा ही
हमारे बीच

दाता

प्रार्थना है नदी का एकान्त—
नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र निजता
या कि कोई आत्मरति
यह नदी की प्रार्थना।
पर्वत और सागर बीच की
उसकी यात्रा
क्या विस्तृति नहीं है
स्वत्व की?
या कि, चलना वन-पथों पर
जलों को लेकर
प्रार्थना करता एकान्त लिखना नहीं है?

प्रार्थना है नदी का एकान्त—
जो उसे
पर्वत से बनाता है नदी
और देता है
एक पवित्रता
(अश्रु विगलित नहीं)
बल्कि, देता है
एक संकल्प—
सर्वथा उत्सर्गता का।
तभी तो
नदी देती है,
दे पाती है सहजता से
जलों को अपने,
जिन्हें वह
करती तो है बूँद-बूँद अर्जित
पर देते समय
कैसी समग्र
कितनी विपुला है।
देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म है नदी का
फिर चाहे
वे तपते मैदान हों
या कि हो लील जाने वाली
सागर की खारी विशालता।

नदी तो
देकर ही पूर्ण होती है
क्योंकि वह दाता है।

वह

मैंने उससे
अपने व्यक्तित्व पर से
संख्या और भय पोंछ डालने के लिए कहा
ताकि वह व्यक्ति और निर्भय बन सके।

उसके ऐसा करते ही
अभी मैं उससे बैठने का आग्रह करना ही चाहता था, कि
वह प्रत्यंचतवत् तना
और लौट जाने को उद्यत दिखा
जैसे आधे आकाश से लौटकर
पुनः प्रत्यूष से यात्रा आरम्भ करने को उद्यत्
सूर्य-संकल्प हो।

मैं आश्वस्त था
अब वह पुनः भीड़ में संख्या बन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलीन नहीं होगा
क्योंकि वह निर्भय हो चुका था।
अब वह कैसे ही अन्धकार के विरुद्ध
खड़ी हो सकने वाली
तेजस्विता था।

अलगूँजा

यह जो वन में
दबी-दबी सी घास-गन्ध है
भीगी युवा-देह की कैसी काम-गन्ध है—
वर्षा की।

ये जो वन में
खिले पड़ रहे घास-फूल हैं
भैरोगढ़ छापे वाले मालव-दुकूल हैं—
वर्षा के।

यह जो वन में
लहरें लेता ग्रास-दृश्य है
जल मत हो, पर सागर के जैसा अवश्य है—
वर्षा का।

तब वन क्या है?
नदियों में बजता पन्ने का अलगूँजा—
वर्षा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूप

क्या तुम
धूप को उसी तरह सहज
नहीं ले सकते
जिस तरह
पेड़, धूप को लेते हैं, कि
धूप है—
हुआ करे
पेड़ भी तो हैं;
रहे वह
पर, धूप बन कर ही।
पर तुम्हारे लिए तो
वह—
धूप से ज्यादा
एक कविता है
इसलिए एक सिरदर्द है।
तब भला
तुम्हारा यह सिरदर्द
तुम नहीं भोगोगे
तो क्या
पेड़?

व्याकरण

यदि तुम
पेड़ को पेड़ नहीं भी कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो भी—
न तो वह पहाड़ ही हो जाता
और न ही
छाया देने के अपने धर्म से च्युत होता।
वस्तुतः तुम्हारी
इस नाम-आग्रही भाषा से भी बड़ी है
सृष्टि की वह भाषा
जो व्याकरण है,
और जो
सारी चीजों को उन्हें उनका धर्म देता है
नाम नहीं;
जबकि तुम्हारी भाषा
उन्हें नाम देती है
धर्म नहीं।

उत्सव

तुमने
वृक्ष में लिखे तो नेत्र ही थे
पर फूल खिलेः
हाँ,
वृक्ष ने भी तुम्हें सौंपे तो फूल ही थे
पर नेत्र बने।
वन में
यह कैसा नेत्रोत्सव है
जिसकी तुम सुगन्ध हो।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौन

वैसे रखा रहने दो
हमारे बीच
यह मौन—
न हो भाषा, फूल तो है।
यही क्या कम है
एक सुगन्ध
भाषा बनी
हममें मौन है।

कौन

दरवाजा खड़का
पूछा—
—कौन?
दरवाजा पुनः खड़का—
—मैं
और कौन?

देखा—
भीतर आने को आतुर
हवा थी
और कौन?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकतारा

स्वर मेरा
पर राग तुम्हारा,
कविता मेरी
पर भाव तुम्हारा,
इसी तरह
हम साथ रहेंगे
क्योंकि रहे हैं—
हाथ तुम्हारे में इकतारा।

मुद्रा

ऐसा ठस्का
सबके बस का
नहीं, कि जिसमें
कमर और कूल्हे झटका लें
जैसे पाँवों में काँटा हो कसका।
गो, यह ठीक नहीं
पर किसी-किसी को लग जाता है
सिर्फ देह बन जाने की
इस मुद्रा का चस्का

वैसे, यह केवल कविता है
आप न समझें इसको कोई मस्का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थिति

अभी जब तुम यहाँ आयीं
लगा—
अपरिचय के कपाटों को खोल,
अपने बैंगनी फूलों के साथ
उपस्थित है
कचनार कोई।

फूल खिलते हुए
जैसे वृक्ष बोलता है
तुमने अपना तापस परिचय दिया
लगा, स्तबक है,
हमें देखती हुई
एक सुगन्ध बनी रही
जब तक तुम रहीं।
आकुलता—
बार-बार सिर ढँकते
हाथ सी
अपने को अनुपस्थित करने की चेष्टा में
मौन रही।

हर आना
अपने में लिये होता ही है
लौट जाना।
तुम्हारे लौट जाने के बाद
लगा—
पता नहीं
सुगन्ध देते व्यक्तित्व को
वनस्पतिशास्त्र ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस वृक्ष या वनस्पति की संज्ञा दी है
विशेषकर तब
जब वह
तापस भूमि पर खड़ा
अनासक्त सुगन्ध देता
रागमय वृक्ष हो।

परामर्श

पुष्प-भाषा नैनों में,
पर आ रही सुगन्ध
इन चीनांशुक ओट किये सैनों में,
हरसिंगार मत गूँथो
इन पतले ओठों के
गिरे-गिरे बैनों में।

सुझाव

वह सीखचों में स्वतंत्र है
और तुम खुले में कैद।
तुम उसे कैद
और खुद को स्वतंत्र देखना चाहते रहे हो न?
तो क्यों नहीं
उसे सीखचों के बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुले में कैद हो जाने देते
और तुम सीखचों में स्वतंत्र?

(नेल्सन मंडेला के प्रति)

संज्ञा से सर्वनाम

अच्छा हुआ मंडेला!
जो तुमने भीख लेने से इंकार कर दिया—
जन्म-दिन पर मात्र छह घण्टों के लिए
पत्नी और परिवार से मुलाकात।

यदि तुम स्वीकार लेते, तो
इतिहास का सारा प्रयोजन ही झुठला जाता
और तुम व्यक्ति बन जाते,
और कैसा ही व्यक्ति
कभी न कभी टूट ही जाता है
जबकि इतिहास
अप्रतिहत, अपराजेय होता है।

माना कि
प्रत्येक के जीवन में
एक प्रिया
एक परिवार होता है।
प्रत्येक आँख
अपने को प्रतिआँख में पढ़ना चाहती है,
प्रत्येक बाँह
अपने को प्रतिबाँह में गुँथा देखना चाहती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक अधर
अपने को प्रतिअधर पर समर्पित देखना चाहते हैं,
ऐसी सारी प्यास
ललक
निश्चित ही सहज
नैसर्गिक और मानवीय होती है।
यह सब तुम्हारे लिए भी
श्रीमती मंडेला के लिए भी
सहज, नैसर्गिक और मानवीय है
पर मंडेला!
इतिहास जब
अपनी अभिव्यक्ति के लिए
किसी व्यक्ति को चुनता है
तो वह सबसे पहले
उससे उसका व्यक्ति ले लेता है
ताकि वह
संज्ञा से सर्वनाम हो जाए।
इसीलिए अब तुम
घर-परिवार की संज्ञा नहीं हो मंडेला!

सारी मानवता, देश और काल के
सर्वनाम हो
सिर्फ सर्वनाम—
जो दुनिया की तमाम आँखों
बाँहों और अधरों पर
सुलग रहे हो
गा रहे हो
चीख रहे हो—
स्वतंत्रता!!

(नेल्सन मंडेला के प्रति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस-किसको?

किस-किसको सीखचों में बन्दी बनाओगे?
दुनिया की हर नदी
ध्रुवों के बीच सपाटे मारते सारे सागर
आकाश उठाये पर्वतों से लेकर
सातों द्वीपों के तमाम जंगल
उनके एक-एक पेड़
एक-एक पौधे
हवा
आकाश
किसका नाम नहीं है आज
मंडेला!!
हर नया बच्चा
पैदा होते ही
अपना पहला रोना शुरू करने के पहले
लेता है सिर्फ एक नाम
मंडेला!!
बताओ, किस-किसको सीखचों में बन्दी बनाओगे?

(नेल्सन मंडेला के प्रति)

अग्निबीज

वह व्यक्ति से बन गया है
एक मुट्ठी—
नहीं
इन छब्बीस वर्षों में
पूरी दुनिया में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अग्निबीज से उत्पन्न
उठ खड़े हुए हैं
मुट्ठियों के जंगल ही जंगल।
अफ्रीका की जीभ जैसे
उस धरती के टुकड़े पर खड़े
तुम—
घिर गये हो
इस अकेली मुट्ठी के
मुट्ठियों के जंगलों से।
ये जंगल
सरकारी पालतू अभयारण्य नहीं हैं।
ये जंगल
सिर्फ जंगल हैं
जिनमें इतिहास दहाड़ रहा है।
दहाड़—
चाहे वह शेर की हो
या इतिहास की
उसका मतलब ही होता है
भूख का लगना।
और भूख के समय
शेर के लिए जो व्यक्ति है
इतिहास के लिए वही व्यवस्था है।

(नेल्सन मंडेला के प्रति)

काली कविता

दुनिया की तमाम भाषाओं में
लिखी जा रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ एक कविता
जिसका शीर्षक है—
काली कविता!!

तुमसे ही नहीं
हमेशा से
दुनिया की तमाम सरकारें
व्यक्ति से नहीं
उसकी कविता से डरती आयी हैं
क्योंकि कविता हो जाने का मतलब होता है
ईश्वर हो जाना।

ओ दक्षिण अफ्रीका की काली कविता!
तुम व्यक्ति से बन गये हो
एक कविता
जिसके शब्द
दुनिया के तमाम लोग हैं
और आज की पूरी धरती
मुट्ठियाँ कसे
बोलते हुए शब्दों से भर उठी है।
दुनिया की कोई भी व्यवस्था
आज तक नहीं ईजाद कर सकी है
कोई जेल
जो कविता के लिए हो।

ओ दक्षिण अफ्रीका की काली कविता !
स्वतंत्रताएँ
हमेशा सीखचों में ही जन्म लेती हैं
और तुमसे बड़ी और कौन सी स्वतंत्रता है
जो हर दिन जेल में जन्म ले रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम यदि काले हो
जो कि हो—
तो सारी मनुष्यता का वर्ण भी काला है,
कोढ़वाली गोरी चमड़ी से
कहीं खूबसूरत है
अवतारों वाला यह आबनूसी कालापन।
तुम यदि जेल में हो
जो कि हो—
तो दुनिया की तमाम स्वतंत्रताएँ जेल में ही हैं,
नपुंसक गुलाम आजादी से
कहीं मूल्यवान है
तेजस्वी बन्दी स्वतंत्रता।

ओ दक्षिण अफ्रीका की काली कविता!
छब्बीस वर्ष ही नहीं
छब्बीस हजार वर्ष भी तुम नहीं मरोगी
क्योंकि जेल में कविता की मृत्यु
ईश्वर की मृत्यु होगी
और ईश्वर कभी नहीं मरता
क्योंकि
वह भी विचार है
कविता की ही तरह

(नेल्सन मंडेला के प्रति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशय की एक रात

[रचनाकाल : १९६२]

- प्रथम सर्ग : साँझ का विस्तार और बालूतट
- द्वितीय सर्ग : वर्षा भीगे अन्धकार का आगमन
- तृतीय सर्ग : मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय
- चतुर्थ सर्ग : सन्दिग्ध मन का संकल्प और सवेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि सौम्य
श्री सुमित्रानन्दनजी पन्त
को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम सर्ग : साँझ का विस्तार और बालूतट

रामेश्वरम का सिन्धु तट। भाद्रपदी सन्ध्या। मेघाछन्न आकाश। समुद्री हवा का प्रवेग। राम बालू तट पर कभी उदास टहलते हैं, कभी बैठ जाते हैं। ज्वारजल कभी उन्हें भिगो जाता है। एकान्त सन्ध्या हो रही है। गत कई दिनों से राम की यही मनोदशा है। सेतुबन्ध अन्तिम रूप से तैयार हो चुका है। इस स्थान से उनका शिविर थोड़ी दूर पर है। साँझ के एकान्त विस्तार में राम सप्रश्न हैं।

राम

कितनी बार
कितनी साँझ
इस सिन्धुबेला तट
बितायीं,
काट दीं—पर व्यर्थ!!

कितनी बार कुचला
बालुओं को
स्वयं के पदचिह्न व्यूहों से
घिरे बैठे रहे
दुर्ग निर्माते रहे,
सीतामुख बनाते
सदा काँपीं अँगुलियाँ
पर हाय—
यह बालुवाली जानकी
प्रतिसाँझ
ज्वारजल में समर्पित होती रही।

वनअँधेरा
फेन भीगे पदों से
ठुकराते रहे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंखशिशु
पैरों तले
किरकिराते रहे।
सिन्धु सीने से सटी
उड़ती हुई टिटहरी
चीखा करी।
कितने पाखियों के वंश
विलोमे लहर से ऽऽ
आकाश में।

क्या हो
क्या न हो के प्रश्न ने
थका डालीं मुट्ठियाँ।

अपनी चोंच से कोंचती जल
टिटहरी
खो गयी विस्तार में—
अँधेरे में स्वत्व,
सागरघोष में वह चीख।
और हम—
बालू धँसे
सूखे बुरुस से उपेक्षित
सीपियों के
टूटे हुए मस्तूल से,
अनागत वेग की
आकुल प्रतीक्षा में।

किन्तु प्रतिबार
संशय
अनिश्चय ही
हमें भटकाता रहा।
नारिकेलों पर टिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश
शव की पुतलियों सा
मौन
नीला मौन!!

अँगुलियों से
रेत बरसा की
और हम
सोचा किये
सोचा किये—

यह बालुवाली जानकी
उस फाल्गुनी आकाश को
पुनः लौटा दें,
जो कि
मिथिला आम्रकुंजों पर
झुका था
एक नीले हंस सा।

मैथिल हंसिनी!
बालू धँसे बाण से
हम क्यों विवश हो जाते रहे?
जैसे घिर गये हों

जल की अँधेरी गहराइयों में—
जहाँ हम
देखते
सुनते
बोलते भी जल हैं।
अँधेरा जल
पार के भी पार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल ही जल।
जल की आ रहीं ध्वनियाँ
अँधेरे से
अँधेरे में
अँधेरे तक।

ओ आलोकप्रिय सहकार!
कहाँ हो
तुम कहाँ हो?

भूमुकुट जैसे अशोकों के प्रति
हम समर्पित हैं।
दे न पाये छाँह
हम जिस हंसिनी को
हमसे श्रेष्ठ तो वे गाछ हैं।

ओ सूर्यास्त!
सिन्धुजल को
नींव तक
उसके अतल तक
रँग रहे हो
वैसे ही
हमें आलोक दो।

ओ सूर्यास्त हमें आलोक दो!!
प्रतिबार
रावण द्वार से
शान्ति के सब दूत
लौटे हार
सौ बार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हम
प्रतिसाँझ
सँझाता आकाश
नैनों में लिये
भीगते बैठे रहे खारी हवाओं में

ज्वारों घिरे
विवश
छोटे द्वीप से।

परिताप
पश्चाताप—
ओ अशोकों की छाँहवाली
जानकी!
जानते भी क्यों गये हम
स्वर्णमृग हित!
क्यों गये पथ भूल??
उस वंचक के पदों में
सर्प बन सौमित्ररेखा
क्यों नहीं लिपटी?
यह परिताप
यह अनुताप—
अनुखन सालता है।
क्या सोचते होंगे जनकजी?
बन्धु-बान्धव और
पुरवासी सभी क्या कह रहे होंगे?
स्वयं सीता
सोचती होगी
क्या??

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ सिन्धु!
ओ आकाश!
नारियल के वन!
समुद्री खारी हवा!
ओ अनिर्णय की भाद्रपद की साँझ!

वहाँ उस साँझ तारे को नहीं
मुझको विलोको।
पश्चाताप में
इस झुके मेरे माथ को
नील फूलों की
शुभाशंसा प्रदत्तो।
मेरी यात्रा
छोटे शंख सी
यहीं बालू में कहीं गिर
खो गयी है।

लक्ष्मण का प्रवेश। कुछ क्षण तो वह राम को देखते होते हैं, उपरान्त बैठते हुए।

लक्ष्मण

बन्धु!

राम

कौन?
लक्ष्मण??

लक्ष्मण

पम्पा ने करली है सन्धि देव!
स्वीकृत है
सेना सहयोग भी।
आज ही रात
राजा भी आएँगे
सेवा में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम

लक्ष्मण!
जैसा उचित समझो
बात करलो
तुम्हीं मेरी इन्द्रियाँ हो।

लक्ष्मण

भले ही,
किन्तु आत्मा तो नहीं हूँ न??
फिर वे तो आपसे मिलने को
उत्सुक हैं
आपकी प्रजा बनकर आएँगे।

राम

बन्धु!
देखते हो ज्वारवाला सिन्धु
भाद्रपद की साँझ
यह आकाश
हवा विनयी नारियल के गाछ
घुले तट का असंगी विस्तार

इनके बीच
हम अपनी समस्याएँ लिये
भटके सार्थ के
टूटे हुए.सन्दर्भ हैं।
मरुथलों की
गरम ज़लती हवाओं की भाँति
असत्कारित
अवांछित
हर गाछ से।
यहाँ सब आकाश है—
इस नील असम्पृक्ती के हृदय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भी पदचिह्न तो दिखता नहीं है
लक्ष्मण!

इतने मेघ
इतने मरुत
इतने पाखियों के वंश
इतने घोष—
अँधेरे औ उजाले के
करोड़ों पंख
कहाँ हैं?

एक भी टूटा हुआ
दिनपंख
कहीं भी तो नहीं है।

किसी भी हेतु
यह आकाश तो आकुल नहीं है।
भाद्रपद का
असंगी उत्सव
गगन से सिन्धु तक
सम्पन्न है।
मित्र या अतिथि बनकर
दे सको यदि योग
तो दो—
अन्यथा
तुम उदासी के लिए ही हो

सम्भव है।
जबकि हम
सन्धियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध से
नियति पाना चाहते हैं।
इस वैराट्य के सन्दर्भ में
आयोजना में
लक्ष्मण!
शव चुभे बाण के टूटे फलक से
अधिक अपनी सार्थता
क्या है?

यदि यह सार्थता है
बन्धु!

इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अँधेरों में यात्रा करते हुए
खो जाएँ।
किसी के हाथों सही
पर नियति खोना है।
मात्र
श्रेष्ठ हाथों की प्रतीती के लिए
इस मिथ्यात्व को
शास्त्र सम्मत सत्य कह कर
मत छलो।
सब शिखर की नींव में
सोया अँधेरा है,

मत जगाना
अँधेरों को मत जगाना
लक्ष्मण! मत जगाना!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम टहल रहे होते हैं। लक्ष्मण उपरोक्त कथन सुन, कुछ क्षण तो अवाक् हो देखने लगते हैं फिर टहलते उदास राम को संबोधित करते हुए कहते हैं।

लक्ष्मण

क्षमा करें मेरे इस भाव को।

बन्धु अग्रज हैं
परिजन औ पुरजन प्रियभाजन हैं।
साथ ही हम प्रजा के
मनोनीत राजन हैं।
ऋषियों के प्रिय और
हम सब के
नैनों के उत्सव हैं।
अवधि हैं अयोध्या की
सीता की प्रतीक्षा हैं
महाराज रघु की ही प्रतिकृति हैं।
तब इस संशय का
क्या है प्रयोजन
देव!
क्यों है परिताप
और अनुताप किसलिए?

जब से किया है
रामेश्वर शिविरवास
देखता हूँ प्रिय हुआ है आपको
एकान्तवास।
तब से यह संशय भी
अनिश्चय भी
घेरे है।
सम्भव है।
लगता हो जीवन ही निस्सार।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतपुत्र!
छाया सा
अनुज यह सदा पीछे लगा रहा
ताकि देख सकूँ उसको
जिसको पाने को
आकुल हैं
बन्धु! आप।
क्या है अभीप्सित वह
जो कि
इस जल घिरी चट्टान पर
बैठे हुए राम को
मँथता है
पोर पोर,
झोर झोर देता है
निष्ठा को?

क्या है वह?
क्या है वह प्रभु!

आप जब चले जाते हैं
तट को अकेला छोड़,
गिने हैं
प्रत्येक चिह्न आपके पदों के
गिने हैं
इस अनुज ने।
अपने विकल्पों से खुँदा
मन जैसा
बालूतट
देखा है
नित्य रात।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु क्या है वह
जो साले है
बन्धु को?
अपने ही
पदचिह्नों के व्यूहों से
घिरे हुए रहने में
कौनसा प्रयोजन है?
कौनसी वह प्राप्ति
जिसे पाने में
हम सबको पाते हैं बाधा
बन्धु!

अपने से बड़ी
नहीं अन्य कोई बाधा है।

सन्धि या कि युद्ध
टूटे सन्दर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं हैं।
नहीं हैं हम
केवल परिचालित यन्त्र मात्र
किसी अदृश्य
अन्धे हाथों के।

कितने ही लघु हों
इससे क्या?
सार्थक हैं।
स्वत्व है हमारा
कर्म—

हमारी जलती हुई आँखों में
बँधी हुई मुट्ठी में

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिंचे हुए ओठों में
इन उद्धत पैरों में

संकल्पित प्रज्ञा है
वर्चस्वी निष्ठा है
उत्सर्गित इच्छा है।

हम केवल चलते हैं
अपने में
अपने से बाहर
धूप और अन्धकार चीरे
हम चलते हैं।

चलने पर
सम्भव है—
तीर्थ मिले
कीर्ति मिले
चामर की छाँह मिले।
सम्भव है—
पसली में बाण फँसे
प्यासे ही दम तोड़ें,
चीलों से
आखिर तक
युद्ध करें जीवन हित।

सम्भव है—
सम्भव है—
साँकल से बँधे हुए
जेता के रथ में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुतने को
बाधित हों।
विजयी राक्षसगण
जीवित ही
भून दें

किन्तु
किन्तु यह असम्भव है

बन्धु! यह असम्भव है
कर्म और वर्चस को
छीन सके कोई भी
जब तक हम जीवित हैं।
प्रभु! मेरे
यह सेतुबन्ध आयोजन
या कि
युद्ध आवाहन आदि कहीं
व्यर्थ तो नहीं लगता?
या फिर
युद्ध में क्या होगा
मात्र यदि इसकी ही चिन्ता है

तो फिर—
शपथ है बन्धु!
मुझ को मेरे ही बाण की
आज की भाद्रपदी साँझ की।
सिन्धु के इस
ऐकान्तिक शिवघोष की।
इन देवपुरुष तारों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शपथ है
बन्धु! शपथ है
मुझको
इस क्षण को भी।

साक्षी रहे सूर्यास्त।
रहना तुम साक्षी
ओ विस्तीर्ण बालुओं के वंश!
लक्ष्मण से तुम भी हो
प्रतिश्रुत
ओ देवप्रियी नीलाम्बर!
आज्ञा करें राम
देखें फिर पौरुष इस बन्धु का।
दूसरी बार होगा
सागर का मन्थन अब।
यदि यह बाधा है सिन्धु
अगस्त्य के आचमन सा
सोखेंगे।
महाकाल देखे अब,
साक्षी रहे इतिहास।

लंका यदि ध्रुव पर भी होती तो
भाग नहीं पाती बन्धु!
लक्ष्मण के पौरुष से।

कर्म की चुनौती
मुझे स्वीकार है
अग्निकुण्ड की भी पर
राम के माथे पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता की रेखा?
देख नहीं सकता।
ब्रह्मलेख को भी मैं
बाणों की चुनौती ही देता
यदि वह
राम के माथे पर बनता
चिन्ता की रेखा।
आप रुकें रामेश्वर
जाएगा लक्ष्मण ले अभियान।
यदि नितान्त एकाकी भी जाना पड़े
जाऊँगा
बन्धु! जाऊँगा
सीता को लाऊँगा
अपने पुरुषार्थ से।

विश्वासें
प्रभु! विश्वासें
अपने बन्धु-मित्रों के
पौरुष को।
जन-जन के द्वारा निर्मित होते
सेतुबन्ध को।

लक्ष्मण बोलते हुए चुप हो जाते हैं और राम की ओर देखने लगते हैं। राम अत्यन्त शान्त भाव से समुद्र देख रहे होते हैं। कुछ देर बाद वे अपने ही में बुदबुदाने लगते हैं। संयमित आवेश में वे प्रत्यंच हैं अपने ही में। टहलने लगते हैं। उपरान्त वे स्पष्ट रूप से लक्ष्मण से बोलने लगते हैं।

राम

यही तो है बात
लक्ष्मण!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम ने कभी नहीं किया अविश्वास
यही तो है बात।

मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु!
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु !
क्या यह सम्भव है?
क्या यह नहीं है?

राम बोलते हुए मौन हो जाते हैं। सूर्यास्त हो रहा होता है। उस रक्ताभा में सागर तथा राम दोनों ही रंगा उठते हैं। रह-रह कर ज्वार उनके पदों तक आकर बिखर पड़ता है।

देखते हो लक्ष्मण!
यह बालुवेला और सागर तीर
ज्वार का उद्घोष
सबका सम्मिलित एकान्त
कितना शान्त जैसे
आकाश की नीलम आँख!!

फिर भी
कहीं चारों ओर
हल्का शोर
हाहाकार।
शंख-सीपी उगलते
ये क्रुद्धपन
वृहदाकार।
बेलनों से रोलते अन्तर स्वयं का
आ रहे किस गर्व से—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर टूटने को।

ठीक ऐसा ही विरोधाभास
अनिर्णय की भाद्रपद की साँझ
मुझ में भी कहीं पर है।
कर्म मेरे लिए
कभी था ही नहीं आवेश
वह कर्तव्य लगता है,
इसलिए वह प्रश्न है।

कितनी बार
भाद्रपद की अनिर्णय साँझों घिरे
सागरतीर हम बैठे रहे।
स्वयं को
इन हरहराते नारिकेलों को
डाक दी
प्रतिडाक दी पर व्यर्थ!!

यदि न हो विश्वास तो
ये आज के
कल के सभी पदचिह्न
प्रतिश्रुत हैं।
यह खारी हवा
या साँझ तारा साक्षी है
लक्ष्मण!
मैं नहीं हूँ कापुरुष
युद्ध मेरी नहीं है कुण्ठा

पर युद्धप्रिय भी नहीं।
बन्धु!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने वंश का
मैं दुःख-कारण हूँ।
इसका ही मुझे
परिताप
है अनुताप
प्रायश्चित भी।

लक्ष्मण!
राम की इस विवशता को
सोच सकते हो?
अन्य प्रायश्चित करें मेरे लिए,
दुःख भोगें,
वनों में भटकें अकारण ही
बिना वनवास की आज्ञा मिले।
पिता की मृत्यु
विधवा जननियाँ
कौन है इनका निमित्त?
पत्नी का हरण
पिता के मित्र जटायु का मरण
मेरे लिए—
उपेक्षित अंगद हुए,
देहदाही हुए हनुमान
किसके लिए?
उर्मिला सी देवि
विरहणी किस प्रयोजन के लिए?
व्यक्ति का वनवास
परिजन और पुरजन के लिए
अभिशाप क्यों बन जाए?
व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम के कारण
भरत जैसा सौम्य
निर्वसित हो?

लक्ष्मण!
इतने प्रश्न
शंका औ कुशंकाएँ
मुझे घेरे हुए हैं।
इन उपकार के बदले
कृतज्ञित हूँ
किन्तु अपनी दृष्टि में ही
मैं अपात्री लग रहा हूँ।

लक्ष्मण!
मेरी पात्रता को यों न पूजो।
मेरा व्यक्ति
मात्र पश्चाताप है
केवल पराजय है।
यह चेतना
यह बोध
अमोही प्रज्ञात्मता की
अग्नि यह
कौन से अभिषेकजल से शान्त हो?
समाहित व्यक्तित्व की
यह ज्वाल
अनुखन दाहती है बन्धु!
कौन से वे हिम शिखर हैं
द्रोणियाँ हैं
जहाँ आदिम अग्नियाँ सोयी पड़ी हैं?
यह अग्नि भी सो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव-निर्माल्य सी
इस अग्नि को
उत्तर दिशा को सौंप दो।
मुझ अपात्री के लिए
यह चेतना
यह बोध

दाह है
तप नहीं।

द्वन्द्व का यह स्वर
अपरिचित लग रहा होगा,
लक्ष्मण !
विद्रोह मेरा नहीं गुण-धर्म है
सौम्य स्वीकारा गया हूँ आज तक।
केलफल सा सदा
विनयी ही रहा।

पर
यह चेतना
यह बोध—
आस्था में
आत्मा में ही विभाजन कर रहे।
यह अकेले राम का संकट नहीं है
लक्ष्मण!
सम्भव है प्रथम हो
किन्तु अन्तिम तो नहीं है।

दो सत्य
दो संकल्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो दो आस्थाएँ—
व्यक्ति में ही
अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है,
कौन जाने
अप्रमाणित व्यक्ति में भी
अन्य आसित हों।
क्या हो
क्या न हो की बालु में
किसी पाखीपंख से टूटे हुए
सन्दर्भ खण्डित
निष्प्रयोजित!!

ये यज्ञ
ये आश्रम
देवोपासना
मानव एकता—
यदि बिना युद्धों के नहीं हैं सत्य
लक्ष्मण!
तब एक गहरा प्रश्न ऽ
संकट
प्रत्येक प्रज्ञित के लिए।

सत्य की मिथ्या पताकाएँ लिये
अपने स्वार्थ के दे खड्ग

जन के हाथ में
जो भी लड़ूँगा युद्ध
होगी आस्था की वंचना ही
बन्धु!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा युद्ध
ऐसी विजय
ऐसी प्राप्ति—
सब मिथ्यात्व है।
नरसंहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्णा से भर उठा हूँ।

ओ अनास्थित सूर्यास्तवाली
भाद्रपद की साँझ!
युद्ध के उपरान्त होगी शान्ति
उपलब्धियों की सिद्धि—
इस मिथ्यात्व से
इस मरीचिका से

मुक्ति दो!!

दूरी पर हो रहे सूर्यास्त को दोनों देख रहे होते हैं।

द्वितीय सर्ग : वर्षा भीगे अन्धकार का आगमन

लक्ष्मण, राम को वहीं सिन्धुतट पर अकेला छोड़ हनुमान को लेकर विभीषण के शिविर-द्वीप की ओर चले गये। उपरान्त राम टहलते हुए सेतुबन्ध की ओर निकल आये। सेतुबन्ध पूर्ण हो चुका है। सेतुबन्ध की एक बुर्जी पर जाकर उदास हो गरजता सागर देखने लगते हैं। कुछ ही देर में वृष्टि धाराधर हो जाती है, लेकिन राम उसी प्रकार आद्यन्त भीगे खड़े, विचार ही बने रहते हैं।

शिविर ओर का उल्कालोक लपक में दिखने लगा है। बन्ध एवं शिविर के प्रहरियों का 'सावधान' दूर-निकट सुनायी पड़ रहा है। सिहराती सपाटे मारती हवा, वर्षा को कोटों-कँगूरों पर बिछलाती 'साँय-साँय कर रही है। राम, मूर्ति बने अभी भी विचलित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम

मुझे प्रश्नों शपथों में घिरा छोड़
चला गया लक्ष्मण
चला गया।

ओ भाद्रपदी वृष्टि!
मुझे भी नारिकेलों सा
अभिषेकित हो जाने दो
आद्यन्त भीग उठने दो
उस आत्मा तक
जो खन्डित है।

जहाँ केवल
क्या हो
क्या न हो के प्रश्न ही प्रश्न हैं।

ओ भाद्रपदी वृष्टि!
आद्यन्त भीग उठने दो।
सम्भव है
तुम्हारे इन देवजलों से
यह संशयाग्नि शान्त हो सके
सम्भव है।
एक
अनुत्तरित संशय का सर्पवृक्ष
हरहरा रहा मुझमें
पीपल सा
आहोरात्र।

दो सत्य
दो संकल्प

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो दो आस्थाएँ
व्यक्ति में ही अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो गया है।
यह बोध
यह चेतना
अनुखन दाहती है।
ओ भाद्रपदी वृष्टि!
आद्यन्त भीग उठने दो
उस आत्मा तक
जो वासुदेव थी—
पर अब सर्पवृक्ष है
संशय-खण्डित।

मुझे प्रश्नों शपथों में घिरा छोड़
चला गया लक्ष्मण
चला गया।

मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं,
खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।

क्या यह सम्भव है?
क्या यह नहीं है?
ओ भाद्रपदी वृष्टि!
ओ विशाल रत्नाकर!
यदि मानवीय प्रश्नों का उत्तर मात्र
युद्ध है
खड्ग है

तो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लो
समर्पित है तुम्हें
तुम्हारे अज्ञात जलों को,
इस क्षण के द्वारा
वृष्टि भीगे उस महाकाल को
समर्पित है यह

धनुष, बाण, खड्ग और शिरस्त्राण।
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
बाणबिद्ध पाखी सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए,
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए।
सीता भी नहीं।
हाय
आज तक मैं निमित्त ही रहा
कुल के विनाश का
लेकिन
अब नहीं बनूँगा कारण
जन के विनाश का।

मुझे प्रश्नों शपथों में घिरा छोड़
चला गया लक्ष्मण
चला गया।

तभी बुर्जी के सामने वाली छत पर पदाहट होती है। राम किंचित् चौंकते हैं। आगन्तुक नील है, जो कि एक सामन्त है। वह भी युद्धभूषा में है। सैनिक अभिवादन निवेदन कर सतर्क मुद्रा में खड़ा हो जाता है।

राम

नील?
इस वृष्टि में?
कुशल तो है सब?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नील

जय हो।
प्रभु के शिविर भी गया था।

राम

कारण?

नील

पूरब के सेतुबुर्ज पीछे
एक अदृश्य छाया
दीपक की लौ सी
अस्पष्ट घूमती दिखती है
कभी-कभी।

राम

छाया?
कैसी?
किसकी छाया?

नील

यह तो पता नहीं देव!
लेकिन वह छाया
निश्चय ही माया है।

राम

रावण की?

नील

सम्भवत:

राम

तो फिर
तुम सबके मन्त्रपूत बाण क्या हुए?

नील

जल में बाण का जो होता है
वही हमारे भी बाणों का हुआ प्रभु!
छलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहट सुन
दिशाकाशों में धुलने लगती है।

राम

किस ओर?

नील

सभी ओर।
लगता है जैसे कुछ खोज रही।

राम

क्या?

नील

यह तो पता नहीं।

राम

ऋक्षपति ने देखा है?

नील

उन्होंने ही प्रभु तक भेजा है
मुझे।

राम

कहीं यह भ्रम तो नहीं है?

नील

नहीं देव!
हमने उस मायावी से
बातें करने की चेष्टा की।
लेकिन वह
अस्पष्ट बनी
आकृतिहीन
यहाँ-वहाँ खोजती घूमती सी है।

राम

पहले कब देखा?

नील

कुछ दिन हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम

आज?

नील

वृष्टि शुरू होने पर।

राम

लक्ष्मण को मालूम है?

नील

अभी नहीं।

राम

जाओ, उन्हें बुला लाओ।

नील

वे अभी नौका ले
विभीषण से मिलने
उनके द्वीप तक गये हैं।

राम

अच्छा, चलो
देखें वह मायावी कौन है।

दोनों का प्रस्थान।

सेतुबन्ध के एक अन्य भाग का दृश्य। धाराधर वर्षा में भीगते हुए जामवन्त आदि सामन्त प्रतीक्षित खड़े हैं। प्रतीक्षा राम की ही है। सभी भीगे, युद्धभूषा में हैं। राम को उपस्थित देख सभी सैनिक अभिवादन करते हैं।

सामन्त

जय हो।

राम

कहाँ है मायावी?

जामवन्त

अभी अभी मेघों में लौट गया।

नल

वर्षा थमने पर
संभव है फिर आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम

किधर गया?

जामवन्त

ईशान ओर।
वहीं से आता है
और इन कोटों-कँगूरों पर
खड़े-खड़े देखता है।

राम

कैसा है?

जामवन्त

नख से शिख तक
उज्ज्वल में मंडित
किन्तु अस्पष्ट।

नल

किसी वृद्ध राजन सा।

राम

किसी वृद्ध राजन सा?

तभी जोरों पर विद्युत का चमकना। मेघ-गर्जना। सेतुबंध का यह भाग जहाँ ये लोग एकत्र हैं, भीगे विद्युत-आलोक में दिप उठता है। साथ ही हवा का एक तेज झोंका सबको कँपा जाता है।

जामवन्त

वो देखें प्रभु!
वो ऽ ऽ उन
मेघों के पीछे
वहाँ......

नल

हाँ, वही है।
कैसा मेघों में छिपा छिपा
उतर रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नील

क्यों न हम
कँगूरों के पीछे हो लें।

छाया कँगूरों पर के ऊपर वाले आकाश में अस्पष्ट दिखते हुए घूमती होती है। शेष उसे भय से देख रहे होते हैं लेकिन राम को मात्र आश्चर्य है।

जामवन्त

इतनी वृष्टि में भी
वस्त्र नहीं गीले
निश्चय ही माया है।

नील

इस बार
प्रभु ही पूछें तो अच्छा है।

राम छाया के साथ साथ बढ़ते हैं। सामन्त वर्ग अपने-अपने शस्त्र निकाले राम के पीछे पीछे चलने लगते हैं।

राम

कौन हो तुम?

छाया इस बीच बराबर कभी मेघ-डूबी, कभी मेघ-दिखी होती रहती है।

ठहरो
ओ छलना!
कौन से प्रयोजन के लिए
घूम रही बुर्जों पर?
उत्तर दो
राम को उत्तर दो।
बोलो क्या चाहती हो?

छाया के अंक का पक्षी पंख फड़फड़ाने लगता है।

नल

हाथों में इसके तो पक्षी है।

जामवन्त

गरुड़ है शायद।
अवश्य ही रहस्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छलने!
प्रभु को उत्तर दे।

नल

उत्तर दे।
वर्ना मन्त्रपूत बाणों से
स्वाहा हो जाएगी।

राम

ओ रात्रि की प्रेतात्मा!
ठहरो
उत्तर दो
दाशरथी राम को उत्तर दो।
मैं तुम्हें मन्त्रों से पाशित कर
इन्हीं आकाशों में थिर कर दूँगा
अनन्त को।
उत्तर दो।

जामवन्त

दाशरथी महाराज राम को उत्तर दे
छलने! उत्तर दे।

छाया विलीन होने के लिए ऊपर आकाश में तेजी से चढ़ने लगती है। राम उसे पकड़ने के लिए कँगूरे पर लपक कर चढ़ जाते हैं।

नील

प्रभु! उसका पीछा न करें
वह केवल छाया है।

जामवन्त

अब आप फिर किसी
नयी छाया के पीछे
न जाएँ प्रभु!

नल

न जाएँ प्रभु!

राम यथावत अनसुने भाव से आकाश ताक रहे होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम

बोलो ओ मायावी!
कौन सा प्रयोजन है तुम्हारा?
किसने तुम्हें मन्त्रित कर
छोड़ा है मेघों में!
ओ अनाकृती!
किसी भाषा में सही पर
उत्तर दो,
मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ

उत्तर दो,
दाशरथी राम को उत्तर दो।

एक क्षण को मौन घिर उठता है। केवल मेघ-गर्जन प्रमुख हो उठता है। सब छाया की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगते हैं जो कि अब अपेक्षाकृत स्पष्ट हो उठी है। दीपशिखा बन वह छाया जैसे मलमल में लिपटी किसी वृद्ध व्यक्ति की आकृति हो किन्तु मुख पर अभी भी मलमल की झीनी चिलमन पड़ी है, इसलिए आकृति बोध नहीं होता। वह छाया इस बार षड़ज में डूबे-डूबे स्वर में बोलने लगती है।

छाया

राम!
मुझे तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी।

इन आवाजों से कह दो
चली जाएँ।
केवल तुम
आओ
मेरे पीछे पीछे आओ।

डरो नहीं राघव!
मेरे पीछे पीछे आओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामवन्त

प्रभु! यह छलना है
रावण की।

राम

तुम लोग
नीचे बाँध पर प्रतीक्षा करो।

शेष लोग चले जाते हैं। उपरान्त छाया और राम ही रह जाते हैं। छाया थोड़ी दूर तक राम को ले जाती है।

छाया

डरो नहीं राघव!
मैं तुम्हारी पितात्मा हूँ।

राम

स्वर्गीय राजराजेश्वर दशरथ की?
पितात्मा?

यहाँ कैसे?

छाया

मृतकों से प्रश्न नहीं करते
पुत्र!

राम

औ यह पाखी?

छाया

यह मेरे मित्र जटायु की आत्मा है।
तुम्हारे अग्निदाह से
हम दोनों तुष्ट हैं।
तुम्हारा कल्याण हो।
तुम्हें पश्चाताप है
मेरे मरण का
जननियों के वैधव्य,
कुल के नाश का कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं को मानते हो।
तुम्हें परिताप-पश्चाताप
वात्याचक्र से घेरे हुए हैं

राम

सत्य है यह
ओ पितात्मा! सत्य है यह।
बारम्बार कौंध जाता है—
ऐसा क्यों हुआ?
जब हमने नहीं चाहा तब
ऐसा क्यों हुआ?

नन्दीग्राम के एकान्तवाला
भरत का वह
सौम्यमुख,
उर्मिला की पति-प्रतीक्षित दीठि,
मेरे तपते हुए आकाश में
मिहिरहीना दिशाओं सी
श्वेत, मौन, उदास
माताएँ—
जैसे
एक असफल साँझ रक्तिम
ग्रीष्माकाश में
असमाप्त होने के लिए होती रहे
आधी रात तक।
कैसी त्रासदी!!
राज्य पाने की नहीं की कामना
फिर भी गृहकलह।
सोचा था
शान्त तापस बन
एकान्त आरण्यक रहूँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु
पग पग पर घटनाएँ प्रतीक्षित थीं।
राक्षसी षड्यन्त्रों को जैसे
मेरे निमित्त की ही उत्कंठा थी।
मुझे ही जैसे
उत्सव का
अन्तिम गायन होना था।
यह सब कुछ का समापनी समारंभ!!
कैसी त्रासदी!!

यह अन्तरीप
मन का
स्थल का।

जहाँ अब कोई पथ नहीं,
पथान्त है।
वह भी युद्धाभिमुख।
पीछे
जहाँ लौट जाने वाले पथ हैं
एक उदास
वनवास की आज्ञा खड़ी है
पथ को रोक।

यह अन्तरीप
मन का
स्थल का।

सम्मुख अब केवल युद्ध
अवैतरित सिन्धु,
युद्ध की विभीषिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्जन-तर्जनयुत
कृत्या।

ओ पिता!
क्या यही?
क्या यही नियति है?
सारे मानवीय शुभाशुभ की
क्या यही परिणति है?

छाया

राम!
तुम चाहते हो सत्य
औ अधिकार
युद्ध साधन के बिना।
प्रतिबार
रावण-द्वार से
तुम्हारे दूत लौटे हार
फिर भी युद्ध
अस्वीकार
तुमको।

क्यों?
किसलिए यह अनासक्ती?
कर्म के प्रति कापुरुषता नहीं है यह?
कीर्ति, यश, नारी, धरा
जय, लक्ष्मी
ये नहीं हैं कृपा
या अनुदान।
मेरे पुत्र!
भिक्षा से नहीं
वर्चस्व से अर्जित हुए हैं आज तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ सब कर्तव्य है
जयाजय
धर्माधर्म कुछ भी नहीं।
केवल नाम हैं।
इतरजन के लिए
ये सब आप्त हैं पर
तुम तो श्रेष्ठ हो
शास्त्र, मर्यादा तुम्हारी छाँह हैं।

ओ विकल्पित पुत्र मेरे!
परिस्थितियाँ धेनु हैं।
दुहो इनको
निष्ठुर अँगुलियों से दुहो इनको।

राम!
मेरा मोह
मेरी मृत्यु था।
उस दिन युद्ध में
पार्श्व बैठी कैकेयी ने
दो वचन ही केवल नहीं माँगे थे।
तुम्हारा अभिषेक
मेरी आत्मा का था।
तुम्हारा वनवास
मेरी आत्मा का था।
मैंने वचन देकर मृत्यु क्रय की थी
इसलिए
तुम्हारा परिताप-पाश्चाताप समुचित नहीं।

राम

लेकिन पिता!
निष्ठुर अँगुलियों की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमानव नहीं है क्या?
अभिषेक और वनवास दोनों से
संबंधित नहीं हूँ क्या?

छाया

राम!
मोह असत्य है
किसी का भी हो।
तुम्हें अपनी अनास्था से नहीं
संशयी व्यक्तित्व से भी नहीं
तुम्हें लड़ना युद्ध है

असत्य से।

राम

लेकिन कौन सा?
किसका असत्य?
इस सत्यासत्य का
निर्णय करेगा कौन?

छाया

किससे कर रहे हो प्रश्न
राघव!

वृष्टि से?
आकाश से?
इस क्षणदा विद्यु से?
यहाँ
या इस आकाश में
या महत के ब्रह्माण्ड में
केवल प्रतिध्वनियाँ शून्य की।
शेष
कहीं कोई नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ जो है केवल
नियम है
जिसका बृहत् विराट चक्र है।
कर्म ही गति है
इस अग्निचक्र की।

तब किससे कर रहे हो प्रश्न
राघव!

उस अजन्मे अमर्त्य महाकाल को
न जन्म से
न मृत्यु से
न सम्बन्धों से
योजित या विभाजित किया जा सकता।
उस महानियम के निकट
हम केवल कर्म के क्षण हैं।
जो कि
बलिपशु से बाधित, समर्पित
उस अविनाशी
महाकाशी अग्निचक्र को।

तब किससे कर रहे हो प्रश्न
राघव!

राम

लेकिन पितात्मा!
ये सब स्वीकारोक्तियाँ हैं
सत्य नहीं।
इनकी वास्तविकता को
कभी चुनौता ही नहीं गया।
इन अंधे विश्वासों को

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी संशय ने निगला ही नहीं।
किसी वर्चस्वी तर्क ने
इनके सत्य को
प्रश्न कर
बौना किया ही नहीं।

ये अनप्रश्नित आप्त-सत्य
ये अपरीक्षित आस्थाएँ
किसी तेजस् मस्तक पर त्रिपुण्ड नहीं हो सकतीं।

ओ पिता!
संशय, निकष है
ऋत का भी।

छाया

किन्तु संशय स्वयं
ऋत या सत्य तो नहीं।
वह तो
कर्म है
आस्था है
सृष्टि है जो
ऋतम्भरा प्रज्ञा है।
और
तुम्हें तो केवल
परिताप है, पश्चाताप है
संशय भी नहीं।

राम

हाँ
पुत्र के रूप में पश्चाताप है
अनेकों सम्बन्ध से परिताप भी
पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति को
केवल संशय है
केवल संशय है।

छाया

परिणाम का?

राम

नहीं पिता!
मानव नियति का संशय है।
यदि सारे शुभाशुभ
युद्धों से ही प्रतिपादित होने हैं
तब वे सत्य तो नहीं
अन्तिम भी नहीं।
यह तो उन्हें सिद्ध करना हुआ।
और ऐसी बलसिद्धता का
कोई अन्त नहीं होगा पिता!
कोई भी दर्शन या शास्त्र उन्हें
सत्य नहीं प्रस्थापित कर सकता।
जितना ही समूह होगा
उतनी ही बड़ी बलसिद्धता होगी।

इसीलिए
मेरे व्यक्ति को
संशय होता है
ओ पिता! संशय होता है।

यदि मैं मात्र कर्म हूँ
तो यह कर्म का संशय है।
यदि मैं मात्र क्षण हूँ
तो यह क्षण का संशय है
यदि मैं मात्र घटना हूँ
तो यह घटना का संशय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह संशय है
संशय है
संशय है।

छाया के हाथों से जटायु बोलने के लिए पंख फड़फड़ाता है, छाया उसे गहे रहती है।

जटायु

दाशरथी!
पिता पद पर मुझे रख
जो अग्नि दी थी
उससे मैं तुष्ट हूँ।
तुम्हारा कल्याण हो।

हम आत्माएँ हैं।
सम्बन्धहीन, बोधहीन आत्माएँ।
हमारे निकट कृतज्ञता या आभार
जैसी भाषा का कोई अर्थ नहीं
फिर भी मैं तुष्ट हूँ वत्स!
तुम्हारा कल्याण हो।

हम आत्माओं की
वहाँ तक गति है
जहाँ तक मन की भी नहीं होती।
यद्यपि
हम कहीं नहीं हैं
फिर भी स्थित हैं
ब्रह्माण्ड में
आकाशवत।

राघव!
अपने पिता और परिजनों के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परितापित हो
उन्हें छोटा न करो।

यहाँ प्रत्येक कर्म
क्षण या व्यक्ति
घटित होकर कालातीत हो जाता है।
यह सम्बन्धहीन घटना ही
अग्नि है
नियम है
दिशाकाशी पुरुष है।

वह वैराट्य
वह महानियम—
सम्बन्ध नहीं
स्थितियाँ पैदा करता है।
वह तो गुण है
जो उन्हें संज्ञित किये रहता है
सम्बन्ध नहीं।

राघव!
यदि तुम देख सके होते
प्रत्येक दो क्षणों के बीच
अनन्त समय का अन्तराल बिखरा है।
एक सम्पूर्ण सृष्टि
सुख-दुःखमयी एक सम्पूर्ण सृष्टि
अपने उदयास्त काल में
घटित हो जाती है
उस क्षण में।

यदि तुम क्षणों की इस पृथकता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख सके होते तो
राघव!
परितापित कभी नहीं होते।

यहाँ कुछ नहीं समाप्त हुआ
क्योंकि कभी भी
कुछ नहीं आरंभ हुआ।
वह तो क्षण था
गुण था
जो कि है रहेगा भी।
केवल हम ही
उस क्षण के पूर्व तक उसमें नहीं थे,
केवल हम ही
उस क्षण के बाद नहीं होते
इसीलिए हमें
कुछ जन्म लेता, मरता लगता है।
अजन्मे अविनश्वर क्षण या समय को नहीं।

वहाँ
केवल अन्तराल
जहाँ ध्वनियाँ, प्रकाश, रंग, रूप, गंध यात्रित हैं।
बोधहीन आत्माएँ यात्रित हैं।
केवल अन्तराल
केवल अन्तराल फैला है
रंगकुंडलों के आवर्तों में घिरे हुए
इन तारग्रह की दूरियों के
अपरपार
प्रतिध्वनियों वाला अन्तराल
जहाँ अविनश्वर समय स्वयं यात्रित है।
वहाँ केवल अन्तराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने नीले रहस्य में
केवल अपने ही लिए समासित है।
राघव! तब काल के किस प्रश्न को
समय के किस संशय को
सत्य के किस शंकात्व को
निकालना चाहते हो?
जटायु चुप हो जाता है। छाया बोलती है।

छाया

पुत्र मेरे!
संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है।
यश जिसकी छाया है
उस कर्म को वरो।

जितनी गुणात्मकता जानोगे
उतने ही संशय
उतने ही प्रश्न तुम्हें घेरेंगे।
कितनी विरोधी गुणात्मकता वाली सृष्टियाँ
यहाँ फैली हैं
आकाश में
समुद्रों में
तुम्हारे पैरों के नीचे
पृथिवी में
चट्टानों की पलकें मींचे
अनन्त सृष्टियाँ सोयी हैं।
स्वयं अपने ही भीतर
विरोधी सृष्टियाँ सोयी हैं।

करो
प्रश्न करो
इन सबसे प्रश्न करो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस उत्तर के लिए
जो कहीं नहीं था
जो कहीं नहीं है
जो कहीं नहीं होगा।

सृष्टियाँ
गुण-धर्म हैं
किसी के प्रश्न की उत्तर नहीं

राम

लेकिन पिता!

जटायु

अब और नहीं राम!
अब और नहीं।

आओ, आओ
मेरे समादृत राजन!
आओ चलें।
हम आत्माएँ हैं
सम्बन्धहीन, बोधहीन आत्माएँ
जिन्हें मोही बन
पुनः मृत्यु नहीं मरनी है।

यह मत भूलो
हम केवल विचार हैं
भावना नहीं।
आओ, आओ
मेरे समादृत राजन! आओ।

ओ हमारे पंखों की दिशाओ!
ओ हमारी दृष्टियों के आकाश!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें यात्राओं पर ले चलो।
आओ, चलो
यह मत भूलो
हम वह क्षण हैं
जो बीत चुके पुनः नहीं बीतेंगे
आओ, आओ
मेरे समादृत राजन!
आओ, चलें।

छाया

पुत्र! हमें जाने दो
हम व्यतीत हैं, हमें जाने दो
तुम्हारा कल्याण हो।
तुम्हें लड़ना युद्ध
अपने से नहीं
अनास्था से नहीं
संशयी व्यक्तित्व से भी नहीं
केवल

असत्य से।

हमें जाने दो
पुत्र! हमें जाने दो।
हम व्यतीत
हमें व्यतीत ही रहने दो
हमें अब जाने दो।
पुत्र! हमें जाने दो।

कहते हुए छाया और जटायु का आकाश में विलीन होना। राम, मात्र अवाक हो देखते रह जाते हैं। वृष्टि, हवा, विद्युत, उसी प्रवेग से हैं।

उपरान्त राम भी चलने के लिए उद्यत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय सर्ग : मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय

युद्ध परिषद की बैठक।

राम अपने शिविर में लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त आदि सामन्तों के साथ बैठे हुए युद्ध मन्त्रणा में रत हैं। सब लोग चौकियों पर बैठे हुए हैं। बीच में एक दीपाधार, बड़ा सा जल रहा है। सब काफी चिन्तित एवं थके लग रहे हैं।

पृष्ठभूमि में सागरघोष तथा गरजते बादलों की गड़गड़ाहट है। प्रहरियों का 'सावधान' स्वर दूर-पास सुनायी पड़ता है।

लक्ष्मण

सुनते हो
हनुमत प्रवीर! सुनते हो
प्रभु के निर्णय को?
परितापित वाणी को?

कहते हैं
रघुकुल के दुःखों का मैं कारण हूँ।
सरयू से लेकर सागर तक
जो कुछ भी हुआ
या कि हो रहा है
उसका मैं
अपयशी निमित्त हूँ।
युद्ध नहीं होगा
क्योंकि सीता का हरण
राम की व्यक्तिगत समस्या है।

सुनते हो
हनुमत प्रवीर! सुनते हो
प्रभु के निर्णय को?
परितापित वाणी को?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान

सम्भव था
सब कुछ सम्भव था
महाराज जो कुछ कहते हैं
सब सम्भव था।

यह सेतुबन्ध का बनना
रहता मात्र कल्पना।
रामेश्वर तट
एकत्र न होते ये नग्न देह के
कोटि-कोटि
साधारण जन।

सम्भव था
सब कुछ संभव था
यदि यह राम की ही
व्यक्तिगत समस्या होती।
रघुकुल के सारे दुःखों के कारण राम
यदि इनका आवाहन करते
तो
सम्भव था
जो कुछ कहते हैं
सब सम्भव था।

पर हे रघुकुल तिलक!
किसके विरुद्ध?
ये कोटि-कोटि
साधारण जन
महायज्ञ के बौने होता
ये लाघव समग्र
हैं पंक्तिबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकत्र
अभियान व्यग्र
बन कुलिश वज्र।
राघव!
ये लाघव समस्त
किसके विरुद्ध?
वह कौन मन्त्र?
वह कौन शक्ति?
वर्चस्व कौन?
जो काली, दुबली, मटमैली देहों के
इन बौनों में
प्रथम बार
जागा है
अभिमंत्रित
कर फूत्कार?

भुलाकर अपने सारे जाति-कुलों के
राग-द्वेष ऽ
गुल्मभाव, प्रादेशिकता

ये छोटे-छोटे बौने
किस आवाहन पर
महासेतु निर्माण कर रहे?

वह महासेतु
जो कि प्रथम आश्चर्य सृष्टि का
मानव के विद्रोह भाव का
प्रथम
किन्तु अद्भुत प्रतीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये छोटे-छोटे व्यक्ति
गुल्म परिवार,
सामन्त राज्य—
दुर्गम वनपथ, पर्वत कठोर को चीर
उत्साहित नदियों-नालों वत
दुहते
इस अन्तरीप पर
किस इतिहास-व्यक्ति में
मिल जाने को आकुल?

वह इतिहास-व्यक्ति
जो कि महार्णव है
है कौन?

किसने
रावण पीड़ित दक्षिण प्रदेश के
इन असंख्य साधारण जन को
स्वातंत्र्य भाव-वर्चस्व बोध से भरा?

किसने?
हाँ किसने?
सरयू से लेकर सागर तक
पीड़ित जन मानस को
अहोरात्र चलकर
अवधूत भाव से चेता है?
किसने?
हाँ किसने?
मित्रो!
सीतामाता
भले ही राम की पत्नी हों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी की वधू
किसी की दुहिता हों
पर
हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक हैं—

रावण अशोकवन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता।

औ
राघव!
ये लाघव
अब होंगे न पराजित
किसी शक्ति से।

हम साधारण जन
युद्धप्रियी थे कभी नहीं
और न लंकायुद्ध लड़ेंगे
युद्धभाव से।
महाराज!
साम्राज्यवृत्ति के द्वारा
हम साधारण जन
अर्धसभ्य कर दिये गये।
हमने राक्षस रथ खींचे
दासभाव से।
बदले में
नर नहीं
वानर पद प्राप्त किये।
लंका में हम
भोज्य पदार्थों से बिकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरम सलाखों से
प्रत्येक पृथुज्जन देह लिखी है—

ये गुलाम हैं

इनका केवल यही नाम है।

हे रघुकुल तिलक!
हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश
रावण
या किसी अन्य का
उपनिवेश हो
यह स्वीकार नहीं अब
किसी मूल्य पर।

राम

हनुमत वीर!
युद्ध की अनिवार्यता को जानता हूँ
अपने से अधिक
इन पृथुज्जन को मानता भी हूँ
किन्तु
इस युद्ध के उपरान्त
होगी शान्ति
इसका तो नहीं विश्वास।
बन्धु!
यह युद्ध
सम्भव है अनागत युद्ध का कारण बने।
तब
अनेकों लंका
अनेकों रावणों का जन्म हो।
सम्भव है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लौटने के बाद ही
आक्रमणकारी
नयी सैनिक, उपनिवेशी योजनाएँ ले
इसी सेतुबन्ध से लौटें।

फिर संघर्ष
फिर संहार
इस ऐतिहासिक विषमता का
कौनसा प्रतिकार?
इस चक्र का कोई नहीं है अन्त
हनुमत वीर!
कोई नहीं है अन्त।

लक्ष्मण

प्रभु! क्षमा करें मेरे इस भाव को।

क्या इस प्रश्न के
हम ही अन्तिम निर्णायक हैं?
क्या हम ही अन्तिम मानवता हैं?

राम

नहीं हैं।

किन्तु युद्ध, दायित्व है।
किसी भी पीढ़ी के लिए दायित्व है
आवेश नहीं।

कैसी विषमता है।
हम सब
यहाँ
टूटे हुए व्यक्तित्व ले
अपनी समस्याएँ लिये एकत्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोध्या से निष्कसित मैं,
ये सुग्रीव
ये सामन्त
दक्षिण के लिए कटिबद्ध हैं।
अपमानित विभीषण चाहते हैं न्याय
उस सम्राट से
जो दस दिशा की नियति है।
ये हनुमान
साधारण जनों के दुःख औ अधिकार के प्रतिरूप।
मित्रगण!
कितनी नियोजित यह विषमता है।
सम्भव है
इस युद्ध में
हम सभी अपने स्वत्व को पा जाएँ।
किन्तु
उसकी चिर सुरक्षा
शान्ति

क्या हो?
और कैसे हो?

युद्ध
ऐतिहासिक फेन है किन्तु
उसके बाद?

हनुमान

क्षमा करें महाराज!
हम केवल घटना हैं
इतिहास नहीं।
सम्भव है
हमारे कारण ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनागत युद्धों की नींव पड़े
पर
इस डर से
क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दें?
नहीं
नहीं महाराज!
समय ही करेगा प्रतिकार
हर बार
अनुचित का।

सुग्रीव

महाराज!
निश्चिन्त रहें
यह युद्ध न्याय का है
क्योंकि
रावण ने
दक्षिण प्रदेश
उसके सामन्तों को
अधिकृत कर
बो दिये युद्ध के बीज
बहुत पहले ही।
हमारी जीत प्रथम होगी
जब किसी चक्रवर्ती को हरा सकेंगे।

सीता
जो कि हमारी माता हैं
उन्हें आपको सौंप
उऋण होंगे दक्षिण के नर-नारी।

महाराज!
युद्ध केवल फेन ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय है
जिससे इतिहास बना करता है।

लक्ष्मण

बन्धु!
विभीषण का क्या है मन्तव्य
यह जानना आवश्यक है।

राम

विभीषण!
युवराज
भावी सम्राट लंका के
हमारे मित्र!
तुम्हारा मौन सप्रयोजन है।
इस युद्ध के सम्बन्ध में
क्या मन्त्रणा है?

विभीषण

युद्ध
मन्त्रणा नहीं
एक दर्शन है राम!
अन्तिम मार्ग है
स्वत्व औ अधिकार अर्जन का।
किसी-किसी युग में
युद्ध ही
अन्तिम सत्य, दर्शन हुआ करता मित्र!
शेष
शोभा-वंचना।

सम्भव है
हम भी
ऐसे ही दुर्भाग्यपूर्ण सौभाग्यी युग के चिन्तक हों।
लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी टूटे हुए व्यक्तित्व की जो बात
कही थी आपने
सार्थक लगी।
द्वन्द्व
मुझमें भी कहीं पर है,
मुझे भी सालता है
स्वयं का संघर्ष,
मैं भी विभाजित हूँ,
मैं भी ऐतिहासिक भग्न हूँ
तभी तो आपकी ही भाँति ऽ
राम!
मुझमें भी अनिर्णय है।

मैं भी युद्ध की अनिवार्यता को मानता हूँ
किन्तु
अपने राष्ट्र के प्रति
क्या यही कर्तव्य है मेरा
उस पर हो रहे
इस आक्रमण में साथ दूँ?

कल जब युद्ध होगा
और लंका की पराजय भी सुनिश्चित है
तब
क्या विश्वास
ऽ ये आपके सामन्तगण ही
वे सब नहीं दुहराएँ
जो रावण ने किया।
राम!
इस युद्ध के उपरान्त
मेरे सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे राष्ट्र का
अनागत कल
अनावृत धू-धू जल रहा है।

वो ऽऽ
वहाँ
मेरे राष्ट्र की टूटी हुई
अपमानित पताकाएँ
भग्न अंगों की शोभायात्रा सी जा रही हैं।
जले औ खण्डित भवन
जिह्वाहीन भिखमंगे सरीखे
हाथ फैलाये खड़े हैं।
राजपथ
बेहोश, ऐंठी देह से नंगे पड़े हैं।
टूटे हुए रथचक्र में
अन्धे अश्व हँसते जा रहे हैं।
मेरी स्वर्ण लंका
पागल-कोढ़ियों सी
वह वहाँ
उस सिन्धु तट बैठी हुई
हड्डी-बाँसुरी छेड़े हुए है।
मेरे राष्ट्र
मेरे देश की जयभेरियाँ
गूँगी हो गयी हैं।
बहरे लोग हैं
हिचकियों के साथ मदिरा गा रहे हैं
मेरा राष्ट्र
इस युद्ध में
रौंध डाला जाएगा कल राम!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक क्षण
मेरा सोचना
यहीं पर टूट जाता है।
अपने देश की इस दुर्दशा का
कौन कारण है?

मैं
या सम्राट रावण?
सम्राट ने ही
न्याय की हर बात अस्वीकार की।
दूत अपमानित किये।
स्वयं मन्दोदरी ने
आग्रह किया—
फेर दो सीता
अग्नि है
छूना मत इसे
पर
सम्राट केवल हँस दिये।
जब-जब उपनिवेशों ने किया
विद्रोह
उनके लोग, संस्कृतियों औ इतिहास तक को
भस्म कर डाला।
जब मैंने कहा
मुझे निष्कासित किया।

राम!
मेरी आत्मा में भी यही है द्वन्द्व
क्या युद्ध
नियति है
हमारे सारे शुभाशुभ कर्म की?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल
जब हम नहीं केवल
वृद्ध, ठंडी शिला सा
इतिहास होगा।
जब हमारे तर्क तक मर जाएँगे
तब
हमें क्या कहकर पुकारा जाएगा?
राष्ट्र संकट के समय
मैं आक्रमण के साथ था
राज्य पाने के लिए।

इतिहास के इतने बड़े मिथ्यात्व को
झुठलाने के लिए
मेरा द्वन्द्व
संशय
तर्क
राघव!
उस वृद्ध, ठंडी शिला से इतिहास के सम्मुख
कुछ भी नहीं होगा।
उसकी मौसममुखी चट्टान पर
केवल लांछना की ठठरियाँ,
राष्ट्रघाती रूप में
केवल लांछना की ठठरियाँ
विभीषण को वहन करना
अन्तिम सूर्य तक।
उस वृद्ध, ठंडी शिला पर
गिद्धवत बैठा हुआ
बहुमत

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय है, सत्य है
ऐतिहासिक नियति है
हर व्यक्ति की।

इसलिए टूटे हुए व्यक्तित्व की वह बात
हर मनीषा को झकझोरती है
राम!

ठीक है
शेष लोगों से
हमें यह तोड़ देती है।
ऐसा नितान्ती एकत्व
दुःख देता है
स्वयं को
शेष को भी।
पर यह द्वन्द्व
निबद्ध है व्यक्तित्व से।
अन्धे सैन्धवों वाला
संशय
स्वर्ण का रथ है।
पाशित विवश हम
आरूढ़,
कशाघातित अश्व
अनामी यात्रा—

राघव!
हर प्रज्ञावान, शंकाशील
इसी यात्रा पर चला है

यदि यह यात्रा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करोगे मित्र!
यहाँ सब अनिवार्यता है।
युद्ध भी।
जब हमारा नियन्त्रण
अपने जन्म औ अवसान पर ही नहीं
तब
स्वत्व औ व्यक्तित्व के ये प्रश्न
शंका और संशय
थोथे
या कि हास्यास्पद नहीं हैं?
स्वयं को छलना नहीं है राम?
तभी तो मैंने कहा था
युद्ध भी दर्शन है
अन्तिम मार्ग है
स्वत्व औ अधिकार अर्जन का।
राघव!
या तो हम काम किया करते हैं
लेकिन
जब काम नहीं होता
तो संशय किया करते हैं
काम, सामूहिक अन्धता है, और
संशय, वैयक्तिक अन्धता है।

मित्र!
इस अन्धता से कोई भी मुक्ति नहीं।

अच्छा हो
इतने संशय' परान्त
कोई भी काम किया जाए
चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रति वह युद्ध ही हो।
यह काम ही होगा
संशय या तर्क नहीं।

लक्ष्मण

युवराज के तर्कों से सहमत नहीं
फिर भी
पार्थिव पूजन' परान्त
बन्धु! कल अभियान हो।

सुग्रीव

कल विहान ही
चलने की आज्ञा हो।

हनुमान

महाराज!
अब आज्ञा दें अभियान की।

राम

परिषद की इच्छा।

क्रमशः अन्य उठकर चले जाते हैं। केवल अपनी चौकी पर राम चिन्तामग्र बैठे रहते हैं।

●

चतुर्थ सर्ग : सन्दिग्ध मन का संकल्प और सवेरा

प्रत्यूष वेला।

शिविर के गवाक्ष से उदयाभा स्पष्ट है।

युद्धवेश में राम गवाक्ष की चौखट पर कुहनी टिकाये चिन्तित। बाहर, सुदूर तक तुमुल-कोलाहल, हवा में लहराते विभिन्न सैन्यदलों के झण्डे, घण्टारव आदि स्पष्ट हैं। अभियान की तैयारी हो रही है। लक्ष्मण, पार्थिव-पूजन के प्रबन्ध में अन्य सामन्तों के साथ व्यस्त हैं।

राम, लक्ष्मण की प्रतीक्षा में है, क्योंकि सूर्योदय के समय ही समुद्र को साक्षी रख पार्थिव पूजन होना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम

मैंने अपने को सौंप दिया
ज्वारों को
विवश धरती सा सौंप दिया।
अपने को सौंप दिया।

ओ मेरे आधे व्यक्तित्व के
अधूरे मन!
इन गूँगे संशयों
अधूरी शंकाओं
बहरे प्रश्नों का क्या होगा?
मेरी अस्वीकृता स्वीकृति का क्या होगा?
क्या होगा?
मैंने अपने आधे को
सर्वस्व समझकर सौंप दिया
ज्वारों को।
ओ अर्धव्यक्ति के अर्धसत्य!
युद्ध, नियति है
प्रश्न नहीं।
मैंने संकल्पजलों वत
सिरा दिया है प्रश्नों को ऽ
इन अपारमित ज्वारों में।

लो स्वीकारो
मेरे अन्तर्विरोध! लो स्वीकारो
मेरी अस्वीकृता स्वीकृति का यह झुका माथ
लो स्वीकारो।

मैंने अपने को
यह कहकर सौंप दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही विरोध को।
द्वीप की विवशता सा
अपारमित ज्वारों को सौंप दिया।
यह शंकातट सौंप दिया
सौंप दिया।

अब मैं निर्णय हूँ
सबका
अपना नहीं।

कैसी विडम्बना—

मेरा चिन्तन खड्ग करेगा
और आचरण युद्ध बनेगा।
क्योंकि मैं निर्णय हूँ
हो चुका हुआ अब निर्णय हूँ
ऽ व्यक्ति नहीं।

इतिहास
व्यक्ति को व्यक्ति नहीं
शस्त्र मानता है
अपने अन्धे उद्देश्य पूर्ति में।
उसकी परिभाषा में वह
निर्मित्त है
शक्ति नहीं।
युग के हाथों में
केवल बाधित है
होने के लिए
बनने के लिए नहीं।
ओ मेरे गूँगे संशयो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधूरी शंकाओ!
बहरे प्रश्नो!
इन इतिहासी पक्षाघाती वायुओं को
यह कहकर स्वीकारा

अब मैं निर्णय हूँ
सबका
अपना नहीं।

मुझमें
कल का युद्ध
आज ही सम्भावित हो चुका।
मुझमें—
जो शान्ति चाहता था,
तापसवेशी मुझमें
कल का युद्ध
आज ही सम्भावित हो चुका।

मध्यरात्रि के इस निर्णय से
जाने कितने सूर्य
आज ही
कल के लिए मर चुके।
जाने कितने अनागतों दिवसों की
घायल हँसियाँ
रोती रहीं रात भर।
एकत्रित इस जनसमूह के सीने में
इतिहास
खड्ग सा घोंप दिया मैंने ऽ
मध्यरात्रि के इस निर्णय ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझमें कल का युद्ध
आज ही संभावित हो चुका।
रक्त सने हो गये आज ही
हाथ-माथ ये।

अब मैं निर्णय हूँ
सबका
अपना नहीं।

अभी पार्थिव-पूजन' परान्त
सेनाएँ, रथ, घोड़े, हाथी सब
युद्धयात्रा पर चल देंगे।

लेकिन
क्या कल
उसके बाद के कल
उसके बाद के भी अनागत कलों तक
क्या कोई साक्षी यहाँ छूट पाएगी?
उन मुझे जैसे
इतिहास पक्षाघाती आने वालों के लिए कि
किसी ने
कभी विगत में भी
प्रश्न किये थे,
शंकाएँ की थीं,
पिनाकजयी ने
संशय की प्रत्यंचा को
असफल साधा था
औ उठाकर रख दिया था अपना
व्यक्ति-धनुष
यह कह कर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मैं निर्णय हूँ
सबका
अपना नहीं।

मुझसे मत प्रश्न करो
ओ मेरे विवेक !
मुझसे मत प्रश्न करो।

न आकाश
न उसके देवता और
न देवताओं के देवता
किसी के पास
हाँ ऽ किसी के पास
प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं।
ये सिद्धियाँ
अप्सरियाँ
देवलोक
यश-लक्ष्मी
उत्तर नहीं प्रश्नों के
केवल प्रलोभन हैं।
अपना विवेक सौंप देने के लिए
केवल प्रलोभन है।

इसलिए मत प्रश्न करो
ओ मेरे विवेक!
मुझसे ही नहीं
किसी से भी मत प्रश्न करो।

आत्महनन से कहीं अच्छा है
ज्वारों को भेदते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड्ग से पाताल चीर दें।
यदि एकान्त-सत्य को समर्पित कर सकना
सम्भव नहीं तो
मेरे विवेक!
अच्छा है
दिशाघाती प्रलाप बन
शिलाओं के अँधेरों में
इतना बजते चले जाएँ
बजते चले जाएँ
जिसे सुन भूकम्प भी बहरे हो जाएँ।
लेकिन
मुझसे मत प्रश्न करो।

मध्यरात्रि के इस निर्णय ने
ज्वालामुखियों को जगा दिया।
मणि खोये साँप सा
समय—
कवचित
युद्ध के लिए ललकार रहा
भीतर
अपने ही भीतर
सब के भीतर ललकार रहा।
प्रश्नों की बेला अब नहीं रही
युद्ध की वास्तविकता
सूर्योदय ला रहा।
कल के सूर्यास्त को
हाय
कल तक का शुभ सौंप चुका।

अब केवल
आक्षितिज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना की पगध्वनियाँ
रणनिनाद भेरियाँ
युन्द्धघोष, झंडियाँ।
युद्ध करो
ओ मेरे विवेक!
मुझसे मत प्रश्न करो
प्रश्नों की बेला अब नहीं रही
कर्म करो।

क्या हो
क्या न हो की
सीमाएँ शेष हुईं।
अब मैं निर्णय हूँ
जिसे होना है
खड्ग और बाणों के द्वारा
जिसे होना है।
विचारों में जो हो चुका
उसे अब भुजाओं से होना है।
ओ मेरे विवेक!
अब यह प्रश्न ही नहीं रहा कि
युद्ध के बाद होगी
शान्ति।
जब कि सम्भव है
युद्ध ही युद्ध का उत्तर हो।
या यह भी सम्भव है कि
शान्ति
युद्ध के सत्य की एक चेष्टा हो।

ओ मेरे विवेक?
मुझसे मत प्रश्न करो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशय की बेला अब नहीं रही।
अन्तरीप जल में
सूर्योदय साक्षी है
संशय की बेला अब नहीं रही।

अब मैं केवल
प्रतीक्षा हूँ
कवचित कर्म हूँ
प्रतिश्रुत युद्ध हूँ।
निर्णय हूँ सबका
सबके लिए।
केवल अपने ही लिए
सम्भवतः नहीं।
नहीं।

गवाक्ष से कुछ सामन्तों के साथ लक्ष्मण पार्थिव-पूजा के लिए बुलाने के हेतु आते हुए दिखते हैं।

विराट सूर्योदय सम्पन्न हो रहा होता है। राम अत्यन्त एकान्त सम्पूर्ण भाव से सूर्यागम देख रहे होते हैं। उनके प्रत्यंच मुख पर तनाव कम हो गया है। एक मौन शान्ति उनके मुख पर दिखने लगती है, जैसे फूलों वाला एक नील दिन हो।

शान्त हो।
ओ सूर्यतपी शिला! शान्त हो।
तुम स्वयं सूर्य नहीं।

तुम केवल उपजीव्या सूर्य की।
तुम्हारा वैश्वानर
घाम नहीं।
तुम्हारे अग्निवृक्ष में
पृथिवी के लिए ऽ
कोई दिन अंकुरित नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई धूप भी विस्तरित नहीं।
सूर्य गया
धूप गयी
ऊष्ण रेतस भी नहीं रहा।
तुम्हारे अन्तस उतरे
दिन भर के सूर्य ने
तुम्हारा पाथरत्व नहीं स्वीकारा।

तेजस वह लौट गया
तुम क्रमशः फिर शिला हो गयीं।

शान्त हो।
ओ सूर्यतपी मेरी शिला! शान्त हो।
सूर्य कोई शिला नहीं
तपस्या है
अग्नि की।

अनन्त सूर्यों को
एक सम्भावना की तरह
घटित हो जाने दो
अपने पाथरत्व में।
सम्भव है
ओ शिला!
वह घटना ही सूर्यत्व दे जाए।

ओ मेरी अपारमिता!
अपने पाथर को आकाश करो
वही सूर्योदय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही ऋतम्भरा है
वैश्वानर है।

शान्त हो।
ओ सूर्यतपी मेरी शिला! शान्त हो।
शान्त हो
तुम स्वयं सूर्य नहीं थीं।

तब तक लक्ष्मण आदि का प्रवेश। शिविर में तथा बाहर सुदूर तक सूर्य के जयकार सा दिन प्रस्फुटित हो उठा है। राम अपने भीतर भी एक सूर्यागम अनुभव करते हैं।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्रस्थान

[रचनाकाल : १९६३]

- यात्रा पर्व
- स्वाहा पर्व
- स्वर्ग पर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री धर्मवीर भारती
को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा पर्व—१

हिम, केवल हिम—
अपने शिव:रूप में
हिम ही हिम अब!
रंग-गंध सब परित्याग कर
भोजपत्रवत हिमाच्छादित
वनस्पति से हीन
धरित्री—
स्वयं तपस्या।
पता नहीं
किस इतिहास-प्रतीक्षा में
यहाँ शताब्दियाँ भी लेटी हैं
हिम थुल्मों में।
शिव की गौर-प्रलम्ब भुजाओं सी
पर्वत-मालाएँ
नभ के नील पटल पर
पृथिवी-सूक्त लिख रहीं।
नीलमवर्णी नभ के इस ब्रह्माण्ड-सिन्धु में
हिम का राशिभूत
यह ज्वार
शिखर, प्रतिशिखर
गगनाकुल।

याक सरीखे
धर्मवृषभ इस हिम प्रदेश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं कहीं
कहते हैं हंस-वाणियाँ सुन पड़ती हैं,
यहीं कहीं तो धूप-यान में
सूर्य-प्रियाएँ मानस-जल पीने आती हैं।
कानों में बजती इन शीत हवाओं में
क्यों लगता
जैसे कोई किसी कन्दरा में बैठा ऽ
हिमालय-धर्मग्रंथ का पाठ कर रहा।

हिम, केवल हिम—
केवल चलना
इस कठोर, ठंढी तापस प्रशान्तता पर
केवल चलना ऊर्ध्व
ऊर्ध्वतम ही है चलना
जैसे पृथिवी चलकर गौरीशंकर बनती!
छूट गये पीछे
कस्तूरी मृगवाले वे
मधु-माधव से उत्सव-जंगल,
ग्रीष्म तपे
तँबियाये झरे पात की
वे वनानियाँ,
गिरे चीड़फूलों से लदी भूमि
औ' औषधियों के वल्कल पहने
परम हितैषी वृक्ष
सभी कुछ छूट गये।
नाना वर्ण-गन्ध के फूलों वाली
उपत्यकाएँ—
देव-अप्सराओं के परिधान सरीखी।
रंग-बिरंगे डैनों वाले
वे पाखीदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साँझ का देवदार-वन वाला उनका
वह आकुल आरण्यक-कूजन,
जैसे आश्रम-कन्याओं की गोपन बातें।

कैसे अन्धकार उतरा करता था
वन-प्रान्तर में!
प्रत्येक पेड़ से
कुहरे जैसा आलिंगित हो
अन्धकार तब भर उठता था।
पर इस सबसे असम्पृक्त रहता था
केवल शब्द, नदी का
और हवा का।
उस उन्मुक्त हवा में
चीड़ों के वन
झरनों से कलकल करते,
जैसे अभिसार-प्रिया उन्मुक्त केशिनी का चीनांशुक
चीड़ों से
हँस-हँस रस की कथा कह रहा।

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

चीड़फूल सा कैसा सूर्योदय होता था।
प्रत्येक मोड़ पर
दक्षपुत्रियों सी मिलने वाली वे उद्दाम
किन्तु संकोची नदियाँ,
चट्टानों पर लहर-फनों का
धुला-धुला सा वह कोलाहल;
हर क्षण
घाटी या कि नदी में
गिर सकने वाली वे
पर्वत थामे चली जा रहीं
पगवाटें भी छूट गयीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब छूट गयीं—
जैसे सांसारिकताएँ थीं ये भी।

वन, दुर्दम्य भले ही हों
पर मानुष-गन्धी भी होते हैं।
कैसा आश्वासित कर जाता था
कृष्णा कपिलाओं की घण्टी का स्वर,
कहीं किसी बस्ती का वह
झीना-पतला सा धुआँ मात्र
कौटुम्बिकता का सुख देता।
दावानल में
जलते जंगल के पेड़ों का वह कराहना
मध्यरात्रि के सन्नाटे में कैसा लगता—
जैसे युद्धक्षेत्र में दुर्योधन अब भी कराहता!
पत्थर के प्रपात सा
टूट-टूट कर गिरना
वह कच्ची कगार का,
जैसे युद्धक्षेत्र में तेज हवाएँ
नरमुण्डों को टकरा-टकरा बजा रही हों।

छूट गयीं औषधिगन्धा
सत्कारप्रिया विनयी वनानियाँ,
अब तो वल्कल-वस्त्रों सी उतर रही
नीचे की ओर
वनस्पतियों वाली धरती।
यहाँ-वहाँ दो चार शेष
हिम-भार लदे
ये अन्तिम भोजपत्र
संन्यासी यात्रिक सा
जिनकी यात्राएँ यहीं शेष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकट आ रहीं
हिम की आदिम, दुस्तर
महाभित्तियाँ—
जिन पर मछली
जमी हुई हिम के अज्ञात चित्र
औ' लिपिविहीन
श्वेताक्षर वाले शिलालेख,
जाने किस पुराकाल की
त्रासद-गाथा करते अंकित।
यह त्रिपुण्ड सी खिंची
हिमालय के ललाट पर
उत्तर दिशि
स्वीकार जिसे केवल निर्माल्य
व्यक्ति का!
चरैवेति!!
धर्मराज! इस स्वर्गारोहण के पथ पर
चरैवेति!!!

हिम, केवल हिम—
ओ यात्रा के चरैवेति !
अभी और कितनी बाकी हैं
पंच पाण्डवों के ललाट में परिक्रमाएँ?
पूरी पृथ्वी-प्रदक्षिणा करवा कर भी
किस ध्रुव जैसे निर्जन प्रदेश में ले आयीं तुम?
देवदारु औ भोजपत्र ही नहीं
जहाँ ब्राह्मी भी अपनी वनस्पति लाने में डरती।
ओ चरैवेति!
इस ठण्डे गोरे अन्धकार में
तुम क्यों यात्राओं का आमंत्रण देतीं?
एकाकी कागों की छायाएँ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूट गयीं पीछे, नीचे को।
सम्मुख हैं
सोये हिमनद, विकराल—
लील जाने को आकुल।

हिम, केवल हिम—
पौराणिक, विराट हिम-ऐकान्तिकता
हिमांधियों के रौरव-चर्म लपेटे
अक्षत आदिमता में
इतिहासों पर अट्टहास करती
बघनख सी चींथ रही
सब दिशा-काल को।
देवाधिदेव हिम-अभ्यंकर के जटाजूट से
जन्म ले रहीं गंगाएँ
हिमनद रूपों में।
इन्द्रधनुष के तोरण द्वारों से होकर
झरते प्रपात
ऽ अनाविल स्तोत्र पढ़ रहे।
संन्यासी के मन जैसा
कैसा प्रदेश—
यह निर्विकार, सम्बन्धहीन
है पन्थहीन
पदचिह्न हीन
जैसे हिमभाषा में लिखित
उपनिषद्।

केवल यहाँ अपर्णा पार्वती ही जाग्रत है
ऽ चन्द्रचूड़ इस हिम-शिवाङ्क में।
मनुज यहाँ वर्जित
क्योंकि वनस्पति तक ही हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सीमाएँ।
किन्नर-गन्धर्वों और यक्ष-देव के सोपानों से ही
जाना होता ऊर्ध्वलोक में।
सौंप दिये रथ मैदानों को
छोड़ दिये पथ वनानियों में,
अब केवल संकल्प छोड़ कर
पाण्डवदल के पास
नहीं कुछ अन्य सम्पदा
मृत्युलोक की।

हिम, केवल हिम—
मृगवर्णाएँ धूप
देवकन्याओं सी हिम फिसल रही हैं,
चाँदनियों की पारदर्शिका मलमल में
लावण्यमयी एकान्त द्रोणियाँ
अंग चुरातीं।
एकाकी उपत्यकाओं का
वह निर्मम सूनापन
वशीकरण के मन्त्र सरीखा जादू करता।
चलो
चलो यहाँ से धर्मराज!
यह पड़ाव है नहीं
तुम्हारी संकल्पी-यात्रा का।
यह देखो—
ये उदार
देवतात्मा जैसे खड़े हिम-शिखर
देवसभा चरितार्थ कर रहे।
तापसमन वाले गायत्रिन
इस कैलास शिखर पर
रखा हुआ नक्षत्र-जटित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह धर्मचक्र—
नासदीय सूक्त सा।

धर्मचक्र यह—
झरते जिससे अहोरात्र
निशि-पल-घट-घड़ियाँ
युद्धों की दुर्दम्य तुमुलता,
इतिहासों के रक्त-स्नात
उत्थान-पतन,
जयघोषों-चीत्कारों के हर्ष-शोक,
ऋतुओं की लालित्य-रौद्रता,
सागर की चान्द्रिक आकुलता।
सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र अपर ब्रह्माण्ड
सभी चक्रायित
प्रति-चक्रायित इस कालचक्र में।
एक सनातन प्रश्न
यज्ञ की धूमाग्नी सा शाश्वत उठता—
है कौन नियन्ता
कार्य और कारण जिससे उद्‌भूत हो रहे?
जो अनन्त आकाशों में शायी है
वह कालपुरुष—
जो प्रणवरूप
धूमाग्नि पी रहा?
नक्षत्रों की पहन राशियाँ
अवधूत-भाव से
घटनाओं का बाघम्बर धारे
है घुमा रहा
कोटि नभगंगाओं की धुरियों पर
इस धर्मचक्र को?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेष-राशि जिसका ललाट
उस काल पुरुष का
वृष मुख-मण्डल,
कर्क हृदय है,
मिथुन राशि उसका वक्षस्थल,
सिंह उदर है,
पुरुष श्रेष्ठ की कटि
कन्या है,
मीन चरण धर
जो कि सन्तरित
स्वर्गंगाओं के अन्तिम प्रकाश के पार
अपर में।

प्रणव-पुरुष—
विकराल मकर-जघनों से मँथता
दिशा-काल की महाअरणियाँ,
जाग्रत होता जिससे
विद्यु-पुरुष—
वह वैश्वानर
जो धर्मचक्र को वहन कर रहा
धर्मवृषभ सा नन्दी बनकर।

हिम, केवल हिम—
आकाशों, नक्षत्रों के
अक्षांश और देशान्तर पर
इतिहास-वस्त्र है बुना जा रहा है
कालपुरुष का।
पहन जिसे
ये देव-दनुज
सुर-असुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी संस्कृतियाँ अवतरित हुईं
इस पृथ्वी ग्रह पर।
पर कौन जानता
अन्य ग्रहों-नक्षत्रों में भी
कौन-कौन सी संस्कृतियाँ अवतरित हुईं
या सम्भावित हैं!!
जीवन का यह वासुदेव
धूर्जटी-भाव से
स्वयं अजन्मा होकर भी
जो घटित हो रहा
आक्षण, प्रतिपल दिग्मण्डल में!
यह कैसी अनाश्रयी चिन्मयता है
जो विपरीत गुणात्मकता में
क्षण-क्षण पर अभिव्यक्त हो रही
लुप्त हो रही है।
हिम-आतपवाली इस भावसृष्टि में
विद्युत की कणादता लेकर
घटित हो रही
वैश्वानरता।

हिम, केवल हिम—
दसों दिशाओं के हाथों में
सूर्यगन्ध वाले दिन-चामर
नील पड़ गये
लौट आ गये मेघों के परिवार
ऽ अपने-अपने शैल-विवर में।
उत्सव की क्रमशः परिणति सा
दिशा-स्कन्ध पर
ऽसूर्यास्त हो रहा।
साथ चल रहा था जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छायाओं का सार्थ प्रलम्बित
जाने किन शिखरों से
अन्तिम यात्रा के हित
कालपक्षि सा
लीन हो गया अन्धकार में
शब्दहीन।
अब केवल हिम की
उजाड़, दुर्दम्य, पाथरी ऐकान्तिकता
जिस पर
पतली पिपीलिका-रेखा सा चलता
नतशिर बन्दी सा
पाण्डव दल!!

सबसे आगे हैं धर्मराज—
इस पाण्डवता के पुण्य
और करुणा-विवेक।
राजपाट, कुल-वंश, बन्धु-बान्धवता के प्रति
नहीं रही आसक्ति—
दूसरे विदुर!!
आग्रह की सीमा तक
धारे रहे स्वत्व में
आजीवन संकल्प
धर्म का।
पर यही युधिष्ठिर धर्मराज—
इस पाण्डवता के दुर्भाग्यों के
आदिस्त्रोत भी।
जिनकी हथेलियों से आती
अब भी द्यूत-गन्ध
औ अनासक्त चन्दनी-गन्ध भी
जैसे विदेह!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी असत्य का आश्रय लेना पड़ा
युद्ध में—
''आहत अश्वत्थामा...नर या कुंजर''
मूल्य और मानवी उदात्तताएँ
जब सार्वजनिक जीवन में
हो जाती हैं शेष
तभी होता है युद्ध
युद्ध का घोष।
युधिष्ठिर हों
या हों कृष्ण
युद्ध का एकमात्र है तर्क—
विजय के सम्मुख
मूल्यवानता का क्या है अर्थ??

युद्ध प्रताड़ित
अन्तर का वह सत्य—
अश्वमेध औ राजसूय यज्ञों से भी
जब शोध न पाये
तब पुनः दाँव पर लगा
स्वत्व—
वल्कल पहने निकल पड़े
वैश्वानर-पथ पर।
उसी धर्म का
जीर्ण-शीर्ण संकल्प-दण्ड
कँपते हाथों से टेक-टेक कर
वृद्ध युधिष्ठिर बढ़े जा रहे
सुधियों-स्मृतियों से आहत, वेष्टित।
सहज, मार्ग में प्राप्त
अयाचित मित्र सरीखा
श्वान साथ में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदयकाल की सूर्य-सौम्यता लिये
युधिष्ठिर के आगे है
केवल यात्रा—
जिसके निर्वेद
विशालाक्ष हिमनेत्रों में
महामृत्यु की गैरिक करुणा वाली
निगमागम अबाधता,
पर पीछे—
आगत दिन जैसी
खिंची आ रही श्लथ पाण्डवता।
युधिष्ठिर संज्ञावाला
ऽ सूर्यास्तकाल का
यह धार्मिक सूर्योदय—
स्वर्गारोहण के पथ पर सम्पन्न हो रहा।

आहत तन
अपमानित मन के भीम
सदा इस पाण्डवता की
वज्र सरीखी देह रहे हैं।
पर व्यर्थ गया
वह दुर्योधन की जंघा पर करना प्रहार
केवल ललाट पर लगा रहा
उस ओर अनैतिकता का
लांछन।
क्या हुआ दुःशासन के
हृदय-रक्त का पान?
हुआ मन शान्त?
नहीं—
आज भी गरल सरीखा
कण्ठ जल रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरह वर्षों का वनवास काल—
अपमान, दुःख औ घोर यातना।
दुर्योधन, दुःशासन के वे सारे छलबल
स्वयं भीम की गदाशक्ति
औ' शत गजबल!
सब व्यर्थ गये,
दुःस्वप्न सरीखे बीत गये
सब बीत गये।
शान्त न हो पायी—
विरोध की अग्नि
प्राप्त कर बन्धु-बान्धवों वाली—
समिधा।
युद्ध, युद्ध
प्रतिपग पर केवल युद्ध
और षड्यन्त्र, द्वन्द्व
वैर का वह दावानल
शिरा-उपशिराओं में
अब भी है सुलगा पड़ता।
युद्ध क्या ऐसे ही होते समाप्त??
जब शस्त्रों से ये
शेष कर दिये जाते हैं
युद्धस्थल में—
तब अन्तस्तल में युद्ध
ऽ अशेष हो
जीवन भर चलते रहते हैं।

उस पर राज्य प्राप्ति का अनुभव—
जल को मुट्ठी से कसने के जैसा
वीर्यहीन, अपदार्थ रहा।
केवल भीगे हाथों की प्रतीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीम के अन्तर्मन में
धुआँ दे रही।
वह राज्यारोहण था
या था शवसाधन
कापालिक का?
कैसी उजाड़ता
नगर-पुरों-महलों-मेहराबों
लोगों के मुख पर थी
लिखी हुई।
पाण्डवता की जयता के प्रति
कैसा ठण्डा स्वागत था।
उन शेष बचे लोगों की
त्रासद आँखों में—
जैसे प्रणम्य हो
वर्षा का स्वागत करते हों केलपत्र—
पर निर्विकार!!

जो न युद्ध में कभी पराजित
वही भीम—
जर्जर वल्कल औ फटी चर्मपादुका पहने
विकलांगों से पैर घिसटते
चले आ रहे
आदिम बर्बर मानव जैसे।
बार-बार पुरुषार्थ
गदा से होकर
कच्ची हिम में धँस-धँस पड़ता।
अस्त्र हाथ में होने पर भी—
बधिर विवशता के अनुभव से
अर्धदग्ध, आक्रान्त
भीम—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बी निःश्वास लग रहे,
जिसके शीर्ष बिन्दु पर खड़े
युधिष्ठिर,
और द्रौपदी
बलिपशु सी आबद्ध
घिसटती शेष भाग में।

देवदारु की देहयष्टि वाले
अर्जुन के थके स्कन्ध पर
ढीली प्रत्यंचा वाला
गाण्डीव—
ग्रीष्म की तपती विन्ध्य-शिलाओं पर
सूखे प्रपात का चित्र लिखित हो।
कहाँ गये दिव्यास्त्र?
अभय वरदान?
राज्यमद वाले मस्तक?
कैसी अनुत्सवी थी विजय
पराजय सर्वनाश सी

गाथा सुनते रहे नाश की
पर न प्राप्त हो सकी दृष्टि
साधारण सी भी।
अन्धापन वह
आत्मा का था,
सामूहिक अन्धेपन के थे
वे प्रतीक
तभी तो राज्यलक्ष्मी गान्धारी ने
स्वीकारा कृत्रिम
अन्धापन।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धे थे धृतराष्ट्र
साथ ही राजाओं के योग्य
कुटिल भी।
तभी तो बैर, प्रेम, षड्यन्त्र, क्षमा, परिताप
या कि काषाय—
सभी कुछ कुटिलपूर्ण था।

किन्तु युधिष्ठिर तो थे
प्रज्ञाचक्षु ऽ
फिर भी विनाश??

विकल्पी मन वाले वे कर्मपंगु थे।

पर विदुर!!
सत्य की मूर्ति
निस्पृह तटस्थ—
क्यों मूक रहे
अन्याय-ज्वार
प्रतिबार
पाण्डवों-द्वार
जब टकराता था दुर्निवार,
क्यों नहीं किया प्रतिकार
विदुर ने?

कौन राज्य समझा करता है
शीलवान की सज्जन भाषा?
पितामह भीष्म
द्रोण-कृप जैसे वे आचार्य—
असत्य का पक्ष लिया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्थ! राज्य के कोप सदृश ही
राज्यकृपा भी
कैसे ही तेजस को
कर देती है भ्रष्ट
अन्त में नष्ट!!

दुर्योधन था कुटिल—
किन्तु वह कर्ण?

सूतपुत्र था।
कुन्ती से परित्यक्त
द्रौपदी से अपमानित
और सभी के द्वारा पंक्ति बहिष्कृत।
कर्ण न करता बैर
धनंजय! तब क्या करता?

पर कृष्ण!!

उस पूर्णपुरुष के लिए
सभी कुछ लीला था—
वह विराट का दर्शन
गीता का उपदेश-कथन
यमुना-पुलिनों का रस-नर्तन
या व्याध-बाण से अनुत्सवी वह आत्ममरण—
सब लीला था,
उस पार्थसारथी के निकट
सभी कुछ माया था।

और धनंजय स्वयं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी तो किया सभी पुरुषार्थ—
नीति, छल-बल सब
विजय प्राप्ति हित
दिग-दिगन्त
जिसके बाणों से पीड़ित मर्दित,
जिसके पराक्रमी चरणों पर था
त्रैलोक्य समर्पित,
वह कृष्णमित्र—
वह द्वितीय कर्ण
वह अप्रमेय
जो स्वयं धनुष ही—
घुटनों तक हिम में धँसते
पैर उठाये चले आ रहे
नतशिर करपात्री
भिक्षुक से।

हिमता ऊर्ध्वमुखी हो
रेंग रही नस-नस में से
चेतना ओर।
ठिठुर कर गले जा रहे अंग
आसन्न देह
विक्षुब्ध चेतना के क्षत-विक्षत पर्दे।
अपनी ही वाणी सुने हुए
जब बीत गये हों
कई मास
तब पांचजन्य, पणवानक-गोमुख के
वे शंखनाद
अब कहाँ?
कहाँ?? अब कहाँ???
सुनायी पड़ती अब तो केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमांधियों की—
यह कापालिक प्रलय रौद्रता।
चरैवेति यह, चरैवेति यह—
सव्यसाचि! है लक्ष्य कहाँ
इस आत्मदाह का?
प्रकम्पित हाथों के ये दण्ड
स्वयं अब बोझ लग रहे।
कितने दिन हो गये
पड़ गयीं ओठों पर
अनबोली भाषा की ये सर्द पपड़ियाँ
और दृष्टियाँ
हिम की इस दारुणी-दार्पणी चकाचौंध से
टकरा-टकरा नष्ट हो रहीं।
भालों के त्रिपुण्ड सी
कँप-कँप उठतीं
ये कैसी स्मृतियाँ हैं?
सुधियाँ हैं—
जो कि वस्त्र या हाथ नहीं
केवल मन थामे चली आ रहीं
अहोरात्र—
बिन पग के मेघों की यात्राओं सी।
हम तो वह सारा साम्राज्य
सम्पदा और जयाजय
प्रियजन, परिजन और प्रजाजन
बैर-राग सब कुछ को
परिव्राजक बन
काल-महाब्राह्मण को दे
संकल्प-जलों सा
छोड़ चले आये इस पथ पर,
किन्तु इस अवचेतन में से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी तो बीत न पाया।
षड्यन्त्रों, अपमानों का प्रतिशोध
निरन्तर युद्ध
और हत्या-चीत्कारें,
चक्रव्यूह में फँसा हुआ अभिमन्यु
उस अश्वत्थामा के द्वारा
वह वंश-नाश
उत्तरा का वह दारुण क्रन्दन—
सुलग रहा
धू-धू करता सारा का सारा जीवन
सुलग रहा है
इस अन्तर में।

जैसे कोई दर्पण का
मायावी राजभवन था—
जिसमें राजाओं, सेनापतियों औ' सुन्दरियों की
माणिक नीलम छायाएँ
दीपित थीं
प्रतिदीपित थीं
प्रति-प्रतिदीपित थीं।

इन दर्पण-मायाओं के
रंग-बिरंगे कोलाहल के बीच
निरन्तर दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि की
कूटनीतियाँ—
सर्प सरीखी रेंगा करतीं।
भरी सभा में
एकवस्त्र रजस्वला प्रिया का आर्तनाद
दर्पणों की माया में
दुहराता-तिहराता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब भी कानों को जला रहा।
उस दिन राजा ही नहीं
राज्य-स्वयं धृतराष्ट्र बन गया
सदा-सदा को।
पार्थ! शकुनि के पाँसों की आवाज
सुनायी पड़ती अब भी।
क्या बीता?
कुछ भी तो बीत नहीं पाया इस मन से
और अठारह दिन तक तब
शत-शत वीरों ने
शस्त्र-आयुधों की ज्वाला से
ध्वस्त कर दिया
वह मायावी राजभवन,
वे माणिक नीलम छायाएँ
शवों में परिणत होकर
नष्ट हो गयीं—
जैसे हमने अपने ही हाथों अपना शवदाह किया।
कैसा श्मशान तब जागा—
सब अनाथ विकलांग हो गये
वंश के वंश
धरा से नष्ट हो गये,
जयी-पराजित सभी अकिंचन।
कैसा था वह युद्ध—
भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा
दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण, जयद्रथ
धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच
सब स्वाहा हो गये
युद्ध के उदर ज्वाल में।
जागी उसके बाद
अघोरी कापालिकता—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवाओं का आर्तनाद
जीवितों का विषाद—
पर, फिर भी
अन्धे बने रहे धृतराष्ट्र—
भीम का नहीं
भीम की लौहमूर्ति का आलिंगन कर।

और एक दिन
युद्ध क्षेत्र में
राज्यलक्ष्मी गान्धारी का
वर्षों बाद
ऽ सायास अन्धता पर से पटल हटाना—
कैसी थी दुर्दान्त
अग्निमय, शस्त्र सरीखी दृष्टि;
क्योंकि वह माँ थी
जिसके सौ-सौ पुत्र
शवों में अंग-भंग होकर फैले थे
यहाँ-वहाँ
मांस के गिद्ध-ग्रास से।
एक बार फिर कृष्ण
बचाया धर्मराज को
गान्धारी की तेजोमय
उस कोपदृष्टि में भस्मसात हो जाने से।
कैसी कृष्ण-कृपा—
झुलसी अँगुलियों के माध्यम से
कौरव-लक्ष्मी
तब लीन हुई इस पाण्डु-पुत्र में—
जैसे चन्दन की गन्ध प्राप्त हो किसी वृक्ष को।

स्मृतियाँ—
फिर प्रतिक्षण इनकी आवृतियाँ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी तो बीत नहीं पाता है पार्थ!
व्यक्ति के मन से।
जो कुछ भी अंकित या उत्कीर्णित होता
एक बार
तब कैसी ही करुणा, उदारता, क्षमा आदि का
महाज्वार
कुछ भी तो मेंट नहीं पाता
मन की निगूढ़
इन अन्ध गुफाओं से।

चलो,
कहीं भी चलो युधिष्ठिर!
देह चल रही हिम की तापसता में
और गल रहा मन
अग्नि के हेमकुण्ड में!!
आदर्श अनुज से
नकुल और सहदेव विनत हो
चले आ रहे उदासीन
ज्यों मौन-मिथुन छायाएँ हों
पाण्डवता की।

पर सबके पीछे चली आ रही
पाण्डवदल की सांसारिकता—
भार्या, प्रिया, सेविका
और पण्डिता
द्रुपदसुता
द्रौपदी—
सेविका धर्मराज की
भीमसेन की चतुर स्वामिनी
एकनिष्ठ वह पार्थप्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डवी—
जर्जरित वस्त्र
रक्त से लथपथ
चिरे कपोल
श्वास अवरुद्ध
घिसटती हिम पर
जैसे अग्निरेख सी।
और अगत्या
अन्तिम भोजपत्र को थाम
गिर पड़ी आहत
कृष्णा!!
घाटी में जो
अस्तकाल की अन्तिम लाली
शेष बची थी
सहसा डूब गयी वह दिशा पार
जैसे दुकूल था
और किसी ने
स्मरण सरीखा खींच लिया उसको हठात।
चौंके सुदूर में कहीं चीड़
ऽ स्तम्भित देवदार,
नन्दा और त्रिशूल शिखरों पर
लगा उतरने यमछाया सा
अन्धकार।

शुरू हो गया था
हिमपात—
द्रौपदी अर्धतन्द्र में
टिकी हुई थी भोजपत्र से
जैसे अपना वृक्ष खोजती कोई वल्लरी
वर्षा' परान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्तब्ध हवा में
हिम के ठण्डे फूल
चतुर्दिक बरस रहे थे।
डूब रही थी भोजपत्र के साथ
बरसते हिमफूलों की उज्ज्वलता में
नवागता वह
कृष्णावल्ली।
मीलों लम्बी
वह उजाड़, निर्मम सपाटता
हिम की—
शिखर, रपट, उपत्यका रचती
चिकनी बिछी हुई थी।
व्याघ्र सरीखे चौकन्ने
हिमनद
सतर्क हो रेंग रहे थे सन्नाटे में।
कृष्णा, झील सरीखी डूबी थी
अपने ही जल में।
कुछ विभ्रम में
अर्ध निमीलित लगी देखने—
सम्मुख की हल्की चढ़ान पर
चढ़ते चले गये थे
पतियों के पदचिह्न,
दूर, फिर हल्का-सा आभास
एक के बाद
एक का—
जैसे सम्मुख था विगत
जो कि था घटित
किन्तु घटने को था।

आँखों के सम्मुख तिर आया
चंचल जलचित्रों सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा जीवन—
इसीलिए क्या आयोजित था
महास्वयंवर??
कृष्ण उपस्थित होकर भी
अनुपस्थित क्यों रह गये?
क्यों नहीं किया मत्स्य का भेदन
पूर्णपुरुष ने?
आकाश-पक्षि सा दिखा
किन्तु देखते-देखते भी लीन हो गया

और वह दिव्यालंकारों से युक्त
कर्ण!!
क्यों आये
श्मशान की अग्नि सरीखे शापित
आयोजन में
जबकि सूतपुत्र थे?
ब्राह्मणवेशी होने पर भी
वरा पार्थ ने,
किन्तु भाग्य ने
पंच पाण्डवों का भार्यापद मुझको सौंपा।
सारा जीवन ही
दुर्भाग्यपूर्ण यात्रा सा लगता।
जिन जावक चरणों को
रक्त-अलक्तक होना था
वे रक्त-स्नात
भीषण हिमपात बीच
थे जमे जा रहे
वृक्ष-जड़ों से।
यह क्या हो गया?
कहाँ ले आयी यात्रा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धहीन इतना एकाकीपन
शिरा-उपशिरा दग्ध कर रही।
जिसके सिर पर
रत्नजटित सिंहासन की छत्र-छाँह थी
आज भोजपत्र हिम टपकाता एकान्त खड़ा है।

भरी सभा में
उस दिन—
कुल-कुटुम्ब, पाँचों पतियों के सम्मुख
नाम मात्र को परिधानित
मैं—
रजस्वला
विवस्त्रा की जाने को बाधित।
मुझको घसीट कर
बलिपशु सा लाया था
पामर दुःशासन—
'दासी' से करता सम्बोधित।
कौन नहीं था वहाँ ?
धृतराष्ट्र, भीष्म या द्रोण
नहीं किसने देखा?
उस दुर्योधन ने जंघा पर बलात बैठाया—
क्यों??
क्योंकि हार गये थे धर्मराज
सम्पूर्ण राज्य के साथ
स्वयं की भार्या भी।
खुल गये केश
जो फिर बँधे नहीं युद्धकाल तक।

हाहाकार कर उठा मन
अपने ही इस नारी तन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसको लांछित अपमानित करने को
जुटा हुआ था
वह कौरव-समाज।

इतना अपमान
व्यक्ति को वस्तु बनाया?
पण्य हो गयी
प्रियापदी कृष्णा
इस भरी सभा में ?
नहीं—
नहीं, अब कौरववंश नहीं रह सकता।
सम्भव होता—
तत्क्षण धरती को चीर
डुबा देती कौरव-पाण्डव की
कुल-कुटुम्बता!!

फिर स्मरण हुआ
वह कृष्ण
जिसे मैं कभी न कर पायी परिभाषित
उसे कौन-सा दे पायी सम्बन्ध
देह का
मन का,
या निश्छल ऐकान्तिक रागभाव का।
अनुपस्थित था
किन्तु उपस्थित हुआ,
लगा—
सुनकर आया अपनी कृष्णा की पुकार।
सोच नहीं पाती
यदि कृष्ण न होते
तो इस कृष्णा का क्या होता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होती वैजयन्ती
होती तुलसी ही
पर
क्यों हुई पृथक
मैं कृष्णा अपने भाव-कृष्ण से??

फिर तो वह लम्बा प्रवास
जंगलों-एकान्तों में मारे फिरना।
कई बार लगता
ये पाँचों
क्या सच ही ब्राह्मण हैं
जैसा कि स्वयंवर में देखा था?
क्यों नहीं जागता क्षात्रतेज?
आक्रोश??
या कि वह वीरोचित पुरुषार्थ!!!
कौरव जैसे कुटिलों से
कैसी वचन-श्रुति?
वह लाक्षागृह
पग-पग पर दुर्योधन के कुटिल दाँव
पर क्षण भर को भी
कभी न आया
'ब्राह्मण' धर्मराज को लेश क्रोध!!

ठिठुर रही थी देह
किन्तु मन
अग्नि बना था
पामर कीचक के स्मरण मात्र से।
धर्मराज थे साधु
चरण-सेवा के' कांक्षी,
भीम, वीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर छू न सके पत्नी की रागात्मकता,
नकुल और सहदेव
कृपा के पात्र
किन्तु
हाँ, पार्थ न होते
तो अपूर्ण ही रह जाती मैं—
तन-कदम्ब की पुष्पित ऋतु से
मन की इस आक्रोश क्षुधा से
जिसमें भस्म हो गये
कौरव-पाण्डव—
जैसे उस दिन
भरी सभा में भस्म हुई थी
रजस्वला कृष्णा
एकाकी।
फिर भी पार्थप्रिया के रहे
खुले के खुले केश।
कृष्णा की संज्ञा में
वही लालसा और पिपासा
घुटनों-हथेलियों के बल चलकर आयी,
इस निर्जन हिम-पथ पर
डाक दे रही—

'पार्थ!'
''कहाँ हो पार्थ!''

हिमाँधियों, हिमपाथ बीच
खो गयी प्रिया की यह पुकार।
द्रौपदी और वह भोजपत्र
हिमपाशित
थे आबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल पुकार—
केवल पुकार—
अकेली पाखी सी—
उस राशिभूत
हिम-ऐकान्तिकता पर उड़ती
ऽ आश्रय-आकुल वह पुकार
सूर्यास्तकाल सी दिशा भर रही—

'पार्थ! पार्थ!'
'तुम कहाँ पार्थ!!'

स्वाहा-पर्व—२

युधिष्ठिर: प्रिये! हिमपात के श्वेत भार से झुकी
पंख प्रलम्बी शाखाओं वाले
उस सुपर्ण भोजपत्र के नीचे
न रुको।

पार्थ
या किसी को पुकार कर क्या होगा?
ऊर्ध्वता पर पहुँच कर
सारी सामूहिकता
वैयक्तिकता में परिणत हो जाती है।
एक और भी ऊँचाई होती है कृष्णा !
जहाँ यह तन भी
वृक्षछाल सा उतार देना पड़ता है।
धूम्रवस्त्रों का परित्याग कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताम्रवर्णी अग्नि
जैसे आकाश में यज्ञ वहन करती है,
वैसे ही मन
सम्बन्धहीन, अबाध यात्रित हो
धर्म वहन करता है।
न पुकारो—
यात्रा
पुकार नहीं होती प्रिये!
और न ही पुकारते हुए
यात्राएँ की जाती हैं।
हिम में अभिषेकित हो रहे
उस संन्यासी सुपर्ण के नीचे बैठकर
कच्ची हिम में
उन नामों को लिखकर
अब क्या होगा?
व्यर्थ है
उन घटनाओं का स्मरण भी—
जो युद्धों
प्रतिहिंसाओं की ज्वाला में नष्ट हो गयीं।

अन्य किसी ग्रन्थि की अपेक्षा
अच्छा है
शिव-संकल्प-ग्रन्थि का पालते रहना।
प्रिये! यहाँ से अब यह हिमपथ
धर्मपथ में परिणत होता है।
हाथों के ये काष्ठ-दण्ड नहीं
बल्कि अन्तस का
संकल्प-दण्ड ही वहन कर सकता है।
मैं जानता हूँ
तुममें अब कोई अग्नि शेष नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहकता की ऊष्मा भी नहीं रह गयी है कृष्णा!
तुम्हारे व्यक्तित्व की ताम्रता को
क्षार बना कर
वह अग्नि
वे प्रतिहिंसाएँ
सब शेष हो चुकी हैं।
खुले केश वाला
तुम्हारा यह धातु-व्यक्तित्व
और कुछ नहीं
स्वत्वहीन, मात्र आच्छद है।
धर्म के इस उदार हिम-राज्य में
दिशाओं तक आकाश के अतिरिक्त
अन्य कोई आच्छद
स्वीकृत नहीं होता कृष्णा!
देखती नहीं—
यहाँ हिम
भोजपत्रों तक को
अपने ही से परिवेष्टित कर देता है।

घटनाएँ बीत कर
हमें कुण्ठित, वलयित कर जाती हैं
और हम
इन जले वलयों को ही
धातु-व्यक्तित्व की वह कठोरता समझ लेते हैं
जिससे साम्राज्य तक ढहाये जा सकते हैं
पर, नहीं प्रिये।
युद्धों, प्रतिहिंसाओं के दावानल में
न कृष्ण, न पार्थ
न तुम, न मैं
कोई भी सुरक्षित नहीं रह पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने इस आच्छद-मोह को छूकर देखो—
दीमक खाये
काष्ठ-भवन सा ढह जाएगा;
यह अब अक्षत नहीं रहा कृष्णा!
वह हीरक संसार
वे माणिक लोग
वे सुगन्धित लालसाएँ
सब समाप्त हो चुके हैं द्रौपदी!
स्मृतियों में
जलचित्रों में बारम्बार तैर आने वाला
यह संसार—
विगत का केवल भ्रम है,
सब शेष हो चुका है कृष्णा!
सब शेष!!

प्रभु के नील नेत्रों जैसा
यह सारंग आकाश
और योगियों के असंग मन जैसा
निर्वेद
प्रशान्त यह हिमालय—
ये तुम्हें कोई आमन्त्रण नहीं देते कृष्णा?
क्या आगत की
इस देवताओं वाली आश्वस्ति से
अधिक मोहक है
विगत की वह मानवी-पुकार
जिसकी स्मृतियाँ तक धुआँ दे रही हैं?
नहीं, नहीं कृष्णा!
हिम में अभिषेकित हो रहे
उस संन्यासी सुपर्ण के नीचे बैठ कर
कच्ची हिम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन नामों को लिखकर
अब क्या होगा?
व्यर्थ है
उन घटनाओं का स्मरण भी
जो युद्धों
प्रतिहिंसाओं की ज्वाला में नष्ट हो गयीं।

उठो प्रिये!
इससे पूर्व कि
तेज, सपाटे मारती हिमाँधियों में
ताजी, झरती हिम की
कोटि-कोटि
असंख्य श्वेत पत्तियों के नीचे
पतियों के ये पदचिह्न
सदा को दब जाएँ
और पति भी
किन्हीं अज्ञात घाटियों में उतर कर।
अपनी यात्राओं पर बढ़ जाएँ।

आओ कृष्णा!
कहीं—कुछ नहीं लौटा करता
न जल, न समय, न जीवन।
और फिर कहाँ??
उस संसार में
जिसका हम संकल्प छोड़ चुके,
उस संसार में
जो श्मशान हो चुका,
हत्याओं के दुर्गन्ध वाले
उस वैभव में
जिसे हम बासी वस्त्रों सा उतार चुके?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो प्रिये!
सुदूर में देखो—
कहीं कोई लौटता हुआ मार्ग है?
सम्भवतः कोई पगडण्डी भी नहीं।
सम्बन्ध, दिखायी देने का होता है कृष्णा!
देख सकती हो
तो देखो
अपने उस भग्न संसार को;
क्षितिज के पार
कभी देखना नहीं हो पाता प्रिये!
और इस अमानुषी अंधकार में
क्षितिज
हमारी आँखों के बहुत निकट आ चुका है।
कितने ही नीचे तक
यात्रा कर आओ
सब कुछ विलीन हो चुका है—

भोजपत्रों की आरण्यकता
देवदारुओं की शालीन पंक्तियाँ
चीड़ के वे सुरम्य वन;
ओषधियों वाली वनस्पति सम्पन्ना
वे माधवी वनानियाँ
तुम्हारी वेणी में
शोभित हो जाने को आकुल
वे आरक्त फूल
कहाँ हैं प्रिये?
स्वर्ण जल की झील जैसे
गेहुँओं के वे सोपानी खेत,
घास की अयालों में कंघी करती
वे एकान्त हवाएँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँह में अधकुचली घास दबाये
आहट लेते
चौकन्ने कस्तूरी मृग,
लालसाओं की भाँति
मैदान के लिए आकुल
पहाड़ निचुड़ती वे उद्दाम नदियाँ
और
और उसके बाद के
वे राजमार्ग
नगर प्राचीरें
दुर्ग-प्रासाद, प्रकोष्ठ
जलते मणिदीप
षड्यन्त्र, हत्या, चीत्कारें—
कृष्णा! कहाँ लौट जाने के लिए
यह खुले केशों वाला
मान किये बैठी हो?
अपने भीतर के इस खण्डित संसार
और उसकी भस्म-स्मृतियों को
सदा के लिए मूँद दो
और इस गुफा की ताली
यहीं-कहीं किसी अन्धकार में
अनासक्त समर्पित कर दो।
बह जाने दो कृष्णा!
किसी हिमनद में
स्मृतियों की इस भस्म-मंजूषा को
बह जाने दो
अपने व्यक्तित्व को
प्रतीतिहीन आकाश हो जाने दो कृष्णा!
मकड़ी की भाँति
इस मृत संसार को

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारम्बार अपने ही चारों ओर
बुनते रहने से क्या होगा?
यह वह भस्म नहीं कृष्णा!
जो कि हमारे ललाट पर
त्रिपुण्ड्र बन सके।
अभ्यंकर के इस
श्वेत के भी श्वेत
देवलोक में—
किसी का भी संसार स्वीकृत नहीं होता प्रिये!
जो वास्तविकता में नष्ट हो चुका
उसे स्मृतियों में भी नष्ट हो जाने दो
और निर्भय हो जाओ।

सारे वर्ण-गन्ध
जब मन पर से भी उतर जाते हैं
तब अन्तर के
देवतात्मा हिमालय की
श्वेत देवभूमि जाग्रत होती है कृष्णा!
निर्भय होना ही हिमालय होना है,
और
अनासक्ति ही स्वर्ग है,
हिमालय की आत्मा है।
उठो प्रिये।
इससे पूर्व कि
तेज, सपाटे मारती हिमाँधियों में
ताजी, झरती हिम की
कोटि-कोटि
असंख्य श्वेत पत्तियों के नीचे
पतियों के ये पदचिह्न
सदा को दब जाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पति भी
किन्हीं अज्ञात घाटियों में उतर कर
अपनी यात्राओं पर बढ़ जाएँ।

द्रौपदी: हिमांधियों के बीच
उड़ते वस्त्र की भाँति आती
तुम्हारी वाणी मैं सुन रही हूँ
धर्मराज!
मैं जानती हूँ कि
तर्क और मोह
सब व्यर्थ हो चुके हैं।
मैं तुम तक पहुँचना भी चाहती हूँ
पर महाराज!
हिम का यह ठण्ढा पाश
प्रतिक्षण
अपने जैसा ही मुझे पाषाण कर देने पर
कृत संकल्प है
व्यक्ति, वृक्ष इसी प्रकार बनता होगा महाराज!

व्रणों को हिम काटती जा रही है,
यह कैसी
तेज, धारदार
हिमानी शीतलता
देह को जैसे फाँक किये दे रही है।
लो
मैं अपने भीतर की
इस धधकती गुफा को
सदा के लिए मूँदकर
इसकी ताली
अन्धकार में फेंक रही हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनी?
तुमने उसकी आवाज सुनी महाराज!
सम्भवत: मैंने भी नहीं सुनी।
अन्य संकल्पों की भाँति
यह अन्तिम संकल्प भी
व्यर्थ गया कि
अपने अन्तर्व्यक्तित्व को
अपने में से निकाल कर फेंक दिया जाए।
कितना कठिन है
व्यक्तित्व के ये कवच-कुण्डल उतार कर
समय को दे देना।
हर कोई कर्ण नहीं हो पाता महाराज!
नहीं हो पाता।

मुझे इस प्रतिक्षण सिकुड़ती
कवच सी
निर्मम कठोर
हिम की जकड़ता से
मुक्त कराओ पार्थ!
एक दिन मत्स्य का भेदन कर
क्या तुम
इसी दिन के लिए मुझे लाये थे
कि प्रतिक्षण
तिल-तिल गलती हुई
इस हिम में समाती चली जाऊँ?
मेरी यह हिम-परीक्षा
तुम क्यों लेना चाहते हो?
सीता की अग्नि-परीक्षा से।
राम को ही क्या प्राप्त हुआ
जो तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कृष्णा की हिम-परीक्षा ले रहे हो ?
पार्थ!
प्रत्येक ऐसी परीक्षा
पत्नी के प्रति अविश्वास ही है,
और ऐसी परीक्षा के बाद
नारी
पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है

तुम भीष्म के लिए
पाताल का भेदन कर सकते थे
पर प्रिया का यह हिमपाश
नहीं बेध सकते?
यज्ञाश्व की रक्षा में
समस्त संसार को तुम
अपने गाण्डीव से चुनौती दे सकते थे
पर अपनी इस आर्तप्रिया का
यह हिमपाश नहीं बेध सकते पार्थ ?
मेरा नारीत्व
मेरा मातृत्व
सब व्यर्थ गया युधिष्ठिर!
भीम! अर्जुन!
माद्रीपुत्रों! सब व्यर्थ गया।
अब मेरे और तुम्हारे बीच
हिम का यह अभेद्य
धारदार ठण्ढापन
सहयात्रा के सूत्र काट रहा है।

आज के पूर्व तक
नहीं जानती थी कि
अँधेरा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रपात-जलों की भाँति
हिम पर से रपटता है
और शब्द भी करता है।
युधिष्ठिर! तुम्हारा वह आदेश
सम्बोधन
उड़ते वस्त्र की भाँति उड़ता हुआ
न जाने किस भोजपत्र या देवदारु में
अटक कर उड़ रहा होगा।
मैं इस हतभाग्यता का क्या करूँ महाराज!
देह से मैं तुम्हारे साथ चली आयी थी
परन्तु मन
उन्हीं हत्याओं, चीत्कारों, षड्यन्त्रों
और कूटनीतियों के बीच
वैभव की जूठन बीनने में लगा रहा।
स्त्री
इस सांसारिकता से
क्यों नहीं कभी ऊपर उठ पाती महाराज!
क्यों नहीं ??
इसी सांसारिकता के लिए
एक दिन
सन्तानें, कुल-कुटुम्ब
बन्धु-बान्धवता
सब स्वाहा हो जाने दिये
और आज—
महाप्रस्थान के इस पथ पर
पतियों को खोकर
प्रताड़िता एकाकी हो गयी हूँ—
जैसे यज्ञ सम्पन्न हो जाने के बाद
अकेला यज्ञयूप
उपेक्षित
गड़ा हुआ छोड़ दिया गया हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन ?
कानों के इतने पास
ये किसकी गर्म साँसें हैं ?—
पार्थ ?
धर्मराज ??
क्या तुम्हें अपनी कृष्णा का मोह
उस महापथ से लौटा लाया ?
अगत्या तुमने मेरे लिए
अपने धर्म का परित्याग कर दिया ?
पर—
यह तुम अट्टहास क्यों कर रहे हो ?
बारम्बार आँख पर जमती
इस हिम में
कुछ दिखायी नहीं देता पार्थ!
लेकिन
लेकिन यह अट्टहास तुम्हारा नहीं हो सकता।

कौन हो तुम ?
बोलते क्यों नहीं ?
वर्तमान नहीं हो सकते
अवश्य ही कोई विगत होगे

अश्वत्थामा: न मैं वर्तमान हूँ
न विगत
मैं चिरंजीवी हूँ द्रौपदी!
मुझे नहीं चीन्हतीं ?
अमरता के अभिशाप में धधकते
कोढ़ी अश्वत्थामा को नहीं पहचानतीं द्रौपदी ?
द्रौपदी: तुम ?
अश्वत्थामा ? तुम ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वत्थामा: हाँ द्रौपदी!
प्रत्येक शून्य अश्वत्थामा है।
प्रत्येक एकान्त
निर्जन जंगलों और
अकेले यात्री से
अपने इस अपूरित सिर के
युद्धघाव के लिए
वस्त्र और तैल माँगने के लिए ही
तुम्हारे कृष्ण ने मुझे
अमरता का अभिशाप दिया द्रौपदी!
शाप का यह कूबड़ ढोता
चिरंजीवी अश्वत्थामा
महारानी द्रौपदी से
कपड़े की एक चिंदी माँगता है।
नहीं दोगी सम्राज्ञी!
चिरंजीवी को यह भिक्षा ?

द्रौपदी: आसक्त एकाकीपन ही
शाप है अश्वत्थामा!
चाहो तो इसे
कोढ़ भी कह सकते हो!
कैसी विषमता है अश्वत्थामा!
न तुम
युद्ध के अन्तिम दिन वाले
मेधावी महासेनापति हो
और न मैं
राजसूय-यज्ञ सम्पन्ना सम्राज्ञी!!
सन्दर्भ से कट जाने के बाद
कैसा ही मेधावी
घास की अनाम पत्ती की भाँति
कैसा निरीह हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वत्थामा!
मेरे पास
तुम्हारी इस रक्त-स्त्रावित
अभिशप्तता को देने के लिए
टूटती अन्तिम साँसों के अतिरिक्त
और कुछ नहीं है अश्वत्थामा!
विश्वास करो
और कुछ नहीं है!!

अश्वत्थामा: सुदर्शन-चक्र से भी
अधिक अभिशप्त था
कृष्ण का वह शाप
जो मुझे आकण्ठ जला रहा है।
प्रवंचना से
उस दिन
कृष्ण ने मेरी मणि तुम्हें दी थी
लौटा दो सम्राज्ञी!
मेरी वह एक मात्र मणि!
तुम्हारे अक्षय राजकोष में
अनन्त मणियाँ होंगी सम्राज्ञी!
क्या करोगी
एक ब्राह्मण की मणि लेकर ?
तुम नहीं जानती होगी कि—

मणि छिन जाने के बाद
प्रत्येक सर्प हो जाता है
अन्धा सर्प!!
और सम्राज्ञी।
सर्प डँसता भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी: नहीं,
नहीं अश्वत्थामा!
यों न हँसो
विश्वास करो
मुझ अकिंचन के पास
कोई मणि नहीं
चाहो तो
मेरे प्राणों की मणि ले लो अश्वत्थामा!
और मुझे हिम की इस यातना से
मुक्त हो जाने दो।

अश्वत्थामा: यातना!!
अग्नि की हो
या हिम की,
यातना ही होती है द्रौपदी!
तुमने मेरी मणि लेकर
मुझे निःस्वत्व किया
परन्तु मैं ऐसा नहीं कर सकता।
किसी के प्राणों की मणि लेने का अर्थ
उसकी यातना को भी लेना होता है।
उस दिन
अर्ध रात्रि में
सोती हुई पाण्डवता के प्रति
जो मेरी पैशाचिकता जागी थी
उससे अधिक
कोई और यातना नहीं
नहीं द्रौपदी!
मुझे वस्त्र और तैल चाहिए
द्रौपदी! तुम्हारी
या किसी की यातना नहीं!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी: चले गये तुम
अश्वत्थामा!
पता नहीं यह तुम थे
या कि तुम्हारा भ्रम।
उस दिन
तुम्हारी मणि को छुआ था
और हाथ
आज जल रहा है अश्वत्थामा!
क्या मिला
इस अन्तिम क्षण में
मेरे भीतर के इस कुष्ठ को जगाकर
तुम्हें
या किसी को क्या मिला ?

पार्थ!
धर्मराज!
यह क्या ??
भोजपत्र और मैं
दोनों फिसलने लगे हैं।
यह हिमनद
मुझे बहाये ले जा रहा है
पार्थ! युधिष्ठिर!!
पार्थ!!!

अर्जुन: आया था—
मुझे पुकारते हुए
आँधियों में घिरे एकाकी पाखी सा
पंख फड़फड़ाता यह
विवश प्रिया का
आर्तस्वर आया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारह दिनों का वह युद्ध
सर्वनाश की वे अनन्त चीत्कारें
कुछ भी
मेरे गाण्डीव-व्यक्तित्व को
इतना अवश
या नगण्य नहीं कर पायी थीं
जितना कि
प्रिया का वह आर्तस्वर कर गया।
मेरे व्यक्तित्व के भोजपत्र को
प्रिया की पुकार
विद्युत सा चीर गयी।
इस विभाजित व्यक्तित्व को लेकर
क्या करूँगा ?
इस गाण्डीव को भी
वहन करके अब क्या होगा ?
जो युधिष्ठिर-साम्राज्य की
रक्षा तो कर सका।
पर प्रिया की ही रक्षा न कर सका।
जाओ
मेरे गाण्डीव-व्यक्तित्व!
अब सब शेष हो चुका।
शस्त्र, व्यक्ति नहीं हुआ करता,
जब व्यक्ति ने ही
उस आर्तस्वर को अनसुना कर दिया
तब शस्त्र कैसे सुन पाता ?
जाओ, विदा—
मेरे व्यक्तित्व के सहचर!
पाण्डवों से सम्बन्धित
प्रत्येक को
हिम-समाधि ही मिलनी है,
जाओ!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीम: धर्मराज !
हम सबकी पत्नी होते हुए भी
द्रौपदी
क्यों नहीं हिमपथ के पार
इस धर्मपथ पर आ सकी ?

युधिष्ठिर: क्योंकि वह सांसारिकता थी।
पत्नी वह सबकी थी भीम!
किन्तु मनसा
प्रिया अकेले पार्थ की ही रही।
विभाजित व्यक्तित्व
वह किसी का भी हो
धर्म नहीं स्वीकार किया करता भीम!
धर्म भी प्रकृति है
इसलिए सागर की भाँति
शव नहीं स्वीकार किया करता।

आने लगी है
इन हिमाँधियों के बीच
इस पाण्डवता के पतझर की आहट।
कितना निर्मम है
यह सत्य—
जब यात्रा
अपने ही भीतर समाप्त हो जाती है
तब कैसे ही
बाहरी वर्चस्व को पुकारना
कोई अर्थ नहीं रखता भीम!
कोई अर्थ नहीं रखता।
हिम के
अद्वैत व्यक्तित्व में
उभर आये अवांछित पदचिह्न—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमपात
कितने असंग भाव से पोंछ रहा है।
अभी-अभी प्रिया थी
पर अब उसकी यहाँ
कोई प्रतीति नहीं,
सब हिमालय होता जा रहा है।

भीम: बन्धु! क्या अर्थ है इसका ?

युधिष्ठिर: किसका ?

भीम: हिम-यातना के इस आत्मवरण का!

युधिष्ठिर: भीम! क्या कुछ अर्थ था
उस मणि-मुकुट धारण का?
कौरवों से युद्ध का ?

भीम: क्यों नहीं ?

युधिष्ठिर : क्या ??

भीम : कौरव दुष्ट थे।

युधिष्ठिर: केवल हमारे ही लिए तो!

भीम: हम
प्रजा को एक सुचारु प्रशासन देना चाहते थे।

युधिष्ठिर: क्या सच ही दे सके ?
बन्धु! तुम्हारा कथन मिथ्या नहीं?
क्या दुर्योधन कुशल प्रशासक नहीं था?

भीम: तब तो धर्मराज!
तुम्हारी दृष्टि से
वह युद्ध
वह राजसूय यज्ञ
सभी कुछ व्यर्थ है।

युधिष्ठिर: ऐसा तो मैं नहीं कहता,
पर भीम!
युद्ध या राज्य
किसी में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी कोई रुचि नहीं रही।
रक्त और स्वेद से अर्जित
उस साम्राज्य से विरक्ति के
कुछ दूसरे ही कारण हैं।

भीम: क्या ?

युधिष्ठिर: भीम!
यदि राज्यप्राप्ति मेरा लक्ष्य होता
तो पहले ही दिन
धृतराष्ट्र को सिंहासनच्युत कर सकता था
क्योंकि
न्याय मेरे पक्ष में था
तथा भीम
और अर्जुन मेरे अनुगामी थे।

भीम: तो फिर क्यों नहीं किया ?

युधिष्ठिर: भीम!
मैं राज्यान्वेषी नहीं
मूल्यान्वेषी रहा हूँ।
राज्य जैसी अपदार्थता के लिए
अपने ही रक्त
कौरवों का नाश ??
मेरे लिए असम्भव था बन्धु!
असम्भव था।
किसी भी साम्राज्य से बड़ा है
एक बन्धु
एक अनाम मनुष्य!!
मुझे मनुष्य में विराजे देवता में
सदा विश्वास रहा है,
इस देवता के जाग्रत होने की प्रतीक्षा में
मैं अनन्त काल तक
प्रतीक्षा कर सकता हूँ भीम!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मुझे विश्वास हो जाता कि
सौ वर्ष के बनवास के बाद भी
कौरव हमें अपना अधिकार दे देंगे
तो सच मानो भीम!
मैं कभी युद्ध के लिए सहमत न होता।

प्रत्येक समय
वीरता के लिए शस्त्र आवश्यक नहीं होता,
केवल एक ही भाषा
संसार में नहीं है भीम!
क्या मैं शकुनि की धूर्तता से अवगत नहीं था ?
धृतराष्ट्र
विचारों से भी अन्धे हैं
क्या यह मैं नहीं जानता था ?
क्या तुम सोचते हो कि
कृष्णा का वह अपमान
मैंने क्लीवतावश सहन किया था ?
नहीं
नहीं भीम!
सामनेवाला यदि आवेग में
पशु हो गया हो
तो विवेक के रहते
प्रतीक्षा करो
उसके पुनः मनुष्य होने की।

करुणा मेरा धर्म है भीम!
किसी भी सम्बन्ध
साम्राज्य या शक्ति के सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं इसे नहीं छोड़ सकता।
विश्वास करो
धर्म के मूल्य पर
मैं स्वर्ग भी अस्वीकार कर सकता हूँ भीम!

भीम: तो फिर युद्ध क्यों स्वीकारा!

युधिष्ठिर: एक तात्कालिक धर्म भी होता है—
कर्तव्य!!
जब युद्ध कर्तव्य हो गया
तो अनासक्त होकर
वह भी किया।
इसीलिए उन दिनों की वे स्मृतियाँ
मुझे भी स्मरण तो आती हैं
पर सालती नहीं
आच्छादित नहीं करतीं,
यही निर्वेद की भूमि है।

भीम दोनों ही पक्षों में
जैसे मैं ही था।
मैंने ही वह युद्ध
जीता भी
और पराजित भी मैं ही हुआ।
दुर्योधन बनकर
मैंने ही मृत्यु वरण की
और युधिष्ठिर बनकर
आज मैं ही इस विजय का पश्चाताप करते हुए
इस हिम में गल रहा हूँ।
वो देखो भीम!
नकुल और सहदेव
कच्ची हिम में
हठात कैसे समा गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे वे हिम पर नहीं
जल पर चल रहे थे।
नितान्त अविश्वसनीय अन्त हुआ
इन अनुजों का भीम!
नकुल और सहदेव
इस पाण्डवता के स्वरूप और ज्ञान थे।
भीम! इस पाण्डवता के पीपल के
एक-एक पत्र झरते जा रहे हैं—
पहले सांसारिकता
फिर स्वरूप और ज्ञान...
इसके बाद ??

अर्जुन: बन्धु!
व्यक्ति के पुरुषार्थ और संकल्प का
तब कोई अर्थ नहीं।
इस समस्त मेदिनी को तब
अपनी मुट्ठियों में कस लेने का भी
कोई अर्थ नहीं।
यह तो ऐसा ही हुआ धर्मराज! कि
चर्मपादुका पहना व्यक्ति
समस्त पृथिवी को
चमड़े से मँढ़ा हुआ समझे,
क्या पुरुषार्थ की कोई सार्थकता नहीं ?
युधिष्ठिर: क्या तुम्हें अब भी लगती है ?
अर्जुन! इस वैचारिक चक्रव्यूह में
तुम व्यक्ति के
संकल्प और पुरुषार्थ तक ही
क्यों रुक जाते हो!
जिज्ञासा के केन्द्र में
जो अनाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारहारा व्यक्ति है
जिसका कोई इतिहास नहीं लिखा जाता
बल्कि जिसकी देह को छीलकर ही
हम इतिहास लिखते आये हैं
उसके अर्थ को जानने की चेष्टा की है पार्थ ?

पुरुषार्थ और संकल्प
क्या सच ही कुछ होते हैं ?
तब क्यों नहीं
गाण्डीव के होते
अपनी प्रिया को हिमपाश से मुक्त करा सके ?

अर्जुन: सम्भवत: एक सीमा के बाद
प्रश्न का उत्तर भी
प्रतिप्रश्न ही होता होगा
तभी तो आप भी प्रश्न ही कर रहे हैं।

यह कैसी विवशता है
व्यक्ति की—
समस्त शक्ति, संकल्प और पुरुषार्थ के होते हुए भी
यह नगण्य हो जाता है
क्यों ??
जिस गाण्डीव के होते
समस्त मेदिनी में
यज्ञाश्व के अयाल तक छू सकने का
कोई साहस न कर सका,
जो समस्त कौरव-शक्ति को
अपने बाण की नोक पर
झेलता रहा
वही—
अपनी प्रिया की रक्षा न कर सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाण्डीव वही
प्रत्यंचा वही
और अर्जुन भी वही
पर..........!!
सम्भवतः हम
धनुष पर नहीं
अपने व्यक्तित्व पर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं
और आज
इस अवश व्यक्तित्व पर
कोई प्रत्यंचा नहीं चढ़ पा रही।

युधिष्ठिर: सव्यसाची!
प्रकृति से बड़ा
कोई व्यक्ति नहीं होता,
कोई शस्त्र नहीं पार्थ!
जो प्रकृति के धर्म का भेदन कर सके।
प्रकृति के धर्म का भेदन करना
परात्पर होना है
और वह शस्त्र से सम्भव नहीं।
अभी तुमने देखा कि
सांसारिक सम्पदा की मूर्ति
और तुम्हारे एकान्त सुगन्धित क्षणों की
प्रिया
तुम्हें पुकारती रही।
कर्ण से श्रेष्ठ योद्धा
कृष्ण के तेजस्वी मित्र तथा
अनिंद्य सुन्दरी कृष्णा के
अन्तरंग केलिसखा
तुम—
अपने ही बोझ को ढोने में असमर्थ,
हिम में ऐंठे पैरों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिल-तिल चढ़ना भी पहाड़ हो रहा है।
आकुल होकर
तुमने और भीम ने हाथ भी बढ़ाये
पर उन विकराल हिमनदों से
न प्रिया
न नकुल, न सहदेव
किसी को न बचा सके
अपनी ही आँखों के सामने
अपने भीतर की रागात्मिकता को
हाहाकार रूप में
नष्ट होते देखना
दुःख देता है न पार्थ ?
पर—
एक स्थिति पर पहुँच कर
दुःखी होना भी
अमानवीय होना हो जाता है।
प्रश्न और जिज्ञासा में
अन्तर समझते हो पार्थ ?
सत्य की प्राप्ति
दूसरे से प्रश्न करके नहीं होती,
स्वयं से ही जिज्ञासा करनी होती है।
सुख या दुःख के स्थान पर
मुझे सदा जिज्ञासा हुई पार्थ!
मेरे राज्य परित्याग से
अवश्य ही तुम लोगों को बुरा लगा होगा।
मैंने मात्र शास्त्र-व्यवस्था के कारण ही
वानप्रस्थ नहीं स्वीकारा
परन्तु
यह मेरी वैचारिकता का निष्कर्ष था बन्धु!

अर्जुनः कैसा निष्कर्ष!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर: वस्तुओं से हीन होते जाने का
अर्थ है
व्यक्तित्व से सम्पन्न होते जाना।
युद्ध, राज्य, साम्राज्य, सम्पदा, सम्बन्ध
इन सबकी सीमाएँ हैं पार्थ!
ये ही
वे कुचक्र हैं
जिन्हें व्यक्ति
अपने चारों ओर बुन लेता है
और फिर कभी
इस सफलता की सुगन्ध के परिवृत्त से
बाहर आना नहीं चाहता।
ये वस्तुएँ
ये सफलताएँ
एक दिन उसका पर्याय बन जाती हैं।
वस्तुओं और सफलताओं के माध्यम से
अमरता प्राप्त करने को ही तो
तुम पुरुषार्थ और संकल्प कहते हो ??

ये दुर्ग, प्रासाद, स्मृति-भवन
चारण-प्रशस्तियाँ
ये झूठे इतिहास वाले शिलालेख
व्यक्ति को अमरता देंगे ?
पार्थ!
जड़, जड़ का ही प्रतिनिधित्व कर सकता है
चेतन का नहीं।

तुम्हें बारम्बार कचोटती है
अपनी विवशता कि—
तुम अपमानित किये गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे स्वत्व का हनन किया गया
न्याय प्राप्ति के लिए
तुम्हें संघर्ष करना पड़ा
पर पार्थ!

कभी उन
विचारहारा साधारण जनों के बारे में सोचो—
जो सदा अपमानित होते रहे हैं।
जिनके स्वत्व का अपहरण ही
हमारे ये दीप्तित साम्राज्य हैं।
अन्याय के अभ्यस्त वे
नहीं जानते कि
न्याय भी कुछ होता है।
प्रत्येक युद्ध—
जिसमें से एक राज्य जन्म लेता है,
कितनी स्त्रियों को विधवा
और बच्चों को अनाथ कर जाता है,
और वे जीवन-संघर्ष में
दिशाहीन खो जाने के लिए
बाध्य हो जाते हैं।
सव्यसाची!
तुम्हारे कृष्ण ने ही तो कहा था—
युद्ध के उपरान्त
समाज में वर्णसंकरता बढ़ जाती है।
कर सकते हो
उस दिन की कल्पना
जब इस पृथिवी पर
कुलगोत्र-हीन वर्णसंकरता ही विचरण करेगी ?
उस दिन
इस ऐतिहासिक कुष्ठता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन उत्तरदायी होगा अर्जुन!
कौन उत्तरदायी होगा ??

आज, नहीं तो कल
राजा से अधिक कठोर हो जाएँगे
ये राज्य—
और सुदूर भविष्य में
राज्य से भी अधिक अमानवीय हो जाएँगी
ये राज्य-व्यवस्थाएँ।
इनके दो आधार स्तम्भों—
युद्ध और आतंक
जिनका शिलान्यास
मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियाँ
बारम्बार करती आयी हैं
एक दिन
युद्ध और आतंक ही
सामाजिकता के पर्याय बन जाएँगे

युद्ध में हमने कौरवों को हराया
और आतंक के बल पर
तुमने
पाण्डव-साम्राज्य का राजकोष बढ़ाया।
पार्थ!
हमारे इन अमानवीय कृत्यों के
ये ही तो ऐतिहासिक निष्कर्ष निकले कि—
अर्जुन से श्रेष्ठ कोई योद्धा नहीं
और युधिष्ठिर ही
एक मात्र चक्रवर्ती सम्राट हैं!!
मानवता का यह रथ
किस अंधे मार्ग पर बढ़ रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम नहीं जानते पार्थ!
तुम नहीं जानते कि
संकट कहीं अधिक गहरा है।

अर्जुन: कैसा संकट?
लगता है
वितृष्णा आप में गहरे चली गयी है।

युधिष्ठिर: वितृष्णा??
मैंने वितृष्णा में राज्य नहीं त्यागा पार्थ!
और न ही
वह मोहभंग की ही स्थिति थी
इसीलिए
मुझे किसी बाहरी कृष्ण की भी
आवश्यकता नहीं हुई।
वर्षों के वैचारिक मन्थन के बाद ही
मैंने यह निर्णय लिया था बन्धु! कि
सारे मानवीय दुःखों का आधार—
यह राज्य है
राज्य-व्यवस्था है
और राज्य-व्यवस्था का दर्शन है।

अर्जुन: यदि राज्य न होगा
तो समाज का क्या होगा?

युधिष्ठिर: राज्य के नहीं
धर्म के नियमों पर समाज आधारित है।
राज्य पर अंकुश बने रहने के लिए
धर्म और विचार को
स्वतन्त्र रहने दो पार्थ!
अन्यथा यह समाज
रहने के योग्य नहीं रह जायेगा।
किसी भी व्यक्ति को
इतना प्रतिष्ठापित मत करो कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष सबके लिए
वह अलंघ्य विन्ध्याचल हो जाए
अर्जुन: धर्म का प्रतिपालक
राजा ही तो होगा।
युधिष्ठिर: यह सबसे खतरनाक दर्शन है पार्थ!
क्रूरताओं और षड्यन्त्रों का प्रतीक
राजा और राज्य—
मानवीय उदात्तताओं और करुणा के प्रतीक
धर्म के प्रतिपालक नहीं हो सकते।
पार्थ!
किसी कपोल-कल्पित कथा में भी
सिंह ने संन्यास ग्रहण नहीं किया।

धर्म का उत्स
राज्य में नहीं
व्यक्ति की प्रज्ञा में होता है।
ऐसे वैश्वानरी व्यक्तित्व को
कैसे ही राज्य से
अधिक महत्व देना होगा पार्थ!
अर्जुन: तब क्या समाज
अराजक नहीं हो जायेगा!
युधिष्ठिर: यह तुम एक राजा की भाँति सोच रहे हो।
पार्थ!
कोई भी भाषा पूर्ण नहीं होती
इसीलिए
जब तुम अराजक शब्द का प्रयोग करते हो
तो इसकी प्रकृति, अर्थ
सब कुछ बदल जाता है
अर्जुन: जब राजा न होगा
तो और क्या होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर: व्यक्ति होगा
मानवीय वानस्पतिकता होगी और
उदात्त करुणा, प्रज्ञा होगी पार्थ!
व्यक्ति और व्यक्ति के बीच
केवल राज्य ही सूत्र है—
यह विचार ही।
सबसे बड़ा छल है।
राज्य को शस्त्र सौंप दिये पार्थ!
पर अब धर्म और विचार
मत सौंपो।

राज्य-व्यवस्था की नींव में
कराहते मनुष्य का होना
एक अनिवार्यता है अर्जुन!
कोई आश्चर्य नहीं
यदि इसी प्रकार
लूट, खसोट, युद्ध, षड्यन्त्र होते रहे
तो एक दिन
यह राज्य-व्यवस्था
सम्पूर्ण मानवता के विरुद्ध
सबसे बड़ा
संघबद्ध षड्यन्त्र सिद्ध हो।
राज्य के
अकूत शक्ति सम्पन्न होने का अर्थ ही है
व्यक्ति का स्वत्वहीन होना।
राज्य की गरिमा को
व्यक्ति की गरिमा का पर्याय होने दो।
किसी भी व्यवस्था का
व्यक्ति से बड़े हो जाने का अर्थ होगा
अमानवीय तन्त्र!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज अमूर्त होता है
व्यक्ति नहीं,
और व्यक्ति के फूलत्व को कुचल दोगे
तो वन
गन्धमादन कैसे बन पायेगा पार्थ?
फूल का एकाकीपन
अरण्य की सामूहिकता की शोभा है
विरोधी नहीं।

मैं इस षड्यन्त्र का
भागी नहीं बनना चाहता था
इसीलिए
एक नितान्त साधारण जन बन कर
अपने अमानवीय कृत्यों के लिए
हिम में गलकर
इतिहासहीन मृत्यु स्वीकार लेना
उचित समझा पार्थ!
परन्तु
सम्राट बनकर
वैभवपूर्ण, सम्मानित
किन्तु नृशंस मृत्यु
मुझे स्वीकार नहीं हुई।

अर्जुन! अपने वैचारिक स्वत्व को
किसी का भी दास मत होने दो,
स्वयं का भी।
यदि वैचारिकता की अग्नि
स्वयं तुम्हें झुलसाने लगे
तब भी उसे वहन करो
जैसे वृक्ष-पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगारे को अपनी हरीतिमा सौंपने पर भी
दाहकता वहन करता है
वहन करो।
प्रज्ञा ही एक मात्र दक्षिणा है पार्थ!
जो कि इस सन्तप्त मानवता को
उसके इस स्वाहात्व के लिए
तुम दे सकते हो।
ऐसा सत्य
स्वयं ही पक्ष होता है पार्थ!
अन्य कैसी ही पक्षधरता
मानवता के साथ छल है।

सोचो सव्यसाची!
समाज की अनुकम्पा या कृपा से
राज्याकांक्षी
राज्य या सत्ता नहीं अर्जित किया करता
बल्कि संघर्ष, षड्यन्त्र और कुचक्रों से ही
वह सिंहासन पर आरूढ़ होता है।
ऐसी सत्ता पर
आधिपत्य बनाये रखने के लिए
फिर संघर्ष, षड्यन्त्र और कुचक्र
अनिवार्य हो जाते हैं।
राजनीति और क्या है पार्थ ?
वह देवकन्या की नहीं
विषकन्या की आत्मजा है
ऐसा सत्ताधारी
कभी उदार-चरित्र नहीं हो सकता
और तुम
इसे ही धर्म, विचार और विवेक का
प्रतिपालक बना देना चाहते हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं,
नहीं अर्जुन!
समाज से ऐसी शत्रुता मत निकालना।

एक साधारण जन
पृथिवी पर
हल की रेख से
धन-धान्य का भाषा-ग्रन्थ रचता है
जबकि सत्ताधारी
पृथिवी पर
रथ की रेख से
रक्त-स्नात इतिहास लिखता है।
विशाल बान्धवता की नहीं
उसे तो चारों ओर
विद्रोह और षड्यन्त्र की गन्ध आती है;
और तब प्रत्येक बस्ती में
राज्य का अप्रतिम प्रतीक
कारागार
निर्मित होता जाता है।
सम्भव है अर्जुन!
यह सत्ताधारी
यह राज्य-व्यवस्था
एक दिन
प्रत्येक व्यक्ति के भीतर
विचार शून्यता का
अन्धा कारागार निर्मित कर दे।
प्रत्येक व्यक्ति
बन्द ताले की भाँति कर दिया जाए
जिसकी ताली
राजकोष में जमा कर दी गयी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज जिस राज्य व्यवस्था का
'साम्राज्यी स्वरूप
हमारे युग में आरम्भ हुआ है
कल जब यही
भिन्न मानवताओं के अनुभवों से जुड़कर
एक ऐतिहासिक सभ्यता बन जाएगा
तब
वह भाषा-ग्रन्थ होगा
या इतिहास ??
वह
राज्य-लोलुप, निरंकुश सत्ताधारियों का इतिहास होगा
या अनाम, निरीह साधारण जनों का भाषा-ग्रन्थ होगा ?
सव्यसाची!
राज्य-व्यवस्था के माध्यम से
मनुष्य को
क्यों इन भेड़ियों का भोज्य
बना देना चाहते हो ?
इन साधारण जनों से
तुम्हारी क्या शत्रुता है पार्थ ?

मैं जानता हूँ
प्राप्य या अप्राप्य—
परन्तु हम सबके भीतर
सत्ता का माणिक-भवन
अर्धदीप्तित रहता है।
उसी के गवाक्ष से
सत्ता की विषकन्या
गोपनीय
कुटिल-संकेतों से अपना वशीकरण डालती है,
और हम

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकण्ठ
उस वैभव-गन्ध से मदान्ध
धर्म, दर्शन, न्याय, शास्त्र
सबकी वही व्याख्या करते हैं
जिससे हम ही
सत्ता के केन्द्र में पहुँच सकें।
देख रहे हो इस
सत्ता का यह अन्धा द्यूत-व्यापार ?
अर्जुन! जिस दिन राज्य-व्यवस्था ही
सम्पूर्ण समाज
और मानवता का
प्रतिनिधित्व करने लगेगी—
विश्वास करो
यह पृथिवी
एक विशाल कारागार में परिणत् हो जाएगी।

प्रलय-जल के सम्मुख
न व्यक्ति, न नगर
न वनस्पति, न अरण्य
किसी की सत्ता नहीं रह जाती
केवल वही
सृष्टि का प्रतिनिधित्व करने लगता है।

अर्जुन: व्यक्ति, व्यवस्था के सामने
विलीन न हो जाए
इसके लिए क्या होना चाहिए ?

युधिष्ठिर: ऐसा न हो
इसकी हम कामना तो कर सकते हैं
परन्तु
प्रतिव्यवस्था का कोई आश्वासन
कैसे दिया जा सकता है अर्जुन ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जहाँ हैं
वहाँ से भविष्य को
उसकी सम्भावनाओं को
सम्भव है
पुकार तो सकें
पर उसका निर्माण कैसे कर सकते हैं ?

अर्जुन!
एक और भी प्रश्न है
जो बराबर सालता रहा है।

अर्जुन: जीवन भर आप
प्रश्नों से ही जूझते रहे हैं बन्धु!
युधिष्ठिर: विवेक का तर्क ही यह है पार्थ!
या तो वह तुम्हें स्वर्ण कर देगा
या क्षार।
जानते हो वह प्रश्न क्या है ?—
गुरु द्रोणाचार्य जैसे मेधावी की—
विवशता!!
विशाल पोत में
छोटे से छिद्र की ओर ध्यान नहीं जाता
पर
एक दिन समुद्र
अपनी विशाल काया उसी छिद्र से
क्रमशः भीतर ले आता है
और समस्त पोत को
निगल जाता है।
द्रोणाचार्य की विवशता भी
वैसा ही छिद्र है पार्थ!
मुझे भय है कि
सुदूर भविष्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह राज्य-व्यवस्था
सम्पूर्ण समाज
और उसकी मनस्वी मेधा को ही
कहीं न निगल जाए।

समस्त शास्त्रज्ञता
पाण्डित्य और तेजस्विता के बाद भी
यशस्वी द्रोणाचार्य
अपनी एकमात्र सन्तान को
दूध तक न उपलब्ध करवा सके।
कल्पना करो
उस हाहाकार की पार्थ!
जब पुत्र
आटे को ही
दूध समझ कर पीता रहा होगा
तब उस विवश पिता के मन पर
क्या बीतती रही होगी अर्जुन!
असीम प्रतिभा
लेकिन घोर दारिद्र्य!!
इसके लिए कौन उत्तरदायी है पार्थ ?

अर्जुन: भाग्य!!
और कौन ?

युधिष्ठिर: तब दुर्योधन की अधीनता को
तुमने भाग्य के रूप में
क्यों नहीं स्वीकारा ?
नहीं,
अर्जुन! नहीं।
क्या द्रोणाचार्य की इस विवशता के लिए
राज्य दोषी नहीं ?
क्या इस व्यवस्था ने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सात्विक, परम मेधावी को
इस स्थिति तक नहीं पहुँचाया कि
मात्र जीवन-निर्वाह के लिए
अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व
ज्ञान और विवेक तक
राज्य को सौंप देना पड़ा ?

अभिमन्यु का सामूहिक वध
तथा युद्ध के अनेक अनाचार
द्रोणाचार्य अपनी आँखों से देखने के लिए
विवश—
क्यों ?
इसलिए कि राज्य
उनका भरण-पोषण कर रहा था।
कितना बड़ा मूल्य
एक विवेकवान को चुकाना पड़ा सव्यसाची।

अर्जुनः यह मात्र एक संयोग है धर्मराज!

युधिष्ठिरः इसे मात्र एक संयोग मत समझो अर्जुन!
राज्य-व्यवस्था का
यह एक अनिवार्य अंग है।
आज जब कि
राज्य-व्यवस्था का यह आरम्भ है
और आरम्भ में ही
स्वतन्त्रचेता द्रोण की आहुति दे दी गयी।
अपने षड्यन्त्रों
कुचक्रों में सहयोगी बनाकर
राज्य ने उस मेधावी को
एक क्रीतदास से अधिक
कोई महत्व नहीं दिया।
विदुर की ज्ञान-सम्पन्नता के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस कौरव के मन में आदर था अर्जुन ?
राजवंशी होने पर भी
राज्यकृपा के पात्र न होने के कारण
परम भागवत विदुर
एक अर्थहीन चरित्र बनकर रह गये।

प्रत्येक व्यवस्था के पास
अपने बघनख होते हैं अर्जुन!
सुदूर भविष्य में
क्या यह नहीं सम्भव है कि
राज्य-व्यवस्था
समाज से स्वतन्त्रचेता व्यक्तियों को ही
या तो समाप्त कर दे
या उन्हें इतना विवश, पंगु बना दे कि
उनका अग्नि-व्यक्तित्व
राज्य-व्यवस्था की निरंकुशता को
कभी चुनौती ही न दे पाये ?
अकेला दुर्योधन ही
दुर्विनीत नहीं था अर्जुन!
व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही
किसी भी व्यक्ति का
मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है!!

क्या अब भी तुम्हें लगता है पार्थ! कि
युधिष्ठिर ने
राज्य-परित्याग कर भूल की ?
नहीं,
सव्यसाची! नहीं—
मैंने अपने वैचारिक व्यक्तित्व को
कभी धुँधला नहीं होने दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी सम्बन्ध
किसी स्थिति
किसी वांछा
किसी को भी इस प्रज्ञा-अग्नि का
स्पर्श नहीं करने दिया।
उसी अच्युत व्यक्तित्व की
अनस्पर्शी
इस प्रज्ञा-अग्नि को
विराट को लौटा देने के लिए ही
यह हिमालय-आरोहण है बन्धु!
मैं जानता हूँ
इस दुर्गम स्वर्गारोहण में
मेरे अभिन्न अंगों की भाँति
एक-एक करके सारे सम्बन्ध
आत्मीय बान्धवता
रागात्मक संसार
सुगन्धित स्मृतियाँ
और इन सबको वहन करता
यह व्यक्तित्व
प्रतिक्षण
इस हिम में विसर्जित हो रहा है।
मुझे मृत्यु के इस विराट नाटक की
पूर्ण प्रतीति है अर्जुन!

पूर्ण प्रतीति!!
विभिन्न नामों वाला
यह मेरा ही क्षय है पार्थ!
अपनी प्रज्ञा-अग्नि को
वहन करने के लिए व्यक्ति को
कितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सव्यसाची!
संन्यास, वस्त्रों की गैरिकता
परिधान के लिए केवल रंग है
पर उस धारणकर्ता के लिए
वह ज्वाला का
अहोरात्र अभिषेक है।
अग्नि के इस आरात्रिक अभिषेक को
जब व्यक्ति
अपने स्वत्व में स्वीकार लेता है पार्थ!!
तब वह पार्थिव हो जाता है,
अग्नि में होम होती हुई पृथिवी ही—
पार्थिव है अर्जुन!
अपने भीतर के इस स्वाहा-भाव की
यात्रा ही
सव्यसाची! स्वर्गारोहण है!!

हिमपात के बाद की
ये हवाएँ
कैसी धारदार हो गयी हैं।
इसमें ही यह-कैसा
अभेद्य, निःशब्द अन्धकार
कालरात्रि सा भर गया है।
पैरों के कितने निकट
वासनापूर्ण नेत्रों के संकेत जैसी
ये हिमानी घाटियाँ
पाताल तक चली गयी हैं।
जीवन और मृत्यु के बीच
केवल
एक टिका हुआ पग!!
लेकिन एक सीमा के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अर्थ रह जाता है
इस एक पग का ?
हिम के व्याघ्र सी
सम्भावित मृत्यु—
कैस दबे पैरों से सहयात्रा कर रही है।
मृत्यु अपना कोई पदचिह्न
न हिम
न आकाश
न समय किसी पर नहीं छोड़ती,
पर प्रत्येक के साथ
प्रत्येक क्षण सहयात्री है।
ऐसे उदार सहयात्री से
भय कैसा पार्थ?
निर्भय हो जाओ—
तब देखोगे कि
तुम
मृत्युञ्जयी प्रकृति हो गये हो।

मैं यहाँ
व्यक्ति से प्रकृति बनने ही आया हूँ पार्थ
इसीलिए
इस प्रज्ञायात्रा की समस्त भयावहता भी
मुझे विचलित नहीं कर पा रही।
मैं अपने इस प्रज्ञारूप को
किसी भी मूल्य पर
अपने ही सम्राट रूप के सामने
विवश या
विनत होते नहीं देख सकता था।
पार्थ!
भय को निर्भय से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना भय लगता है
उतना और किसी से नहीं।

यह क्या हुआ तुम्हें अर्जुन??
तुम अपना पैर नहीं साध सके?
प्रत्येक क्षण
यात्रा को
अपने पैरों से दाबे रखना पड़ता है पार्थ!
तुम निर्भय होने के पूर्व ही
शेष हो गये?
तुम किस अनाम घाटी में
टूट कर चले जा रहे हो सव्यसाची!
मेरे वैचारिक सखा!
पाण्डवता के मेरुदण्ड!
ऐकान्तिक मृत्यु की तो कल्पना की थी
किन्तु
वह ऐसी अप्रत्याशित
अनुत्सवी होगी नहीं जानता था।
गाण्डीव-पुरुष!
तुम पुरुषार्थ से ऊपर नहीं उठ पाये।
अगत्या तुम चले गये!!

अर्जुन गया युधिष्ठिर!
अब शेष क्या है?
भीम के रूप में
प्रतिक्षण जड़ होती हुई
यह पाण्डवता की देह
और
प्रज्ञा-अग्नि सा
युधिष्ठिर!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ
जाओ सव्यसाची।
हमारे सबके उत्तरकार्य
यह हिमालय ही सम्पन्न करेगा
प्रत्येक ऊर्ध्वकामी के लिए
यह सृष्टि ही आत्मज होती है
विश्वास करो यह आत्मज ही
ब्रह्मकपाली पर
हमारा तर्पण करेगी।
हमने यात्रा का वरण किया था
और यात्रा—
चाहे चलकर
या उसमें टूट कर
पूरी तो करनी ही होती है।

भीम: बन्धु!
युधिष्ठिर: भीम!
किसी भी प्रकार का प्रश्न
मत करो।
बिना किसी समाधान के
यदि अपने से ही जिज्ञासा कर सकते हो
तो करो
पंचतत्व की भाँति
यह पाण्डवता
अब अन्तिम रूप से
विघटित होने को है भीम!
यहाँ अब प्रश्न सम्भव ही नहीं।
लगता है
जैसे हम किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही
विभिन्न संज्ञाएँ धारण किये हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोजन समाप्त हो चुका
तब हम प्रश्न करने के लिए
शेष कहाँ है भीम?

भीम: बन्धु!
अब नहीं चला जा रहा।
आँखों, कानों
सम्पूर्ण देह में
जैसे हिम भर गयी है।
हिम
न केवल व्रणों को ही काट रही है
बल्कि शिरा-उपशिराओं को
घोड़े के बाल की तरह
खड़ा चीर रही है।
प्रत्येक पग में
जैसे एक हिमालय बँधा हुआ है बन्धु!
चर्मपादुकाएँ चिपक कर
स्वयं पैर हो गयी हैं।
सच तो यह है धर्मराज! कि
इनके तले
गल कर न जाने कबके नष्ट हो गये हैं
और इनके खोखल
पैरों के ऊपर चिपक गये हैं।
श्वास—
आकाश में विलीन पक्षी सी
आभास देती है
पर लौटती नहीं।

अब नहीं चला जाता धर्मराज!
अब नहीं चला जाता।
यह कौन
हवा के पतले पर्दे को हिला रहा है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कौन
इस हिमालय को
आँखों के पास लाता है
और फिर दूर लें जाता है?
लाता है
फिर दूर ले जाता है??
घाटियों से कह दो
फिसलते शिखर चढ़ना छोड़ दें।
मैं
मैं कहाँ हूँ??
शयनकक्ष के दीपक क्यों बुझे हैं?
दासी! गवाक्ष खोल दो
श्वास अवरुद्ध हो रहा है
....
....
अब नहीं!!

युधिष्ठिर: भीम! उठो
स्वर्ग के गोपुर पर आकर
तुम हताश क्यों हो गये?
तुम्हारे साथ ही
यह सम्पूर्ण पाण्डवता भी नष्ट हो गयी भीम!
नष्ट हो गयी।
शताब्दियों तक इस हिम में
तुम्हारी यह देह
अज्ञात शिलालेख के एक प्रस्तर सी अनबाँची
यहाँ पड़ी रहेगी।
ऋतुएँ
निरन्तर इस पर लेप करते हुए
एक दिन
हिमालय कर देंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीम!
तुम मुझे मात्र एकाकी ही नहीं
सम्पूर्ण अनाश्रित दिगम्बर भी कर गये भीम!
अब मेरे पास
सम्बन्धहीनता की
एक ऐसी स्थिति है
जिसमें सम्बोधनहीन भाषा
और भाषाहीन सम्बोधन ही शेष बच गया है
मेरे बन्धु! विदा!!

अब कोई नहीं
कोई भी अब कहीं नहीं।
सिवाय तृतीय पहर के इस
रात्रि-आकाश के
और
इन नक्षत्रों की
अनन्त एकाकी साक्षियों के अतिरिक्त
अब और क्या शेष है?
जीवमात्र के प्रतीक
अयाचित बन्धु
श्वान!
तुम किस विश्वास के साथ
अपनी भाषाहीनता में भी
युधिष्ठिर के सहयात्री हो?
एक स्थिति पर भाषा का भी
क्या अर्थ रह जाता है?
अपने स्वत्व को बनाये रखना
सृष्टि के पास
यह कैसी उदात्त भाषा है
वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़, नदियाँ
सब इसी भाषा का तो
व्यवहार करते हैं युधिष्ठिर!
जबकि मनुष्य की भाषा
केवल उसे ही अभिव्यक्त करती है।
बन्धु!
तुम्हें लौट जाने के लिए कहना
सृष्टि को लौट जाने के लिए कहना होगा,
और बिना सृष्टि के तो
स्वयं ईश्वर भी नहीं है
आओ
चलें
यात्रा का यही तर्क है—
इस विराट भाषाहीनता में
एक अनुच्चरित मन्त्र से समर्पित हो जाएँ।

स्वर्ग-पर्व—३

युधिष्ठिरः ओ तृतीय प्रहर के रात्रि-आकाश!
व्योमकेश!
सावित्री-पत्तियों औ नक्षत्र-फूलों वाले
अश्वत्थ तुम्हीं हो।
जब तुम पृथिवी पर
नदियों के श्लोक लिखते हो
तब तुम्हारी करुणा
हिमालय हो जाती है
और
जब तुम उन श्लोकों का पाठ करते हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तुम्हारा सदाशिवत्व
सृष्टि हो जाता है
तुममें समस्त देवियाँ
आरात्रिक परिक्रमा कर रही हैं।
रात्रि के इस प्रहर में
तुम्हारे तपस्वी नेत्रों में
सरस्वती जाग्रत हैं।
देवी के चरण-स्पर्श से
हिमालय, वेद हो गया है
माँ!
तुम्हीं वह अनन्त कपिला हो
जिसकी गायत्री धाराएँ
हिमालय को गंगा
और वनस्पतियों को फूल देती हैं।
प्रत्येक प्रातःकाल
कपिला-दूध सी
यह धूप—
धूप का नाम ही कैसा उत्सव है—
जो पशुओं की पीठों को चमक
और हमारे मुखों की रात्रि पोंछ कर
दीपित कर जाता है।
माँ!
मेरी प्रज्ञा-अग्नि का यह स्तवन स्वीकारो!!

प्रत्येक कोलाहल
एकान्त में समाप्त हो जाता है
पर उस एकान्त में
कोलाहल के आहट की
जो प्रतीति शेष रह जाती है
उससे अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा मुक्त कर लेना—
देह को
अपने ही हाथों उतार कर
प्रक्षालित करना है।
युधिष्ठिर! यही यज्ञ है।

वनस्पतियाँ
किस आकुलता के साथ
वर्ण-गन्ध के चामर लिए
हिमालय की ओर दौड़ती हैं,
और क्रमशः ऊँचाइयों पर
अपनी समवेतता में
थक कर रह जाती हैं।
चीड़ और देवदारुओं का पुरुषार्थ भी
हिम के पावित्र्य का
केवल स्पर्श कर
शेष हो जाता है
और
तब आरम्भ होती है
उस विशाल
निर्वेद हिम-वक्षस्थल में
अकेले सुपर्ण भोजपत्र की
स्वाहा-यात्रा
आभ्यन्तर श्वेत व्यक्तित्व के
इस वानस्पतिक-युधिष्ठिर को
देवतात्मा
अपने स्वर्गिक व्यक्तित्व का
साक्षात करा कर रोक देता है।
घुटनों तक हिम में धँसे
इन वानस्पतिक-युधिष्ठिर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैले पर्ण-पाणियों पर
स्वर्गिक हिमानी करुणा
हिमफूलों में अजस्त्र झरती है।

युधिष्ठिर! जाग्रत करो
अपने स्वत्व के सुपर्ण भोजपत्र को
जाग्रत करो!!
एक कथा
नहीं, आसन्न घटनाओं वाला
रक्तरंजित
एक इतिहास,
बल्कि अनन्त त्रासदियों वाली
एक महागाथा सम्पन्न हुई
जिसके अन्तिम अधूरे श्लोक-सा
मैं
इस धर्मचक्र का साक्षात करने को
शेष हूँ!!

हमने समय और पृथिवी
दोनों में से अपने लिए
एक साम्राज्य तराश लेना चाहा था
पर
उस थरथराती धरती
और स्त्रावित समय के साथ
जो मानवता कट गयी थी
उसकी आर्तता के जयघोष में ही
मैं सम्राट बना था।
मैं नहीं जानता था कि
प्रत्येक राज्याकांक्षी
वृद्धक्षत्र ही होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी गोद में
कटी हुई मानवता
जयद्रथ का रक्तरंजित सिर होती है!!
युधिष्ठिर! निर्वेद के
इस प्रशान्त बिन्दु की नींव में
इतिहास और गाथाओं का वह कोलाहल
अब शान्त हो चुका है।
इस राशिवाही कालपुरुष की लीला को
स्वीकार करो युधिष्ठिर!
स्वीकार करो।
अब तुम इतिहासहीन
कुल-गोत्रहीन
स्वत्व नहीं
प्रज्ञा हो।
पूर्व दिशा में
इस कालपुरुष का
हवि के लिए हाथ उठ चुका है।
प्रत्यूष की इस ब्राह्मणी को
यज्ञ सम्पन्न करने दो।
देखो
आकाश में
सामगान भी आरम्भ हो चुका है
युधिष्ठिर!
झर जाने दो
इस शेष देह-भाव को भी
इस विराट यज्ञ में
यह मात्र समिधा है।
पृथिवी, जब देह का बोध त्याग देती है
तब शिव के कालजयी ललाट सी
शुभ्र हिमालय हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागो इस देह को भी युधिष्ठिर!
जिसे हिम
यातना लगती है!!
हिम—
शिव की गोद में
पार्वती की देहवाली
सारस्वत-वीणा है
सुनोगे युधिष्ठिर! इसका गान?
आकाश और पृथिवी की गंगाओं में
यह कालवीणा बज रही है,
ब्राह्म मुहूर्त का यह
तेजस्वी आकाश
इसके स्वरों से झंकृत होकर
प्रणव हो गया है
सुनोगे युधिष्ठिर!
इस सारस्वत-वीणा का गान??

हिम—
एक पर्व है
श्वेत फूलों वाला एक स्वर्गोत्सव है।
आकाश ने
सृष्टि के आरम्भ में
मन्दार फूलों की जो माला डाली थी
उस परिणय की
वह प्रथम गन्ध ही
हिमालय है।
कभी देखी है युधिष्ठिर!
इससे अधिक
देवताओं की देहवर्ण सी
जाज्वल्य पवित्रता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युधिष्ठिर! वरण करो
अपनी आत्मा में
इस हिमालय को वरण करो!!

कैसा है यह मुहूर्त!!
आकाश के पूर्व शिखरों पर खड़ा
प्रत्यूष—
दक्षिणावर्त शंख फूँक रहा है।
बन्धु! श्वान!
आ गया
स्वर्ग का द्वार आ गया।
उत्तर दिशा की साँकल खटखटाओ
देवतागण दिशाओं की साँकलों की आवाज ही
सुनते हैं।
बन्धु! डरो नहीं
आओ
तुम्हीं इस अन्तिम क्षण के सहयात्री हो।
तुम्हीं सृष्टि थे बन्धु!
तुम्हीं ने
युद्ध-वैभव से क्षत-विक्षत
युधिष्ठिर का
अगाध करुणा से साक्षात करवाया।

अभी यह उत्तर द्वार खुलेगा
मैं जानता हूँ
देवताओं को तुम्हारे प्रवेश से आपत्ति होगी
परन्तु विश्वास करो बन्धु!
सृष्टि-करुणा के बदले
मैं स्वर्ग भी नहीं स्वींकारूँगा
बन्धु! इसी मुहूर्त की प्रतिक्षा थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल ब्राह्ममुहूर्त में ही
हिमालय
अपना स्वर्ग द्वार खोलता है
और सृष्टि के सारे पुण्य
उस द्वार से प्रविष्ट हो जाते हैं

बन्धु! अन्तिम बार
भाल पर घिर आये
हिम-त्रिपुण्ड्र को पोंछ लो।
देखो
बन्धु! देखो
हिमालय ने अपना उत्तर द्वार खोल दिया है
सुन रहे हो
देवताओं के पैरों की आहट,
यह गन्ध
किसी भी फूल की नहीं हो सकती
यह देवताओं की देह-गन्ध है;
यही स्वाहा है
युधिष्ठिर!
सुनो
तुम्हारी प्रज्ञा-अग्नि के आवाहन में
हिमालय स्वाहा कह रहा है
युधिष्ठिर! स्वाहा!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवाद पर्व

[रचनाकाल : १९७७]

- इतिहास और प्रतिइतिहास
- प्रतिइतिहास और तन्त्र
- शक्ति : एक सम्बन्ध, एक साक्षात्
- प्रतिइतिहास और निर्णय
- निर्वेद विदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० सत्यव्रत सिनहा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास और प्रतिइतिहास

अयोध्या के राजभवन का एक कक्ष। शारदीया रात्रि का प्रथम प्रहर है। बड़े-बड़े दीप-पात्र आलोकित हैं। राम उद्विग्न भाव से कुछ देर टहलते हैं। उपरान्त गवाक्ष की रेलिंग थाम बाहर देखने लगते हैं। अकलंक चाँदनी की अमृत-वर्षा में प्रकृति रम्या लग रही है। कक्ष की एकान्तता में राम का प्रश्नाकुल व्यक्तित्व प्रत्यंचवत उभर आया है।

राम : क्या यही है मनुष्य का प्रारब्ध? कि
कर्म
निर्मम कर्म
केवल असंग कर्म करता ही चला जाए?
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि
उसके व्यक्तित्व को
रागात्मिकताओं को भी काट कर रख दे।

102435

क्यां यही है मनुष्य का प्रारब्ध??

क्या इसीलिए मनुष्य
देश और काल की विपरीत चुम्बकताओं में
जीवन भर
एक प्रत्यंचा सा तना हुआ
कर्म के बाणों को वहन करने के लिए
पात्र या अपात्र
दिशा या अदिशा में सन्धान करने के लिए
केवल साधन है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य
क्या केवल साधन है?
क्या केवल माध्यम है??

लेकिन किसका?
कौन है वह
अपौरुषेय
जो समस्त पुरुषार्थता के अश्वों को
अपने रथ में सन्नद्ध किये है?
कौन है?
वह कौन है??

मनुष्य की इस आदिम जिज्ञासा का उत्तर—
किसी भी दिशा पर
कभी भी दस्तक देकर देखो;
किसी भी प्रहर के
क्षितिज-अवरोध को हटाकर देखो
कोई उत्तर नहीं मिलता राम!
दस्तकों की कोई प्रतिध्वनि तक नहीं आती
शून्य से किसी का देखना नहीं लौटता।

दिशा
चाहे वह यम की हो
या इन्द्र की—
जिसे प्राप्त करने के लिए
अनन्तकाल से सप्तर्षि
यात्रा-तपस्या में लीन हैं;
परन्तु
दिशाएँ—
उत्तर की प्रतीक्षा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं प्रश्न बनीं
आकाश और ब्रह्माण्ड थामे खड़ी-खड़ी
वृद्ध हो रही हैं
और उत्तर—
स्वयं प्रश्न बना
एकान्त गरुड़ सा
अपर ब्रह्माण्डों के पार
व्योमसिद्ध भाव से चला जा रहा है।

कैसा है यह
सृष्टि का रहस्य,
कैसी है यह
आदिम जिज्ञासा वाली
अग्निपरीक्षा
जो मनुष्य मात्र की नियति है।

मानवीय प्रारब्ध के ललाट पर
यह कैसा अग्नि-त्रिपुण्ड्र लिख दिया गया है कि
चारों ओर
केवल स्वाहा ही स्वाहा की
आवाह-वाणी:
वनस्पतियों से लेकर व्यक्तित्वों तक
सुनायी दे रही है।
कहीं भी चले जाओ
किसी भी
गत या आगत शताब्दी में
असंग या
स्मृतिहीन बनकर
यात्रा
प्रतियात्रा कर आओ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर
कर्म के इस तटस्थ
भागवत-अनुष्ठान से
कोई मुक्ति नहीं
कोई निष्कृति नहीं!!

पूरे समय
अपने व्यक्तित्व में
यह अग्निपर्व
यह आवाहोत्सव धारण किये रहना
अपने को
प्रतिहवन-कुण्ड बना लेना है राम!
दूब की अनामता से लेकर
अनन्त आयामी
मानवीय प्रज्ञा तक—
अग्नि, जल, वायु
जन्म-मृत्यु के
सदाशिव और पाशुपत श्लोकों में
यह कैसा लीलामय अभिषेक
सम्पन्न हो रहा है।
यही है वह
रुद्रपाठ
जो सृष्टि के
मन्वन्तर-स्वरूप में
अहोरात्र उच्चरित है।

हमारा निजत्व ही
हमारे यज्ञ का वह
होता है—
जो अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र और पितरों तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें ले जाता है,
जो आक्षण
हमारे श्वास-मन्त्रों से
अभिषेक करवा रहा है।
इस ऊर्ध्व के उत्सव में
शब्द, रंग, गन्ध भी मन्त्र हैं
और महाकाल
इन सबको व्याघ्रचर्म की तरह लपेटे
निरन्तर समयहीन होता जा रहा है।

ध्रुव से ध्रुव तक
धू-धू करती
यह कर्म की
कृत्या—
अपनी अग्नि-गुंजलक में
सारे अक्षांश और देशान्तरों को लपेटे,
जीवमात्र की कण्ठमाल धारे
यह उदारचरिता
महाकाली
एकान्त और कोलाहलों पर आसित है।

ज्वारों के कशाघात सहते
योजनों विस्तार में फैले
सागरों
समुद्रों को कभी देखा है ?
यह कैसी वैश्वानरी विवशता है
जो वनस्पतियों से लेकर
दीपों की एकान्तता
वनों की अगाधता
आकाश की अगम्यताओं तक
अनासक्त भाव से व्याप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे के सारे
विनम्र तथा उग्र वर्चस्व
संकल्पजलों की भाँति
नदियों, प्रपातों के रूप में
इस महाकाली
कर्म-शिवा का अभिषेक कर रहे हैं।

कर्म के इस
अनासक्त
नासदीय स्वरूप से
सूर्यवंशी!
स्वयं सूर्य की भी मुक्ति नहीं
निष्कृति नहीं!!

राम!
आज फिर
एक साधारणजन ने
तुम्हारी राजसी-गरिमा
और चरित्र-मर्यादा की ओर
अपनी अनाम तर्जनी उठायी है।

जब भी
ऐसी तर्जनी उठती है
तब
राजतंत्र और इतिहास
कोलाहल से भर उठते हैं
क्योंकि
वह मात्र अँगुली ही नहीं होती राम!
उसका एक प्रतिऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है,
महत्व भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवा में ही सही
परन्तु प्रश्न में उठा
अनाम या
मनुष्य मात्र का हाथ
प्रतिइतिहास होता है राम!
प्रतिइतिहास
सदा अलिखित रहता है
और प्रतिऐतिहासिक
अनाम।

तर्जनी
वह किसी की भी हो
वाणी ही होती है।
यह कोई आवश्यक नहीं कि
शक्ति
केवल मन्त्रों और श्लोकों में ही हो।
अनेक बार
ऐसी ऐतिहासिक अनाम तर्जनी में भी
इतिहास को
प्रतिइतिहास में बदल देने की शक्ति होती है।

राम!
इतिहास भी आग होता है
और आग पर
कोई और नहीं
केवल
पिपीलिका ही चल सकती है,
संज्ञाहीन पिपीलिका!!

साधारणजन के पास
कब भाषा रही है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तो
सदा देह से ही बोलता आया है।
हाथ
झुकाया जा सकता है
पर
एक अनाम साधारणजन की तर्जनी—
समय के पत्रों
और लोगों के इतिहास-निरीह नेत्रों में
जब
एक जलता प्रश्न
उत्कीर्णित कर देती है
जैसे प्रति-शिलालेख हो,
तब
उसे किस राजाज्ञा
या राजदण्ड
या आदेश खुदे शिलालेखों से
अनहुआ किया जा सकता है राम?
और क्यों??

कैसे है?
राजशक्ति पर प्रश्नचिह्न लगाना
विरोधी संकल्प कैसे है??
क्या गरिमा
क्या चरित्र
क्या अधिकार
केवल राज्य
राजपुरुषों या
इतिहास-पुरुषों के ही होते हैं?
अनाम साधारणजन के कुछ नहीं होते राम?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव है
राजभटों के दस्ते या
जयघोषों में उठे हाथों की उठी भीड़
इस अनाम साधारणजन की तर्जनी को
घेर ले
और उसे
अस्तित्व के कंगूरों से ही
धकेल दे,
सम्भव है
इस इतिहासहीन साधारणजन का
उसके देशज नाम के
छोटे से संज्ञा-इतिहास से भी
वंचित कर दिया जाए
जैसे यज्ञ के लिए
अज कर दिया जाता है,
परन्तु
वर्चस्व की इस प्रामाणिकता को
जो उसे प्रतिइतिहास बनाती है
समूल नष्ट कैसे किया जा सकता है?
जब-जब भी
लोगों को
इतिहासहीन कर देने की चेष्टा की गयी है
तब-तब
वे लोग
अपनी पिपीलिकावत साधारणता के साथ
इतिहास की आग पर चलकर
पुराण-पुरुष बन जाते रहे हैं।

सब कुछ किया जा सकता है
किया भी जाना चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु
मनुष्य
उसकी अनाम साधारणता को
इतिहासहीन नहीं।

राम!
अपने को इतिहासहीन बना लेना
कहीं अधिक श्रेयस है;
क्योंकि
जब भी
कोई अज्ञात कुलशील
अनाम साधारणजन
किसी इतिहास-पुरुष के विरुद्ध
तर्जनी उठाने का साहस करता है
तब
वह मात्र विद्वेष ही नहीं होता है राम!
न वह असहिष्णुता ही है;
साधारणता से इतर
सृष्टि में
कहीं कोई सहिष्णुता नहीं।

यह कोई आवश्यक नहीं कि
सत्य
अपनी ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के लिए
केवल राजपुरुषों या
पंडितों को ही चुने।
यदि एक अनाम साधारण की तर्जनी ने
सीता के चरित्र पर
प्रश्नचिह्न लगाया है तो
उसे किसी राजाज्ञा के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहासहीन बना देने के अपेक्षा
उस अनाम साधारणजन के
इस वाणीहीन
प्रतिइतिहास के सम्मुख
अपनी विधि-मण्डित
ऐतिहासिकता की परीक्षा दो राम!

इतिहास
खड्ग से नहीं
मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए।
क्या होगा
इतिहास को इतना दास बनाकर कि
वह राजभित्तियों पर चित्रित तथा
शिलालेखों पर उत्कीर्णित
हमारी चारण-गाथा लगे;
और जीवन्तता के अभाव में
उन चित्रों, शिलालेखों को
काल
अपने में लीन कर
इतिहासहीन कर दे

नहीं
नहीं राम!
इतिहास को भी वनस्पतियों की भाँति
सम्पूर्ण मेदिनी की
शोभा और गन्ध होने दो,
उसे मानवीय अभिव्यक्ति का
औपनिषदिक पद दो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति मात्र को
इतिहास से परिधानित होने दो,
लगे कि
इतिहास—
मानवीय विष्णु की कण्ठश्री
वैजयन्ती है।

यदि किसी
एकान्त
भयावह बावड़ी की
काई खायी
जर्जर विद्रूप चट्टानों को फोड़कर
प्रतिइतिहास का तेजस्वी
पीपल-पुरुष
हरहराने लगे तो
उसे चुनौती के स्थान पर
सहज सत्य की अभिव्यक्ति
क्यों नहीं माना जाना चाहिए ?
व्यक्ति
चाहे वह राजपुरुष हो या
इतिहास-पुरुष अथवा
पुराण-पुरुष
मानवीय देश-काल से ऊपर नहीं होता राम!
इतिहास से भी बड़ा मूल्य है
सत्य—
परात्पर सत्य, ऋत—
और
यही तुम्हारी चरित्र-मर्यादा है
ऋतम्भरा व्यक्तित्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिइतिहास और तन्त्र

राम विचारमग्न, गवाक्ष के पास खड़े हैं। भरत, लक्ष्मण और मन्त्री राष्ट्रवर्धन प्रवेशते हैं। सभासदों की बैठक से बीच ही राम चले आये थे। इन लोगों की आहट पाकर वह उनकी ओर मुड़ते हैं उपरान्त आसन पर बैठ जाते हैं। उनका आदेश पाकर शेष लोग भी विभिन्न आसनों पर बैठ जाते हैं।

राम: क्या हुआ?
सभा ने क्या निर्णय लिया?
भरत: उचित कार्यवाही आवश्यक है।
मन्त्री: प्रभु से यही निवेदन करना था।
राम: उचित कार्यवाही ?
कैसी ?
मन्त्री: पता चला
वह साधारण धोबी है
लक्ष्मण: हाट में दोषारोपण करते
उसे लोगों ने सुना है।
राम: व्यक्ति वह साहसिक है।
लक्ष्मण: यह साहस नहीं
दुस्साहस है।
राम: भरत!
तुम्हारा न्याय क्या कहता है?
भरत: निश्चय ही
यह अनधिकार चेष्टा है।
राम: केवल इसलिए कि
उसने सीता के चरित्र पर तर्जनी उठाई?
मन्त्री: यह क्या कम है?
राम: पर
यदि वह ऐसा ही दोष
किसी अनाम नारी पर लगाता, तो?
भरत: न्याय की दृष्टि में
वह भी अनधिकार चेष्टा ही होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मण: देवि की तुलना
किसी अन्य से करना......
राम: हममें से किसी को प्रिय नहीं;
परन्तु राज्य को ?
लक्ष्मण!
हमारे इन राजसी कानों तक
कभी किसी अनाथ
नारी की
असहाय अवमानना आयी है?
राज्य की यह आतुरता
कर्मठता
केवल सीता
या हमारे ही लिए क्यों?
क्यों नहीं
जंगल में लकड़ियाँ बीनने वाली
असहाय
अनाम नारी के लिए
यह तुम्हारी सर्वसत्तात्मक
राजशक्ति तत्पर होती?
लक्ष्मण!
राज्य या न्याय
सम्बन्ध नहीं होता।
सत्ता के गोमुख पर बैठकर
उसके सारे शक्ति-जलों को
अपने ही अभिषेक के लिए
सुरक्षित रखना—
वह कौन-सा दर्शन है लक्ष्मण?
भरत: आप ठीक कहते हैं प्रभु!
राजा को
न्याय को समग्र मानवता के
विशाल परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम: लक्ष्मण!
तुम्हारे राजभट
उसे बन्दी बनाने के लिए
अब तक चल दिये होंगे।
लक्ष्मण: सभा के निर्णय की प्रतीक्षा थी...
मन्त्री: अतः कल प्रातःकाल जाएँगे।
राम: सभा की दृष्टि में
यह गम्भीर अपराध है न?
भरत: अपराध ही नहीं
यह राजद्रोह है
राम: राजद्रोह??
एक सर्वविदित घटना को कहना
राजद्रोह है भरत ?
लक्ष्मण: देवि की अग्नि परीक्षा हो चुकी है...
राम: फिर भी
यदि किसी को शंका हो, तो?
भरत!
क्या यही न्याय है ?
भरत: न्याय समदर्शी होता है प्रभु!
राम: केवल समदर्शी ही नहीं
उसे तत्वदर्शी भी होने दो।
राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर
राज्य और न्याय को
प्रतिष्ठापित होने दो भरत !
यदि ये तत्वदर्शी नहीं होते
तो एक दिन
निश्चय ही ये भय के प्रतीक बन जाएँगे;
और
तब कौन इसमें
प्रजा बनकर रहना चाहेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत!
प्रजा के भी अधिकार होते हैं।

मन्त्री: बिना कर्तव्यों के
अधिकारों का कोई अर्थ नहीं।

राम: तब मंत्रीवर!
प्रजा का ही
यह कर्तव्य भी है कि
अधिकार में डूबे राज्य और
राजपुरुषों से कहे,
न हो आग्रह करे कि
क्या शुभ है, और
क्या अशुभ।

भरत: प्रभु!
क्या उस धोबी का
यह कर्तव्य नहीं था कि
सार्वजनिक रूप से
इतने बड़े दोषारोपण के पूर्व
कुछ सोचता?

राम: और
उसका यह सोचना
हम या राज्य
तभी मानते
जब वह सोचकर—
कुछ नहीं कहता, है न?

लक्ष्मण: राज्य ऐसे नहीं चला करते।

राम: तो भय से भी नहीं चला करते
लक्ष्मण!
गूँगेपन से कहीं श्रेयस है
वाचालता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस दिन
मनुष्य अभिव्यक्तिहीन हो जाएगा
वह सबसे अधिक
दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा।
कैसा ही इतिहास-पुरुष क्यों न हो
लक्ष्मण!
सामाजिक भाषाहीनता
अभिव्यक्ति की इतिहासहीनता का सामना
नहीं कर सकता
लक्ष्मण! नहीं कर सकता।

रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण

इतना अप्रतिम वर्चस्व
अगाध पाण्डित्य
तपस्या से अर्जित परात्पर शक्तियाँ
और निरंकुश व्यक्तित्व

रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

समस्त दिक्पालों, देवताओं
ग्रहों, उपग्रहों तक पर
सारी दैवी और
मानषी सिद्धियों-समस्याओं पर
जिस महामहिम का आधिपत्य था
ऐसे परम मेधावी
महासम्राट, चक्रवर्ती

रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

समुद्रघोष की भाँति
जब वह बोलता था, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञा पालन करती
दिशाएँ
प्रतिध्वनित होती थीं।
पूरे साम्राज्य
देश और काल के मन्वन्तरीय फलक में
केवल उसी के पास
वाणी
भाषा और
आदेश थे,
जबकि
शेष चराचर के पास
केवल झुके मस्तक
और आज्ञा सुनते कान थे।
स्वयं ब्रह्मा
जिसे वेदपाठ सुनाया करते थे
ऐसे विद्याधर-अधिपति
रुद्रप्रिय

रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

दिक्पाल, देवता
नर या किन्नर
गन्धर्व या विद्याधर
कोई था
जो उस कुबेरजित से असहमत हो सकता था?
इस जाज्वल्य आधिपत्य के सम्मुख
सारी भाषाएँ
अभिव्यक्तियाँ
असहमतियाँ
भयातुर विस्फारित नेत्र बन चुकी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रजा
कहाँ थी प्रजा?
प्रत्येक राजपथ
ग्रामपथ पर
राज्य-भय के सधे पैरों की
दिन-रात पहरा देती
आवाजें ही आवाजें,
और
राजाज्ञाओं के विराट
भयातुर मौन में आबद्ध
एक
अकेला स्वर्ण सिंहासन
और उस पर
राज्यभय के
एकमात्र स्वर्ण प्रतीक सा बैठा हुआ
शक्ति का महाउपासक
एक सम्राट

रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

और
तब इस प्रचण्डता के विरुद्ध
एक अनाम साधारणजन की तर्जनी सा
असहमति में
अपने ही एक बन्धु का हाथ उठता है लक्ष्मण!
लगा कि जैसे
धरती को फोड़कर
कोई पुरालेख निकल आया हो
जिसे देख-बाँच कर
शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीली पड़ जाए।
परन्तु शक्ति—
मानवता या बन्धुभाव कुछ नहीं मानती,
वह तो
आधिपत्य का प्रवाह होती है
जो अपनी अन्धी समतलता में
हिल्लोलित रहती है।

अपने ही बन्धु के उठे हाथ को
इतिहासहीन कर देने के लिए
सारे सभासदों
दिक्पालों, देवाओं और
शक्तियों के सम्मुख
वह हाथ
राज्य की देह से
जैसे काट दिया जाता है—
निष्कासित कर दिया जाता है।
झुके मस्तक
और विस्फारित नेत्रों वाली प्रजा में
एक ऐतिहासिक सन्नाटा
मानवीय शंका और
मूल्यगत आसन्नता कौंध जाते हैं।
प्रतिइतिहास को
अभिव्यक्तिहीन
भाषाहीन और
स्वत्वहीन बना देने वाले
अप्रतिम प्रतापी

रावण से बड़ा इतिहास-पुरुष कोई था लक्ष्मण?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन
हमने क्या
मात्र सीता की प्राप्ति के लिए ही
उस आदित्य-प्रभा वाले सम्राट का विरोध किया ?
क्या वह
उद्भट-विकट युद्ध
केवल वैयक्तिकता के लिए ही लड़ा गया था ?
दक्षिण के कोटि-कोटि
नर-किन्नर-वानरों ने
क्या
हमारी किसी पारिवारिक विषमता के लिए
ऐतिहासिक सहयोग दिया था ?
क्या
इतिहास को हमने
वैयक्तिकता के लिए माध्यम बनाया था ?
नहीं
नहीं लक्ष्मण!
अनाम लोगों और
भयातुर, प्रताड़ित प्रजा ने
अपने स्वत्व
स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और
जीवन-मूल्यों तथा आदर्शों के लिए
प्राणार्पण किया था,
एक चक्रवर्ती के विरुद्ध
साधारणता ने
युद्ध का आवाहन किया था।

और आज
जब एक अनाम साधारण जन
हमारी राज्य-गरिमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चरित्र-मर्यादा की ओर
प्रतिइतिहास के प्रकम्पित ध्वज सी
तर्जनी उठाता है
तब मैं
मेरा यह साम्राज्य और
राज्यशक्ति के ये सारे
आधार-स्तम्भ
साधारणता को
इतिहासहीन कर देने का संकल्प करते हैं ?
लक्ष्मण!
तब मुझमें और रावण में
क्या अन्तर रह जाता है ?
नहीं
ऐसा कदापि नहीं होगा बन्धुओ!
मानवीय स्वातन्त्र्य
मानवीय भाषा और
मानवीय अभिव्यक्ति के
प्रतिइतिहास का सामना
वैसी ही
मानवीय प्रतिगरिमा के साथ
करना होगा लक्ष्मण!
प्रतिइतिहास को इतिहास से नहीं
विनय से स्वीकारना होगा।

मनुष्य के बोलने का अर्थ जानते हो ?
यह धूप का महोत्सव
दाक्षिणात्य चन्दनगंधी हवाएँ
गन्धमादन की पुष्पीय विपुलता
वानस्पतिकता का उदार
विपुल परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश-गंगा से लेकर
ग्राम्य-गंगा तक की यह
सम्पूर्ण विराट-विनम्र
सृष्टि—
किसके माध्यम से बोलती है लक्ष्मण ?
कौन है सृष्टि की बाँशी-भाषा ?
बन्धु!
मनुष्य,
एक मात्र मनुष्य ही
सृष्टि की जिह्वा है।

मनुष्य के बोलने का अर्थ जानते हो ?

शेष सबके पास
केवल आभास हैं
ध्वनियाँ हैं
संकेत हैं
परन्तु भाषा—
व्याकरण और अर्थ-गन्ध से युक्त भाषा—
देश और काल को
वहन तथा अभिव्यक्त करने वाली
गायत्री स्वरूप
महाशक्ति
भाषा—
केवल मनुष्य के ही पास है।
चाहे वह देवभाषा हो या
माटी-भाषा;
मनुष्य का भाषाहीन हो जाना
सृष्टि का
ईश्वरहीन हो जाना होगा लक्ष्मण!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सारे मन्त्र
ये सारे काव्य
ये पुराण; ये उपनिषद
ये इतिहास, ये उपाख्यान
सब सम्बोधनहीन हो जाएँगे।
जिह्वाहीन हो जाएँगे लक्ष्मण !
जड़ता
सम्बोधनहीनता ही तो है।

मनुष्य के बोलने का अर्थ जानते हो ?

मनुष्य के बोलने से
प्रकाश
आकाश से अवतरित होता है।
सूर्य और सृष्टि के बीच
ये राज्य
ये इतिहास किसी को मत लाओ
लक्ष्मण! किसी को मत लाओ
ऐसे ही बोलते हुए
एक दिन मनुष्य
निश्चय ही ईश्वर हो जायेगा।

मनुष्य के बोलने का अर्थ जानते हो ?

भरत: तब प्रभु का क्या निर्णय है!
राम: निर्णय ?
प्रतीक्षा करो भरत!
किसी के भाग्य का निर्णय
आसक्त या पक्षधर बनकर नहीं,
बल्कि
निर्वेद की भूमि पर खड़े होकर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय
निर्णय
सबका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।
भरत!
अन्य सारी भूमियाँ
आसक्ति की भूमियाँ हैं—
केवल निर्वेद!!
केवल निर्वेद ही अनासक्ति है!!

[सबका विदा होना]

शक्ति : एक संबंध, एक साक्षात्

शयनागार में मन्द दीपालोक है। अर्धरात्रि का समय। शारदीया चाँदनी स्फटिक सी खिल आयी है। सीता पर्यंक पर बैठी हैं परन्तु राम उद्विग्न भाव से गवाक्ष के पास खड़े हैं। सीता, राम को खिन्न, उदास देख कर बोलने लगती हैं।

सीता: **आज आप उद्विग्न क्यों हैं आर्यपुत्र?**
राम: **उद्विग्न?**
नहीं सीता। उद्विग्न नहीं हूँ।
सीता: **तब चिन्तित होंगे।**
राम: **चिन्तित?**
हाँ, चिन्तित हो सकता हूँ।
सीता: **फिर किसी**
राजनीतिक समस्या अथवा
राजकीय चिन्ता को लेकर?
राम: **व्यक्ति**
राजनीति और राज्य—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें पृथक कर पाना
इतना सरल है सीता?

सीता: लेकिन
व्यक्ति वह कोई हो
उसे इतना अधिक सामाजिक नहीं होना चाहिए।

राम: कितना अधिक?

सीता: इतना कि
वह वैयक्तिक क्षणों में
एक सामाजिक समस्या लगे
और सामाजिक अवसरों पर
वैयक्तिक मुद्रा।

राम: क्या मैं ऐसा लगता हूँ?

सीता: भले ही नहीं।
परन्तु
प्रत्येक स्थिति का
अपना एक एकान्त
एक निजत्व...

राम: तब तो
एक नियति भी कहो सीता!

सीता: क्या सबकी
अपनी-अपनी नियति नहीं होती!

राम: होती है
और उसे हमने भोगा भी है सीता!
वनों में
एकान्त उपत्यकाओं में
वानरों-राक्षसों के बीच
इस नियति को
संभाव्य-असंभाव्य
किस-किस रूप में नहीं भोगा है प्रिये?
तभी तो मैं चिन्तित हूँ, कि
यह कैसा विधान है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम प्रत्येक बार
अथाह
अशान्त समुद्रों को चीर
क्षत-विक्षत
ज्यों ही शान्त तट पर
पहुँचने को होते हैं, कि
एक घटना
एक व्यक्ति
फिर हमें तूफानों के उबलते
उफनतेपन में फेंक जाता है;
और हम
जल की विशाल हिल्लोलता में
विवश नारिकेल से
डूबने-उतराने लगते हैं।
हमारा सारा व्यक्तित्व
सारा पुरुषार्थ
कैसा दिशाहारा हो जाता है सीता!
उस उतने बड़े यात्रा-पुरुषार्थ
और
यज्ञ-अरणियों की भाँति
एक-एक कर तुलते गये,
मानवीय-उद्यम की व्यर्थता
जब आपके सामने
फिर नया संघर्ष खोल दे
तब आप क्या करेंगे?
कोई क्या करेगा सीता?

यह कितनी क्रूर और
अमानुषी लीला है प्रिये!
जो प्रत्येक बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे और तुम्हारे बीच
आकाश की ऊँचाइयाँ छूती
एक अभेद्य
प्राचीन किले की
अन्धी
मृत, बुभुक्षित प्राचीर
प्रतिप्राचीर सी आ खड़ी होती है।
जिससे हम
केवल टकराते हैं।
लौट-लौट कर टकराते हैं
और टूटते हैं
टूटते ही चले जाते हैं।
व्याकुल लहरों का यह टूटना ही
लौटते में
समुद्र बनता जाता है।
यह
मानवीय पुरुषार्थ की विडम्बना नहीं तो
और क्या है सीता!

यही वह पुरस्कार है
जो राज्यों
पदों के रूप में
इतिहास के हाथों
हमें प्राप्त होता है
जो हमें इतिहास-पुरुष बनाता है।
इन ऐतिहासिकताओं के लिए
व्यक्तित्व का यह कितना बड़ा
हाहाकार भरा
दुर्दान्त मूल्य है सीता!
कितना बड़ा!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह महालीला
यह विधान
यह खेल
हमें आद्यन्त मँथ कर
हममें से बीत कर
कल का इतिहास और
भविष्य का पुराण बनता जाता है
सीता! तुम्हें नहीं लगता कि
प्रत्येक क्षण
हमें कोई
झरते पत्रों
खिलते फूलों
टूटते प्रपातों और
तपते मरुस्थलों पर लिख रहा है?
व्यक्ति की
यह कैसी स्वत्वीय उपादेयता है सीता ! कि
काल
उसे अपने उपनिषद में
मात्र एक वाक्य के रूप में उपयोग कर
अज्ञात शून्य में फेंक देता है।

यह क्या है?
यह महालीला
यह विधान
यह खेल
यह प्रारब्ध
ये सब क्या हैं?
ये सब क्यों हैं?

सीता: आप क्या कहना चाहते हैं नाथ!
मैं समझी नहीं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम: प्रकृति का यह विधान
सृष्टि का यह महारास
किसी के समझने के लिए
नहीं सम्पन्न हो रहा है प्रिये!
देखो
कैसा आक्षण
कहीं सशब्द तो
कहीं नितान्त मौन घटित हो रहा है
कहीं वह
माधुरी भाव से उत्सवित है, तो
कहीं रौद्र, कापालिक बनकर
अमांगलिक,
सृष्टि में
मंगल-अमंगल का भेद नहीं होता।

हम
इतिहास की केवल वनस्पतियाँ भर हैं
हमारे चलने से सीता
थोड़ी सी धरती सुन्दर हो उठती है,
हम
सम्भवतः एक छोटी सी सुगन्ध वहन कर सकते हैं
इस,
इससे अधिक कुछ नहीं।
प्रयास कितना ही कर लें
परन्तु इससे अधिक
इतिहास-पुरुष भी नहीं।
कैसा ही पुरुषार्थ
आगत्या सीमा ही है सीता!
और यह महालीला
यह महारास

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विधान
यह खेल
यह प्रारब्ध—
अनन्त देवगंगाओं के पार भी
असीम है
अक्षत है।

सीता: लगता है
यह किसी घटना की भूमिका है
क्योंकि बाहर जाने के पूर्व
व्यक्ति
भीतर की यात्रा सम्पन्न करता है।
जितना दूर जाना होता है
उतना ही स्वत्व में पैठना होता है
आर्यपुत्र!
आपको नहीं लगता कि
विपरीतता ही उत्सव है?

राम: तुम्हें ऐसा लगता है?
सीता!
यहाँ केवल निमित्त बदलते हैं
और कुछ नहीं।
एक ही नाटक
व्यक्ति के जीवन में
बारम्बार दुहराया जाता है।
स्थान बदल सकते हैं
भूषाएँ, मुद्राएँ भी बदल सकती हैं
पर नाटक
वस्तुतः वही रहता है
चाहे वह पंचवटी हो
या अयोध्या का राजभवन।
जो नहीं बदलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे मुख्य पात्र हैं।
मात्र निमित्त
परिवेश के बदले जाने से
परिणाम नहीं बदला करते सीता!

सीता: आपकी इन बातों का
क्या प्रयोजन है आर्यपुत्र?

राम: सीता!
तुम्हें नहीं लगता कि
हमारे वाद्य में
केवल
एक ही राग आज तक बजता रहा है—
विषाद का?
तुम्हें प्रत्येक बार
चाहे वह विवाह हो
या युद्ध
पाने की चेष्टा में
खोता ही गया हूँ प्रिये!
द्वार पर
एक अनाम साधारण जन
फिर साँकल बजा रहा है
यही वह आवाज है
जिसे मैं नहीं सुनना चाहता था
परन्तु
यह कैसा नाटक है सीता!
जहाँ कोई अभिनेता स्वतन्त्र नहीं!
भले ही हमारे द्वार पर
रावण दस्तक दे
या अनाम साधारण जन।
कभी इस प्रकार के मांगलिक आरम्भ की
कल्पना की थी प्रिये! कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तपदी के बाद
तुम्हारे ये रक्त अलक्तक चरण
इक्ष्वाकुओं के राजभवन के
संगमरमरी सुगन्धित दालानों में नहीं
वरन
निषाद, गुह और राक्षसों से भरे
असुरक्षित
अगम अरण्यों की ओर बढ़ेंगे?
चीनांशुक वल्कल में परिणत हो जाएगा
और हम
अपने राजसी कुल-गोत्र को
खण्डित यज्ञोपवीत की भाँति उतार
साधारण अनामता धारण कर
नितान्त पृथिवीपुत्र कर दिये जाएँगे।
हमारे वैवाहिक जीवन का
यह कैसा राजसी समारम्भ था प्रिये!

कभी इस प्रकार के मांगलिक आरम्भ की
कल्पना की थी वैदेही! कि
सब कुछ वही रहता है—
बन्धु, कुल-कुटुम्ब
परिवार-पुरजन
राज्य-साम्राज्य
सब कुछ वही रहता है
केवल हम ही
असंख्य पगडण्डियों भरी
धरती की विस्तीर्णता में
वनस्पतिवत खड़े कर दिये जाते हैं
जैसे
हम यात्रा करते वृक्ष हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वेच्छा से वरण कर लिये जाने पर
निष्कासन
उपेक्षा, अवमानना
सब तपस्या हो जाते हैं सीता!
पर
इससे उनकी प्रकृति
या परिणाम नहीं बदल जाते।
हमारे सबकी शक्ति
केवल सन्दर्भ की शक्ति है सीता!
सन्दर्भ की पहचान खोकर
हमारे पास
केवल साधारणता बचती है।
कभी इस प्रकार के मांगलिक आरम्भ की
कल्पना की थी वैदेही?

अत्यन्त आभारी हूँ
उस अदृश्य का
जिसके कारण
पृथिवी
पृथिवी के अनाम
असंख्य साधारण लोग और
कष्टों भरे जीवन से परिचित हो सका।
क्या मैं राजकुमार
या सम्राट बनकर
इस साधारणता का कभी साक्षात कर सकता था?

सीता!
सुख का एक ही प्रकार होता है
परन्तु दुःख
कैसा बहुरूपी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं भी चले जाओ
किसी का भी द्वार खटखटाओ
केवल दुःख की ही प्रतिध्वनि आएगी
सीता!
सम्भवतः दुःख ही प्रभु है।
सुखी है वह निषाद
सुखी है वह शबरी
जो पदार्थ भाव से ऊपर हैं;
परन्तु हम तो
देश और काल की
समस्त प्रभुता
सम्पन्नता और सम्पदा
अपने अंग पर धारण करना चाहते हैं।

हम का यह विस्तार
हम की यह प्रभुता ही
आसुरी भाव है
रावणत्व है।

उस स्वर्णप्रिय सम्राट के लिए
तुम
मात्र कौस्तुभ थीं।
पृथिवी-श्री को
वह पदार्थप्रिय, राज्यश्री बनाना चाहता था।
वह तुम्हारे परात्पर शक्ति स्वरूप से
सर्वथा अपरिचित था
तभी तो वह समुद्रजित
तुम्हारे तिनके की ओट नहीं लाँघ सका।
अनाम घास की पत्ती की वह ओट
मन्वन्तरों की दूरी थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें वह नगण्य हो गया था।
तुम
उसके व्यक्तित्व की स्वाहा थीं;
युद्ध तो केवल
ऐतिहासिक पुष्टि के लिये हुआ था।

सीता!
आज फिर एक अनाम साधारण जन ने
तुम्हारी चरित्र मर्यादा की ओर
तर्जनी उठायी है।
मैं जानता हूँ
मन्त्र-शक्ति से अपरिचित व्यक्ति का
मन्त्रोच्चारण करना क्या होता है।
पर
इतिहास और पुराण की सन्धि पर खड़ा
मैं
घटनाओं का कोलाहल सुन रहा हूँ।
नहीं जानता कि
पौराणिक उपाख्यान बनना श्रेयस होगा
अथवा ऐतिहासिक तारीखें।
यह कैसी विडम्बना है प्रिये! कि
शक्ति का उत्तर तो
प्रतिशक्ति से दिया जा सका
परन्तु
इस सर्वथा साधारणता का
क्या उत्तर हो सकता है?
साधारणता के इस
नारायण को
किस प्रतिनारायण की अपेक्षा है सीता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता: मुझे अवगत था
आर्यपुत्र!
आरम्भ से ही मुझे इसकी प्रतीति थी
कि मुझे
इतिहास और
इतिहास-पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा सा खड़ा होना है।

जिस दिन
प्रथम बार पुष्पवाटिका में
आपके आकाशवर्णी पुरुष को देखा था—
क्षणान्त में ही
मेरे रोम-रोम
शिरा-उपशिरा
आकण्ठ व्यक्तित्व में
यह गायत्री-सत्य
अनुस्यूत हो गया था, कि
मैंने किसी
सामान्य राजकुमार के नहीं
वरन
एक यज्ञ-पुरुष के दर्शन किये हैं,
क्योंकि उस व्यक्तित्व की गन्ध में
फूलों की कमनीयता तथा
मन्त्रों की पवित्रता थी।

विशालता और वैराट्य
भिन्न दिशाओं की ओर जाने वाली
भाव भूमियाँ हैं।
मैं पृथिवी और
आप आकाश—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी युति
हमारी सन्धि
सदा अप्राप्य क्षितिज ही रहेगी,
परन्तु
इसके अतिरिक्त
पृथिवी अथवा
पृथिवीसुता की अन्य कोई गति भी नहीं आर्यपुत्र!
एक ही अयन में
सूर्य का अपनी रात्रि के साथ
परिक्रमा करना—
यही तो हम हैं आर्यपुत्र!

पिनाकजयी के ऊर्ध्व वैराट्य को
पृथिवीसुता की विशालता
कैसी ही माला की मेखला
क्यों न डाल दे
आकाश
अप्राप्य ही रहता है।
भोग—
योग को
अनासक्ति की
स्वयं भस्म होकर
केवल आच्छादित कर सकता है
परन्तु
उसे आसक्ति में परिणत नहीं कर सकता।

एक सीमा तक ही
पृथिवी
ऊर्ध्वगामी हो सकती है
और ऊर्ध्व वैराट्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना ही विनम्र
आसक्त, कृपावान
क्यों न हो जाए
क्षितिज पर पहुँच कर
फिर असंग
अनासक्त
नील आकाश हो जाने के लिए बाध्य है।
पृथिवी की नियति ही है कि
उस पर
पदचिह्नों के अधूरे आलेख
विस्मृत गाथाएँ और
आख्यान ही आख्यान लिखे हों
चाहे वह मात्र दुःख के ही क्यों न हों।
जबकि आकाश
पक्षियों को लौटा कर
सारे मेघवस्त्रों को उतार
सम्बन्धहीन
अनागारिक संन्यासी की भूमिका में
शोभा पाता है।

जब प्रकृतियाँ विपरीत होती हैं
जब नियतियाँ भिन्न होती हैं
तब आर्यपुत्र!
ये इतिहास के नहीं
पुराण के लक्षण होते हैं!
तब यही होता है—
वह राज्याभिषेक में विघ्न
वह वनवास
वह पंचवटी
वह अशोक-वाटिका वाली प्रतीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह युद्ध
यह सम्राज्ञी स्वरूप
मेरा आज का
यह आसन्न मातृत्व
सब मात्र पड़ाव हैं
यात्रान्त नहीं
पटाक्षेप भी नहीं।
यह नहीं लगता कि
ये सारी घटनाएँ
ये प्रसंग
हमारे दाम्पत्य जीवन के अविभाज्य अंग थे
बल्कि
किसी प्राचीन उपाख्यान के लगते हैं—
जिनकी हमें स्मरण है।

आर्यपुत्र!
किसी के मोह का
यहाँ कोई अर्थ नहीं
और
फिर आप??
जो जीवन भर
इतिहास की प्रत्यंचा पर
केवल
बाण की मर्यादा बन
चढ़ा रहा
और असंग भाव से
दिशाएँ सन्धानित करता रहा
भले ही वह दिशा
पिता की रही हो
अथवा माता की
परिवार की रही हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा पत्नी की,
राज्य की रही हो
अथवा बनवास की,
मित्र की रही हो
अथवा शत्रु की—
बाण की तरह
जिसके लिए जीवन
निरन्तर सन्नद्ध युद्ध का पर्याय रहा हो
उसके लिए तो मोह
दीमक खाये आच्छद की भाँति है
जिसे वृक्ष तक नहीं सहन करते !
व्यक्ति
जब इतिहास को समर्पित हो जाता है
तब ऐसी त्रासदी का घटना
अनिवार्य हो जाता है आर्यपुत्र!
क्योंकि
इतिहास उसे और
वह इतिहास को
निरन्तर तराशते रहते हैं
और
दोनों टूटते हुए निर्मित हो से जाते हैं।
मैंने आपको
इतिहास से व्यवहार करते देखा है
और इस तराश में
आप जितने टूटे तथा
निर्मित हुए हैं
उसकी मैं साक्षी भी रही हूँ आर्यपुत्र!
समुद्र को बाँधने से भी
बड़ा तथा
रावण के विरुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनमत को तैयार करना,
और उससे भी कहीं अधिक
दुष्कर था
रावण के विरुद्ध उसे
एक प्रतिइतिहास-शक्ति के रूप में
निर्णयात्मक स्थिति में खड़ा कर देना;
परन्तु आर्यपुत्र!
व्यक्ति
जब इतिहास को समर्पित हो जाता है
तब ऐसी त्रासदी का घटना
अनिवार्य हो जाता है
क्योंकि
इतिहास
घटनाओं के बीत जाने पर
उस खाली तूणीर जैसे व्यक्ति को
मात्र एक शीर्षक के रूप में प्रयोग कर
आगे बढ़ जाता है और
पृष्ठ पलट जाता है

आज यह चिन्ता क्यों?
आप में कब वैयक्तिकता थी आर्यपुत्र?
किस दिन
हमने नितान्त वैयक्तिक जीवन जिया?
इतिहास ने
यज्ञ-पुरुष को कब एकान्त दिया?
राजभवनों में
व्यक्ति नहीं
इतिहास-पुरुष चला करता है आर्यपुत्र! और
मार्गों, वनों, तपोवनों में
यज्ञों-ऋषियों का रक्षक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके लिए
हम या
हमारे ये सम्बन्ध
कब अर्थ रखते थे?
मैं जानती थी आर्यपुत्र! कि
इतिहास के निर्माता
घर-परिवार की भाषा में
बातें नहीं किया करते
उन्हें तो दुर्गों, प्रासादों और युद्धों का व्याकरण ही
कण्ठाग्र होता है,
तभी तो
आरम्भ से ही मैंने
आपको नहीं
स्वयं को बन्धन में बाँधा
क्योंकि
मुझे तो
इतिहास और
इतिहास-पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा सा खड़ा होना था।

एक अनाम साधारणजन ने
मेरी चरित्र-मर्यादा की ओर
तर्जनी उठायी है
और आपकी राज्य-गरिमा
किस आसक्ति के कारण व्याकुल
और क्यों?

राज्य न्याय और राष्ट्र
व्यक्तियों तथा
सम्बन्धों से ऊपर होने ही चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि
यह उस
अनाम साधारणजन का विश्वास है
जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्त किया है
तो राज्य, न्याय तथा आपको
उस अनाम प्रजा के विश्वास की
अभिव्यक्ति की
रक्षा करनी चाहिए।
भले ही वह अकेला स्वर क्यों न हो
भले ही वह किसी आप्तजन का विश्वास न हो
भले ही उसके कारण
मुझ पर
या राज्य के शीर्षतम व्यक्ति पर ही
आँच क्यों न आती हो
आर्यपुत्र!
यदि सभासद
मन्त्री और आपके बन्धु
उसके साथ अन्याय कर रहे हों, तो
आपको
मुझे और
इस राज्य को भी त्याग कर
उस अकेले व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करना चाहिए।
मैं या
कोई भी
राष्ट्र-न्याय और सत्य से बड़ा नहीं।
मेरी ओर से
आपको सर्वथा आश्वस्त होना चाहिए आर्यपुत्र! कि
आसन्न मातृत्व के
इस संकट की स्थिति में भी
मैं आपकी राज्य-गरिमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपनी चरित्र-मर्यादा के लिए
कोई सी भी परीक्षा दे सकती हूँ
पर प्रजा के विश्वास की
निर्भय अभिव्यक्ति की रक्षा अनिवार्य है।

साधारणता के इस नारायण को
आर्यपुत्र!
न्याय के प्रतिनारायण की अपेक्षा है
और मुझे भी!!

[राम अवाक देखते रहते हैं]

प्रतिइतिहास और निर्णय

राजदरबार।

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, मन्त्री-परिषद के सदस्य, अन्य सभासद तथा कुछ विशिष्ट जन आज के इस असामान्य ऐतिहासिक दरबार-आयोजन में उपस्थित हैं। पृष्ठभूमि में राम की जयकार होती है। महाराज राम दरबार में उपस्थित होते हैं। प्रतिहारी उद्घोषणा करता है। सब उठ खड़े होते हैं। राम के सिंहासन पर बैठने के उपरान्त शेष सब यथास्थान बैठ जाते हैं। दरबार में कुछ क्षण को हलचल होती है। वातावरण अत्यन्त गम्भीर है। महाराज पर परिचारिकाएँ छत्र-चामर डुला रही हैं।

लक्ष्मण उठकर न्याय-मंच पर पहुँचते हैं। सभा में पूर्ण निस्तब्धता छा जाती है।

लक्ष्मण: महाराज!
गुरुवर वशिष्ठ जी!
मन्त्रीगण!
सभासद वर्ग! तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य उपस्थित जन!
महाराज की आज्ञा तथा
मन्त्री-परिषद एवं सभासद वर्ग की ओर से—
अभियुक्त की अनुपस्थिति में,
जिसे महाराज की इच्छा के विरुद्ध
न्याय को बाध्य होकर बन्दी बनाना पड़ा,
उस अभियुक्त के सम्बन्ध में
गम्भीर अभियोग के रूप में
मैं
एक ऐतिहासिक प्रतियोग प्रस्तुत करना चाहूँगा।

सभा तथा मन्त्री-परिषद ने
स्थिति की गम्भीरता और
प्रवाद की प्रासंगिकता तथा
अवसर के औचित्य को ध्यान में रखकर तथा
उससे उत्पन्न हो सकने वाले
भावी परिणामों की सम्भावना देखकर
विचार किया और
अपना तर्कसंगत तथा न्यायपूर्ण अभिमत
महाराज तक निवेदित किया।

एक अनाम साधारण धोबी ने
सार्वजनिक रूप से
सम्पूर्ण अनुत्तरदायित्वता के साथ
महादेवी सीता के
परीक्षित अकलंक चरित्र पर
अविवेक पूर्ण शंका उठायी है
जिसका
न कोई अवसर था और
न ही कोई मूल्यगत प्रयोजन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें और
आप सबको
जो यहाँ उपस्थित हैं तथा
वे, जो यहाँ अनुपस्थित हैं
यह विदित ही है कि
महाराज तथा राज्य ने
इस सहज, सामान्य मानवीय शंका के
निवारण हेतु
अनपेक्षित ही
देवि की
पहले ही अग्निपरीक्षा
सार्वजनिक रूप से ले ली थी।
यह मेरा निज का अभिमत है
परन्तु सम्भव है बन्धुओ!
आप सब भी
इससे सहमत हों कि
इस अनपेक्षित, अवांछित
अग्निपरीक्षा के द्वारा
हमने
महादेवी के उज्ज्वल, निष्कलुष
देवता-तुल्य स्फटिक चरित्र के प्रति
न केवल
अविश्वास ही प्रकट किया
बल्कि
उनके नारीत्व का अपमान भी।
उनके स्वत्व के तिरस्कार को
न्यायोचित ठहराने के लिए
हमारे पास
न तो कोई विधि-सम्मत तर्क है और
न ही कोई बचाव की भाषा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें
अगत्या स्वीकार ही करना होगा बन्धुओ! कि
हम इतिहास-दोषी हैं।
प्रकारान्तर से
हमारे इस अमानुषी कृत्य के द्वारा
समस्त नारी जाति के चरित्र और स्वत्व पर
कभी न मिट सकने वाला
एक ऐतिहासिक प्रश्नचिह्न लगा।
मानवता
हमें चाहे और किसी बात के लिए
स्मरण न करे,
समय
हमें चाहे इतिहासहीन कर दे
परन्तु बन्धुओ!
भावी मानवता और इतिहास
अकेले इस कर्म के लिए ही
हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे।

मैं यह स्पष्टीकरण नहीं दे रहा हूँ
बल्कि मित्रो!
एक कठोर मानवीय वास्तविकता को
रेखांकित करना चाहता हूँ, कि
हम सबको
अनेक अनसोचे कारणों,
सामाजिक दबावों,
यथार्थ के दुराग्रहों तथा
कल्पनाप्रसूत ऐतिहासिक इच्छाओं के सम्मुख—
सम्पूर्ण अनिच्छा के बावजूद
न केवल
नतमस्तक ही होना पड़ता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि
अनेक अप्रिय
अमानुषी कार्य भी सम्पन्न करने होते हैं—
युद्ध
ऐसा ही एक अमानुषी उदाहरण है।
इतिहास और पुराण
मेरी इस बात के
प्रमाण तथा साक्षी हैं कि
राजमुकुट वाले शीर्षजनों से लेकर
नंगे पैरों चलने वाले व्यक्ति तक—
नतमस्तक तथा इतिहास-विवश होने के लिए
बाध्य हुए हैं।

फिर भी बन्धुओ!
आप सबकी सहमति तथा आज्ञा से
हमारी उस इतिहास-विवशता तथा
ऐतिहासिक अप्रिय कार्य के लिए
इस अवसर पर
मैं
महादेवी सीता से
विनम्र क्षमाप्रार्थी हूँ।

यह कैसी विवशता है मित्रो! कि
उसी अग्नितपी
महिमा-मण्डित
पूर्णपरीक्षिता महादेवी के
देवता-तुल्य तेजस्वी चरित्र पर
एक अनाम साधारण जन
फिर अपनी शंका-तर्जनी उठाता है।
आप इसे क्या कहेंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास
इस अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण को
किस रूप में स्मरण करेगा?

मैं मानता हूँ कि
इस अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण की
उपेक्षा की जा सकती थी
की भी जानी चाहिए थी;
क्योंकि
यह न केवल अशोभनीय ही नहीं है,
यह न केवल अन्यायपूर्ण ही नहीं है,
यह न केवल असम्मानजनक ही नहीं है,
बल्कि
यह एक विश्वासपूर्ण विद्वेष है
यह एक सुनियोजित अभिव्यक्ति है।
तब—
क्या इसकी उपेक्षा की जा सकती थी?
तब—
क्या इसकी उपेक्षा की जानी चाहिए थी?

षड्यन्त्र न भी सही
तो भी
इस शंका के
राज्य और राष्ट्र के सन्दर्भ में
दूरगामी गम्भीर परिणाम निकल सकते थे।
बन्धुओ!
स्वाधीनता और
अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का अर्थ
यही नहीं होता कि
हम अपने व्यक्तिगत राग-द्वेषों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधारहीन अभिमतों
वक्तव्यों और शंकाओं को
सार्वजनिक रूप से
आक्षेपात्मक वाणी दें
जिससे
सामान्य जन-जीवन
राज्य और राष्ट्रीय गरिमा तथा
शीर्षतम व्यक्तियों की चरित्र-मर्यादा पर
आँच आये।

यह स्वाधीनता नहीं है बन्धुओ!
स्वतन्त्रता का अर्थ
अराजकता नहीं होता।
अराजकता
अपराध से भी गम्भीर होता है
क्योंकि
वह राजद्रोह की जननी है
यदि
यह मात्र अपराध होता
तो मन्त्री-परिषद का न्याय और निर्णय
सर्वोपरि होता,
परन्तु आप भी मुझसे सहमत होंगे बन्धुओ! कि
यह राजद्रोह है।
इसके कारण
चारित्रिक, नैतिक तथा मूल्यगत
संस्कारों तथा मान्यताओं पर
उस शंका-तर्जनी ने
विद्वेषपूर्ण
एक ऐतिहासिक प्रश्नचिह्न लगा दिया है
जिसकी उपेक्षा या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवमानना करना
राष्ट्रीय तथा
सामान्य जन-जीवन की दृष्टि से
पहले वाले से भी अधिक गुरुतर
हमारा ऐतिहासिक अपराध होगा।

अतः मैं
मन्त्री-परिषद
सभासद वर्ग तथा
आप सब की ओर से
महाराज से निवेदन करूँगा कि
एक सामान्य जन की
अनुत्तरदायित्व तथा विद्वेषपूर्ण शंका तथा
राष्ट्र की शीर्षतम नारी की चरित्र-गरिमा को
प्रतिसम्मुख रखकर
अपना निर्णय दें।

न्याय
व्यक्तियों को नहीं,
सम्बन्धों को नहीं, बल्कि
उत्पन्न स्थितियों को देखता है, और
हमें तथा
इतिहास को इसी की प्रतीक्षा है:

[दरबार में निस्तब्धता छा जाती है। लक्ष्मण अपने आसन पर लौट आते हैं। राम, तब विचारमग्न भाव से, न्याय-मंच की ओर बढ़ते हैं। दरबार यथावत आसन्न है।]

राम: गुरुवर!
मन्त्रीगण!
सभासदवृन्द और सज्जनो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य या न्याय
धर्म या नैतिकता
इतिहास या पुराण
ज्ञान या दर्शन
इन सबकी
दृष्टियों का, गन्तव्यों का
अर्थ और प्रयोजन
क्या मनुष्यता से ऊपर या इतर
हो सकता है?
मानवीय जगत से बड़ी है
प्राणिमात्र की सृष्टि।
इतिहास से भी अधिक महत्वपूर्ण है
सृष्टि के
वे वानस्पतिक उपाख्यान
जो भाषाहीन भाषा में लिखे जाते हैं
जो घटनाहीन घटना में घटित होते हैं।
इसीलिए
जब कोई व्यक्ति विशेष
इतिहास के
घटना-कवच उतार कर
सृष्टि की
वल्कली संस्पर्शिता को स्वीकार करता है
तब
वह ईश्वरत्व की ओर अग्रसर होता है।
इस सृष्टि का
इस पृथिवी का एकमात्र महोत्सव है—
मनुष्य का ईश्वरत्व की ओर अग्रसर होना।

महानुभावो!
राज्य या न्याय—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र की इच्छा
आशा-आकांक्षा
सम्मान और गरिमा के प्रतीक होते हैं;
न कि किसी व्यक्ति विशेष के,
भले ही वह व्यक्ति
राज्याधिपति हो अथवा राजवंशी
ऋषि हो अथवा पृथुग्जन
विशिष्ट हो अथवा साधारण।
किसी की वैयक्तिकता नहीं
वरन
सम्पूर्ण की समग्रता ही राष्ट्र है।
निर्वेद की इस पीठिका पर खड़े होकर
राज्य, न्याय
राष्ट्र, इतिहास और
मानवीय आचरण को देखने पर
मन्त्री-परिषद के अभिमत से सहमत होना
मेरे ही लिए नहीं
किसी के लिए भी कठिन होगा।

महानुभावो!
सीता की चरित्र-मर्यादा पर
शंका की तर्जनी उठाना
राजद्रोह कैसे है?
यदि किसी ने
इस आचरण पर
न्यायिक आपत्ति उठायी होती
तो अपराध तो हो सकता था
परन्तु
यह राजद्रोह कैसे है?
राजद्रोह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति के विरुद्ध होता है या
राष्ट्र के?
क्या मन्त्री-परिषद का अभिमत है कि
मैं या सीता-राष्ट्र हैं?
नहीं—
अधिपति होने का अर्थ
राजा तो है
पर राष्ट्र नहीं।
जिस दिन भी
ऐसा मान लिया जाएगा।
महानुभावो!
इतिहास की वह सबसे गलत परम्परा होगी।
रावण
राष्ट्र का प्रतीक बन चुका था
इसीलिए लोगों के वर्चस्व ने
राष्ट्रीय मुक्ति के लिए युद्ध किया।

यह कहना कि
सीता की अग्नि-परीक्षा लेकर
हम इतिहास-दोषी हैं—
यह व्यक्ति के चरित्र की
अभिव्यक्ति की उदात्तता है
जिसका सम्मान किया जाना चाहिए,
परन्तु
हमें यह न भूलना चाहिए कि
राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य
ज्ञात-अज्ञात रूप में
राष्ट्र के लिए परीक्षा देता है,
होम होता है।
जब कोई पृथुज्जन या साधारण जन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधपेट खाकर रह जाता है
तो उसके चरित्र की
यह धैर्य-परीक्षा—
सीता की अग्नि-परीक्षा से
किस अर्थ में कम है?
तब
क्या हम उसके लिए भी
इतने ही इतिहास-दोषी नहीं हैं?

और महानुभावो!
क्या स्वर्गीय राजराजेश्वर महाराज दशरथ ने
आदर्श पितृत्व तथा
वचन की रक्षा के लिए
मरण स्वीकार कर परीक्षा नहीं दी?
स्वयं लक्ष्मण का
आदर्श अनुजत्व की स्थापना के हेतु
स्वेच्छया वल्कल धारण करना क्या था?
नन्दीग्राम के
आत्मनिर्वासित भरत के संयम से बड़ी
अनुशासन की
कौन सी परीक्षा सम्भव है?
तीनों माताओं
उर्मिला, माण्डवी
सारे के सारे रघुकुल सदस्यों को,
अयोध्या की जनता को
कौन सी परीक्षाएँ नहीं देनी पड़ीं?

हम सब इतिहास-दग्ध
इसीलिए तो हुए कि
हमारे राष्ट्र का वर्चस्व अक्षुण्ण रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब
केवल सीता की अग्नि-परीक्षा के लिए
यह आत्म-प्रवंचना क्यों?
यह ऐतिहासिक क्षमा-प्रार्थना किसलिए?
किसी भी क्षण
किसी के भी द्वार पर
कैसी ही परीक्षा के लिए
क्या राष्ट्र और इतिहास
दस्तक देते नहीं खड़े होते हैं?
क्या युद्ध
राष्ट्र और इतिहास के लिए दी गयी
समाज की
ऐसी ही अग्नि-परीक्षा नहीं होती?
तब
इना क्षमा-प्रार्थनाओं का क्या औचित्य है?

महानुभावो!
उस अनाम साधारण जन के
तर्जनी उठाने में
सम्भव है
कोई औचित्य न हो
परन्तु
चूँकि वह तर्जनी अकेली है
अतः उसकी सत्यता पर सन्देह भी स्वाभाविक है
लेकिन
इतिहास के प्रवाह से अकेला पड़ जाना
किस तर्क से दोष है महानुभावो?
वह व्यक्ति गलत हो सकता है
पर उसे विद्वेषपूर्ण बताना
हमारी अमानुषिकता होगी।
और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अकेलेपन की स्थिति को
दण्डित करना तो
नितान्त अन्याय होगा।

स्वाधीनता या
अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का दुरुपयोग
यदि अनुत्तरदायित्वपूर्ण वाचालता है
तो, महानुभावों!
कायरतापूर्ण सहमति
उससे भी बड़ा दुरुपयोग है।
असहमति का अर्थ
निरंकुशता
अराजकता या राजद्रोह नहीं होता
और वह साधारण जन
क्या निरंकुश है?
क्या अराजक है??
क्या राजद्रोही है???

निश्चय ही
असहमति भी एक मत है
अभिव्यक्ति धारणा है।
रावण के लिए
विभीषण की असहमति
भय का कारण थी,
क्यों थी?
इसलिए कि
इतिहास से उठाकर फेंक दिये जाने का
उसे भय था
परन्तु
क्या मेरे लिए
ऐसा कोई भय है?
और यदि है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो महानुभावो!
मुझमें और रावण में तब कोई अन्तर नहीं।
या तो राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य स्वाधीन है
या फिर स्वाधीनता
केवल कपोल-कल्पना है।

शंका का उत्तर
केवल निर्भयता ही हो सकती है
और व्यक्ति—
पद, मर्यादा, अधिकार
सब कुछ का त्याग कर ही
निर्भय हो सकता है।

उस अनाम साधारण जन के आग्रह का उत्तर
सीता—
त्याग के उदात्त चरित्र के तथा
निस्पृह सौम्यता के
प्रतिआग्रह के द्वारा ही दे सकती हैं;
प्रत्येक ऐसी परीक्षा हमें अद्वितीय ही बनाती है।

अत:
कल सूर्योदय के साथ ही
सीता
वनवास के लिए प्रस्थान करेंगी।
वनवास-काल में
वह किसी भी राजकीय पद
मर्यादा, सुविधा और सुरक्षा की अधिकारिणी नहीं होंगी;
और सीमान्त तक
लक्ष्मण उनके रथ का सारथ्य ग्रहण करेंगे।

[सब अवाक रह जाते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वेद विदा

सूर्योदय हो रहा है। सीता को लेकर लक्ष्मण रथ पर चले जा रहे हैं। राम दूर जाते रथ को खिन्न तथा उदास मन से देख रहे हैं।

स्वगत :

राम! यह कैसा दृश्य तुम देख रहे हो?
आम्र-कुंजों के बीच से जाता
श्वेत घोड़ों वाला
प्रिया का यह राजरथ
और
यात्रा को अस्वीकारती
तुम्हारी ओर
उड़ आने को आकुल
उसकी यह प्रकम्पिता पताका
(क्या यह सीता का मन सम्भव है?)
प्रत्येक क्षण
दूरियों के जल में डूब जाने के लिए
तुम्हारे ही आदेश पर
अनुज के सारथ्य में चला जा रहा है!
क्या
किसी दिन
इसी प्रकार गवाक्ष में खड़े
इस रथ का लौटना देख सकोगे राम?
राम! यह कैसा दृश्य तुम देख रहे हो? ?
यज्ञ के चरुपात्र सी पवित्र तथा
मांगलिक सीता को
लक्ष्मण
तुम्हारी राज्य-सीमा पर
तुम्हारे ऐतिहासिक निर्णय के
प्रतीक स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काग-ग्रास सा रख आएँगे।
व्यक्ति का
निर्वैयक्तिक उदार चरित में परिणत हो जाना
संन्यासी की गैरिकता से भी
अधिक भयानक होता है राम!
वाद्य के टूटने के साथ
उसका बजता हुआ राग भी टूट जाता है।
तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन की पुरुषार्थता
सारी ऐतिहासिक सदाशयताओं की
यही इतिश्री है राम! कि
यज्ञ के चरुपात्र सी पवित्र तथा
मांगलिक सीता को
तुम्हारे सीमान्तों पर
लक्ष्मण!
काग-ग्रास सा रख आएँ।

राम! क्या कभी इसकी कल्पना थी, कि
अपने ही हाथों
सौम्या
माधवी प्रिया को
चीनांशुक के स्थान पर
पुनः वल्कल पहना
ऐसी कारुणी विदा देनी होगी?
उस प्रथम वनवास के समय
तुम थे
लक्ष्मण था, और
था एक प्रतिविश्वास,
पर आज?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में
प्रिया को
किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया राम?
ऐसा अमानुषी आचरण तो
कोई वधिक भी
आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता।
इतिहास की कितनी बड़ी आश्वस्ति
पौराणिकता के किस अच्युत पद के लिए
इन सनातन हाहाकार का वरण किया राम?

राम! यही है मनुष्य का प्रारब्ध, कि
कर्म
निर्मम कर्म
असंग कर्म करता ही चला जाए।
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि उसके व्यक्तित्व और
सारी रागात्मकताओं को भी काटकर फेंक दें।

प्रिया ने उस दिन सच कहा था राम कि
व्यक्ति जब
इतिहास को समर्पित हो जाता है
तब ऐसी त्रासदी का घटना
अनिवार्य हो जाता है?
जीवन भर इतिहास का सन्धान करने वाला
यह भूल जाता है कि
वह व्यक्ति भी है, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके पार्श्व में
कोई एकान्तकांक्षिणी प्रिया खड़ी है
न कि
इतिहास-पुरुष के पार्श्व में
खड़ी होने वाली
कोई प्रतिमा।
व्यक्ति का केवल इतिहास-पुरुष बन जाना तथा
प्रिया का मात्र प्रतिमा बन जाना
व्यक्तिगत जीवन की
सबसे बड़ी दुर्घटनाएँ होती हैं राम!
राम! निर्वेद की पीठिका पर
असंग अनासक्त खड़े होकर
क्या प्रिया को विदा दी जा सकती है?
किस लिए?
राज्य के लिए?
परन्तु तुमने राज्य कब किया राम।
जीवन भर वनवास ही तो किया
प्रिया से तुमने नहीं कहा था कि
बारम्बार एक ही नाटक
व्यक्ति के जीवन में दुहराया जाता है।
आज भी यह क्या है!!
सन्दर्भ बदल गये हैं
भूषाएँ, मुद्राएँ बदल गयी हैं
परन्तु नाटक?
क्या वही नहीं है?

एक निष्णात त्रासदी
जिसके गौण पात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान, सन्दर्भ बदल गये हैं
परन्तु
मुख्य पात्र
वही तीनों हैं—
राम, सीता और लक्ष्मण!!
किस महोत्सव के अवसर पर
किस प्रयोजन पर
यह त्रासदी खेली जा रही है
कोई नहीं जानता राम!!
कोई नहीं!!

[राम शून्य ताकने लगते हैं]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना पुरुष

[रचनाकाल : १९८६]

- जीवन प्रभात
- समुद्र का आमन्त्रण
- जीवन से साक्षात्
- तपस्या की ओर
- स्वदेश की पुकार
- स्वाधीनता का मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन प्रभात

यह नील अरब-सागर तट
विस्तीर्ण बालू की बेला
ये महल बालू के रचता
बैठा है कौन अकेला!

सागर-जल की यह कैसी
जल-गन्ध हवा में फैली,
अस्ताचल वाली लाली
पड़ रही क्षितिज में मैली!

लम्बी यात्राओं वाले
पाखी दल की हैं ध्वनियाँ
लहरों की छप-छप जैसे,
सागर धोता निज मणियाँ!

है दृष्टि जहाँ तक जाती
हिल्लोल रहा जल ही जल
पशु भी हैं लौट गये हैं सब
निर्जन है सारा शाद्वल।

वह दूर देश के पोतों
का प्रतिदिन आना, जाना
मल्लाहों का कोलाहल
उनका निश्चिन्त तराना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार और वैष्णवता
वाली, गुजराती धरती,
मरुस्थलता औ' शाद्वलता
वाली, गुजराती धरती!

हर हाट-घाट बाजारों
व्यापार और व्यापारी,
कर्मठ किसान खेतों में
घर में श्रम करती नारी।

जैनों के वे 'थानक जी'
उनके उत्सव 'पर्यूषण'
नवरात्रि और दुर्गा में
घर-घर गरबा औ' पूजन।

थी मध्ययुगों की जड़ता
अब भी जीवन में फैली,
थे जाति-पाँति के झगड़े
और छुआछूत थी फैली।

वे जमींदार और राजा
छोटे-मोटे रजवाड़े,
उस पर अंग्रेजी शासन
सब थे मानव के आड़े।

ऐसे दुस्साध्य समय में
काबा गाँधी के घर में,
था जन्म लिया 'मोनिया' ने
जो गूँजा भारत भर में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सागर-तट की बस्ती
के घर-आँगन, जनपथ पर,
'मोनिया' ने जन्म लिया, ज्यों
वैष्णवता उतरी भू पर।

बालक 'मोनिया' के मन में
प्रतिलोक सिरजने लगते,
उस पार बसे देशों के
जन-जन हैं कैसे लगते?

प्रतिदिन जो शिशु-पैरों से
बालू पर चिह्न पड़ेंगे,
तब किसे पता था, ये ही
युग का इतिहास बनेंगे।

दीवान पिता के संग में
परिवार राजकोट आया,
स्कूल गया वह बालक
औ' मोहनदास कहाया।

एकान्त, शान्त-प्रकृति का
वह अलग-थलग ही रहता,
संकोच उसे था इतना
शाला में भी चुप रहता।

था उसे व्यसन पढ़ने का
आज्ञाकारी गुरुजन का,
सेवा-स्वभाव का मोहन
अनुचर था सभी स्वजन का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका बस एक सखा था
ऊखा, जो था तो हरिजन
पर नित्य उसी के संग में
खेला करता था मोहन।

जब एक दिवस निज माँ से
मोहन को मिली मिठाई,
उल्लास भरा वह बोला
ऊखा से—'ले लो भाई !'

वह बोला—'छोटे मालिक !
कैसे ले लूँ, मैं हरिजन,
जिनको छूना भी वर्जित
जिनकी छाया भी दूषण।'

कुछ समझ नहीं पाया वह
पर दे दी सभी मिठाई,
थी देख रही छज्जे से
माँ, मोहन पर चिल्लायी।

पहली दरार थी, जो उस
अन्तर को दरक गयी थी,
यह मनुज-मनुज की दूरी
बिजली-सी करक गयी थी।

प्रत्येक सरल, शुभ-मन में
जो प्रभु निवास करता है,
मानव-शुभता के लिए उन्हें
वह दीनबन्धु वरता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह श्रवण-कथा को पढ़कर
अभिभूत और रोमांचित
आदर्श पुत्र की श्रद्धा
कर गयी उसे विगलित।

वह श्रवण और वह काँवर
घिरते मोहन के मन में,
है व्यर्थ, अगर हम इनको
पालें न, नित्य जीवन में।

इससे भी कहीं करुण थी
थी मानवीय औ' मार्मिक
वह कथा सत्यवादी की
कितनी उदात्त, पौराणिक!

वह सत्य और श्रद्धा में
था भीग उठा अन्तर तक
कर गयीं कथाएँ उसको
आलोकित, मन-प्रान्तर तक।

था मात्र अभी तेरह का
आग्रह विवाह का आया
सम-आयु और अपनी-सी
प्रिय-वधू ब्याह कर लाया।

संकोची मन का मोहन
था अति दुर्बल तन से,
सोचा करता, हो वह भी
उन्नत विशाल इस तन से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था मित्र शेख, तब बोला
जो था सुपुष्ट निज तन से—
'सम्भव है मोटा होना, तो
मात्र मांस-सेवन से।'

संस्कार प्रबल वैष्णव थे,
पर परामर्श का लालच,
सच कितना नैसर्गिक है
यह महापतन का लालच।

गिरने की सीमा निश्चित
कब हो पायी है जग में?
कितना उत्थान कठिन है
इस जादू भरे जगत् में।

वह मांस आदि का खाना
फिर छुपकर बीड़ी पीना,
इन सारे कृत्यों के हित
पैसों की चोरी करना।

पतन, पतन, यह महापतन!!
चीत्कार कर उठा मोहन
परितापित वैष्णवता के
भरे आये दोनों लोचन।

प्रस्तुत कर दी मोहन ने
निज पतन-कथा सब लिखकर,
सन्तोष हुआ काबा को
बेटे के इस साहस पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब रुग्ण पिता ने उसको
नि:शब्द क्षमा कर डाला,
परिताप-तिमिर को चीर
फैला सन्तोष-उजाला।

अब पिता हुए आदर्श, पिता
को मोहन सबसे प्रिय था,
रुग्ण पिता की सेवा ही
अब उसका जीवन-व्रत था।

जिस दिन अंजुलि से उसने
था दिया पिता को तर्पण,
बोला इतना ही, 'पिता!
आज से मेरा सब कुछ अर्पण!'

समुद्र का आमन्त्रण

लहरों के उत्ताल फनों पर
पीत हिलोरें लेता था,
हार मान लहरें हट जातीं
फिर भी सागर जेता था।

नीले जल की महादेह का
क्षिति-पर्यन्त पुरुष कोई,
दिशि के कन्धों पर सिर
रखकर, क्या विराट सत्ता सोई?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहरों की उद्दाम लयों में
सागर जाग्रत लगता था
केवल बीचि-विहीन, नहीं तो
नभ भी सागर लगता था।

छूट रहा था क्षितिज-रेख में
बम्बई का तट, बन्दरगाह,
औ' उदास मोहन के मुँह से
कभी निकल पड़ती थी आह।

था प्रसन्न, पर कहीं दुखी भी
छूट गया था घर-परिवार,
माँ को कितने आश्वासन दे
निकला था वह सागर-पार।

मांस और मदिरा, परस्त्री-
गमन, सभी वर्जित उसको,
आज्ञा पाने हेतु दिये थे
वचन तीन उसने माँ को।

सूट-बूट में वह शोभित था
कहीं गर्व था अन्तर में,
सुखद नहीं थी भूषा, फिर
भी, कसे स्वयं को कॉलर में।

वह संकोची, सदा अकेला
रेलिंग थामे एकाकी,
देखा करता बड़ी मछलियाँ
या भूला-भटका पाखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन करने भी न कभी
वह केबिन से बाहर आता,
सामिषता के डर के मारे
वह निरान्न ही रह जाता।

देख विलायत का वैभव
आतंक चढ़ा उसके मन पर
बना स्वयं अंग्रेज, उन्हीं का
लहजा, भूषा धारण कर।

नृत्य-वाद्य भी सीखा, लेकिन
लय पर था अधिकार नहीं,
अब सम्पूर्ण नकल करना भी
मन को था स्वीकार नहीं।

क्रमशः सादे जीवन की
महिमा, उस पर प्रकट हुई,
अंग्रेज नहीं, है भारतीय वह
यही सत्यता प्रकट हुई।

और एक दिन बैरिस्टर बन
कर गांधी भारत आया,
हुआ दुखी ज्यों ही माँ के
मरने का समाचार पाया।

निज वचनों के पालन का
उसको सन्तोष बड़ा मन में,
आगे भी वह योग्य बनेगा
यह विश्वास जगा मन में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी वकालत शुरू हुई थी
हुआ दुखी वह अन्तर से,
न्याय नहीं पा सकता निर्धन
शोषित राज्य-कलेवर से।

तभी उसे दक्षिण अफरीका
एक फर्म ने बुलवाया,
था कानूनी काम, मिलेगा
देश देखना, हुलसाया।

जीवन से साक्षात्

डरबन के न्यायालय में था
प्रथम दिवस अपमान हुआ
पगड़ी पर आपत्ति कोर्ट की
औ' वह बेंत समान हुआ।

पत्रों में लिखकर गांधी ने
अनाचार यह छपवाया,
समझ गये गोरे, प्रदेश में
एक अवांछित घुस आया।

तभी प्रिटोरिया जाते उसको
ट्रेन छोड़कर चली गयी,
प्रथम श्रेणी का टिकट 'कुली'
था, ट्रेन छोड़कर चली गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी और अपमान शेष था
इस यात्रा में सहने को,
प्रथम श्रेणी का यात्री तो
वह नाम मात्र था, कहने को।

कोचवान ने गाड़ी पर से
धक्का देकर गिरा दिया,
'कुली' समझ होटल वाले ने
अपमानित 'सत्कार' किया।

प्रिटोरिया में हुई सभा तब
देश बन्धुओं से बोले—
'भूलो सारे भेद-भाव, औ'
एक संगठन हम खोलें।'

जिसके लिए बुलाया उनको
सुलह करायी पक्षों में,
न्याय मिला, सन्तोष हुआ
मानवता उभरी पक्षों में।

अफरीका के देशों में ये
अमानुषी, काले कानून,
पग-पग पर अपमान पुलिस का
खाना मुश्किल दोनों जून।

कई तरह के टैक्स, वोट
का कालों को अधिकार नहीं,
सड़कें वर्जित, घर से रात
निकलना भी, अधिकार नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रात अंग्रेज-मित्र संग
लौट रहे थे जब गांधी
पुलिस मार खाकर, अचेत
गिर पड़े सड़क पर ही गांधी।

तड़प उठा, अंग्रेज-मित्र
बोला—'साक्षी हूँ, केस करो',
'क्षमा कर चुका इसे बन्धु, मैं,
तुम किंचित मत क्लेश करो।'

अफरीका में गांधी जी का
काम हो चुका था पूरा,
किन्तु अभी जीवन-बिसात का
खेल हुआ था कब पूरा?

नेटाल प्रदेश भी अधिकारों से
था वंचित करने वाला,
सबको लगा—'हमारे सबका
केवल गांधी रखवाला।'

अब तक तो व्यापार रहा
पर अब थी अधिकारों की बात,
अर्जी, तार पिकेटिंग-मीटिंग
जगे लोग सब रातों रात।

लन्दन तक पहुँची, अब तो
यह अधिकारों की थी वाणी,
हार गये, पर भारत जागा
सुन संघर्ष कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो गांधी को रुकना था
बनना था जन का नेता
कांग्रेस की नींव पड़ी—
वह था लघु-भारत का नेता।

तीन वर्ष के बाद, लौट
गांधी जी भारत थे आये,
अपने संग में परीलोक का
सम्मोहन भी थे लाये।

तिलक-गोखले परिचित ही थे
पत्रों ने था जयकार किया
अफरीका के बारे में
शंकाओं का परिहार किया।

और तभी बम्बई प्रदेश में
फैली प्लेग-महामारी,
कर दीं गांधी जी ने अपनी
सेवाएँ अर्पित सारी।

किन्तु तभी सन्देश मिला
नेटाल बुलाता था उनको
परिवार साथ ले, लौटे गांधी
कर प्रणाम प्रिय भारत को।

अफरीका को लेकर गांधी जी
ने जो कुछ किया प्रचार,
भरे पड़े थे दुनिया भर के
जय-जय करते सब अखबार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी से पहले गांधी की
जयगाथा पहुँची नेटाल
अफरीका के सारे गोरे
बदनामी से थे बेहाल।

फैलाया उनने प्रवाद यह
गांधी संग में लाये हैं,
दो पोतों में भारतवासी
भर कर बसने आये हैं।

रुके रहे हफ्तों तक दोनों
पोत, न तट तक आ पाये,
घूम रहे थे गोरे चारों
ओर द्वेष को सुलगाये।

और पोत से सबसे अन्तिम
जब गांधी उतरे तट पर,
घेर लिया गोरों ने तत्क्षण
लगे मारने सब तत्पर।

एक पुलिस-अफसर की
पत्नी, दयामयी आगे आयी—
'शरम नहीं आती तुम सबको'
हो हताश, वह चिल्लायी।

दिया पुलिस ने संरक्षण तब
पहुँचे रुस्तमजी के घर
घेर लिया उस क्रुद्ध भीड़ ने
आकर रुस्तमजी का घर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्लायी वह भीड़, लिये थी
भाले-बल्लम निज कर में—
'गांधी को दो, नहीं अभी हम
आग लगा देंगे घर में।'

भेष बदल कर गांधी तब
तत्काल वहाँ से चले गये,
लन्दन से नेटाल प्रशासन
को आये आदेश नये।

'एक-एक हमलावर पर
अभियोग चलाकर दण्ड मिले',
पर गांधी ने न्यायालय से
कहा कि—'सबको क्षमा मिले।'

ऐसा अद्‌भुत चरित-पराक्रम
देख, सभी आश्चर्यचकित,
पत्रों ने जयकार किया
सब गोरे भी थे स्तम्भित।

धर्मग्रन्थ के चरित सरीखा
कौन पुरुष हैं यह गांधी?
गोरे-काले लगे देखने
विनत भाव से सब गांधी।

स्वयं भोग ले, किन्तु
सामने वाले को उन्मुक्त करे,
अपने से भी अधिक दूसरे
के दुःख में अनुरक्त रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे गांधी औ' भारत का
नाम विश्व में गूँज उठा,
'क्षमा आचरण का आधार
बने'—मन्त्र यह गूँज उठा।

अब गांधी के जीवन में
था नया मोड़ औ' परिवर्तन,
सुख-सुविधाएँ छोड़, लगाया
अपने पर ही अनुशासन।

स्वयं हाथ से कपड़े धोना
उबला सादा-सा भोजन
इन्द्रिय-निग्रह के अभाव में
कब सम्भव उन्नत जीवन?

देह नहीं, आत्मा मनुष्य है
यही तत्व है, सार यही
आत्मशक्ति के लिए बनो
निष्काम, सदा उपचार नहीं।

ये सारे उपवास और व्रत
आत्मा के सात्विक भोजन,
और प्रार्थना के सोपानों से
ही प्रभु तक जाता मन।

मन्दिर-सी हो धुली देह
प्रभु-प्रतिमा सा हो मानव-मन
केवल करुणा, दया अहिंसा
और सत्य का आराधन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म हमारे नीराजन हों
विश्व एक परिवार बने
राग-द्वेष सब त्याग, मनुज
का कल्याणी संसार बने।

और तभी छिड़ गया युद्ध
बोअर और अंग्रेजों में
कालों के दोनों शोषक थे
क्या चुनना दोनों में !!

फिर भी गांधी जी ने अंग्रेजों
का ही था पक्ष लिया
आहत लोगों की सेवा हित
सेवादल तैयार किया।

युद्ध बाद अंग्रेजों ने हार्दिक
कृतज्ञता ज्ञापित की,
भारतीय औ' अंग्रेजों ने
नव मैत्री स्थापित की।

शेष हो चुका था गांधी
का कर्मक्षेत्र अफरीका में
बुला रही थी मातृभूमि
गांधी को, जो अफरीका में।

'आवश्यकता पर आऊँगा'
आश्वासन गांधी का था,
विदा समय यह लगा कि
सारा अफरीका गांधी का था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंप दिये उपहार आदि
जनता के थे, जनता को ही,
इतिहास विदा करवाने आया
था इतिहास-पुरुष को ही।

तपस्या की ओर

देश लौट कर, आवश्यक था
निज स्वदेश का दर्शन
हाड़-मांस की जनता का
कैसा है चिन्मय जीवन?

उसी वर्ष कलकत्ते में था
कांग्रेस - अधिवेशन
नेताओं से तभी हो सका
वैचारिक - सम्भाषण।

नेताओं की गतिविधियों से
दुःखी हुए वह मन से,
कैसे सेवा हो सकती है
अंग्रेजी भाषा, मन से?

बम्बई आकर करी वकालत
तभी सन्देशा आया
पुनः चले नेटाल और
गांधी ने वचन निभाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग-भेद की वही नीति थी
जालिम - गोरेशाही
ट्रान्सवाल में जाने की
भारतीयों को हुई मनाही।

समझ गये कुछ दिन टिकना
है, नहीं लौटना सम्भव
जोहेन्सबर्ग में ही कार्यालय
स्थापित करना सम्भव।

तभी एक अखबार निकाला
पता लगे दुनिया को,
भारतीय औ' काले लोगों
की स्थिति दुनिया को।

वह पोलक से भेंट
और रस्किन की पुस्तक
गांधी - जीवन - दर्शन - की
आधार बनी वह पुस्तक।

फोनिक्स-आश्रम का स्थापन
नियम-धरम का जीवन
आत्म-शक्ति प्राधान्य बना
अब गांधी - जीवन - दर्शन।

ट्रान्सवाल शासन ने अपना
यह आदेश निकाला,
भारतीयों के नाम दर्ज हों
नियम बना यह काला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना ही होगा विरोध
इस अपमानित धारा का
वर्ना जीवन बन जायेगा
दासों का, कारा का।

लेकिन क्या हो औ' कैसे हो?
जनमन सारा विस्मित,
गांधी के निर्णय पर सारा
जन-जीवन था आश्रित।

पूर्ण अहिंसा औ' सत्याग्रह
से विरोध है सम्भव,
यही मार्ग है जिससे
दानवता का पूर्ण पराभव।

घृणा नहीं, विद्वेष नहीं
केवल निर्भयता मन में,
महाशक्ति जागा क़रती, जब
जन हों अनुशासन में।

निर्विरोध, निष्काम भाव से
कोटि-कोटि नर - नारी,
अधिकारी हित, आहुति देने
भर दीं जेलें सारी!

गांधी के बन्दी होते ही
शासन सारा डोला,
बाध्य हुआ, जनरल स्मट्स
तब, गांधी जी से बोला—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बन्द करो अद्‌भुत विरोध यह
करो नियम का पालन'
'मरना है स्वीकार, असम्भव
इस धारा का पालन।'

समझौता तब हुआ कि
सब स्वेच्छा से नाम लिखाएँ
पर पठान आलम बोला—
'लानत, जो शीश़ झुकाएँ।'

चले जा रहे थे गांधी जी
नाम दर्ज करवाने,
आ पहुँचा आलम, साथी ले
गांधी को धमकाने।

किन्तु नहीं जब गांधी माने
पड़ी लाठियाँ उन पर
रक्त सने, बेहोश गिर पड़े
गांधी जी तब भू पर।

क्षमा कर दिया आलम को
पर टेक न अपनी छोड़ी,
इतना सब होने पर भी
सरकार न पिघली थोड़ी।

यदि यह काला नियम
नहीं वापस लेता है शासन
सारे सरकारी प्रमाण, कर
दो होली को अर्पण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर शासन कब झुकता है!
जनता की सुलगी होली,
ट्रान्सवाल में अनधिकार
उन घुसे हुओं पर गोली।

लन्दन तक गांधी जी दौड़े
सत्ता को समझाने,
पर सत्ता कोई भी हो,
कब भाषा से माने?

छोड़ वकालत का पेशा
आजीवन सेवाव्रत ले,
और टाल्सटाय-फार्म खोल
आश्रम-जीवन का व्रत ले।

हिन्दू-विवाह को ही अमान्य
कर दिया क्रूर शासन ने,
ये काले कानून नहीं
देखे थे भारत-जन ने।

अब तो श्रमिक और नारी-जन
सब के सब अकुलाये,
हड़तालें औ' शान्त-प्रदर्शन
ट्रान्सवाल पर छाये।

गोली - लाठी - प्राणार्पण
अब आये दिन की बातें,
राजनीति के लिए व्यर्थ थीं
मानवता की बातें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं लगाये गांधी जी ने
अपने पर अनुशासन
नंगे पाँव, श्रमिक की भूषा
एक बार का भोजन।

कठिन परीक्षा सम्मुख थी
जनता प्रयाण को तत्पर,
होगा विरोध, पर सत्याग्रह
के अनुशासन में रह कर।

पर उसी रात शासन ने
उनको बंदीघर में डाला,
लगा कि जैसे जन-जीवन
के मुँह पर डाला ताला।

ट्रान्सवाल-नेटाल सभी में
जन-ज्वाला थी सुलगी
थी फौजों की ताकत, फिर
भी सत्ता भय से पीली।

छूटे गांधी, सत्याग्रह का
निश्चय किन्तु अटल था
तभी हुई हड़ताल रेल की
स्मट्स मुँह के बल था।

पर गांधी ने पुनः सदाशयता
शासन से बरती,
सत्याग्रह वापस लेकर
थी हारी बाजी जीती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्य हुआ हिन्दू-विवाह
सब रद्द यात्रा-बन्धन
टैक्स मुक्त, सामान्य हुआ
जनता का दैनिक जीवन।

इक्कीस वर्ष थे बीत चुके
सेवा के अफरीका में,
थी मातृभूमि अब टेर रही
गांधी जो अफरीका में।

स्वदेश की पुकार

प्रथम युद्ध की छाया में
गांधी जी लौटे भारत में
स्वागत-सत्कार प्रतीक्षित थे
उनके निमित्त सब भारत में।

आश्रम के हेतु गोखले से
था किया उन्होंने परामर्श,
रवि ठाकुर के सम्मुख रक्खा
सेवा-जीवन का महादर्श।

इस बीच गोखले शान्त हुए
था हरद्वार में कुम्भ लगा,
सेवा निमित्त दल लिये गये
पाखण्ड देख, तब दुःख जागा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धर्मतीर्थ में यह कैसा
फैला अमानवी अनाचार?
धार्मिक उदात्तता कहीं नहीं
आश्रम-मठ सब में दुराचार।

सोचा गांधी ने—'क्रान्ति तभी
सम्भव है जब यह देश जगे,
पुरुषार्थ तभी जागेगा जब
यह देश, हाथ से कर्म करे।

पुरुषार्थहीन ही सत्ता से
डरते आये हैं सब युग में,
हैं कर्मवीर ही सत्ता औ'
इतिहास बनाते सब युग में।

किस अन्धकार में डूबा है
यह महादेश, मेरा भारत?
वे सत्ताएँ हैं कौन, किये
चिन्मय स्वरूप को जो गारत?

जागेगा देश, जगाने पर
मैं भूमि-पुत्र बन विचरूँगा,
उत्तर - दक्षिण - पूरब-पश्चिम
मैं भारत ही बन जाऊँगा।'

तब एक गाँव में गांधी ने
'सत्याग्रह-आश्रम' शुरू किया,
उद्योग प्रमुख हो, इस कारण
तकली-चरखे पर जोर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशासन ही है मूल-मन्त्र
है खेल नहीं आश्रम-जीवन,
संयम, निग्रह औ' सत्य-अहिंसा
सत्याग्रह के चार चरण।

कहा एक दिन गाँधी जी ने—
'मुझे मिला है प्रतिवेदन
आश्रमवासी बनकर रहने को
इच्छुक है इक हरिजन।'

'स्वीकृति दे दी है मैंने'—
सुनकर सदस्य सब चकित हुए,
आश्रम के जो-ज़ो संरक्षक
थे, हाथ उन्होंने खींच लिये।

हुए न विचलित गांधी जी पर,
प्रभु पर था विश्वास उन्हें,
और अचानक मिला सहायक
हो न भला विश्वास उन्हें।

काशी में विश्वविद्यालय के
शिलान्यास के अवसर पर,
एकत्रित राजा-महाराजा
वाइसराय औ' मन्त्रीवर।

वह चमक-दमक, तम्बू-कनात
तैनात पुलिस, फौजी पहरे,
लकदक करती भूषाओं में
थे कैसे वैभव के नखरे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूषा किसान जैसी पहने
तब उठा एक सादा-सा जन
बोला—"दुःख है, अंग्रेजी में
कर रहा आज मैं सम्बोधन।'

'राजा पहने माणिक-मुक्ता
हैं दुःखी देश-निर्धनता पर,
सारा का सारा वैभव यह
उत्कोच नहीं क्या जनता पर?

सब चकित, घोर सन्नाटा था
वाणी में बम की गरमी थी,
पर उस किसान जैसे गांधी में
क्षमा-दया की नरमी थी।

सरे आम चम्पारन में
निलहों की थी तानाशाही
असहाय, दुःखों की सारी जनता
करती थी त्राही-त्राही।

शासक-शोषक दोनों ही तो
गोरी चमड़ी वाले थे
ऐसे में फरियाद भला वे
किसकी सुनने वाले थे!

गांधी जी के चम्पारन आने
पर ज्योंही रोक लगी,
चम्पारन के खेतों, खलिहानों
में जैसे आग लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस निषेध आज्ञा को सुनकर
भड़क उठी सारी जनता
काँप उठी लन्दन में बैठी
अंग्रेजों की वह सत्ता।

गांधी जी ने पुनः सदाशयता
का अपना परिचय दे,
कहा भीड़ से—'शासक को
वह अपना शासन करने दे।'

भीड़ छँटी, झुक गया प्रशासन
चम्पारन गांधी का था
जीती जनता, मुक्त हुए सब
यह जादू गांधी का था।

थे पूजा ही कर्म सभी
गांधी के जीवन-दर्शन में,
वैयक्तिकता सामाजिकता
अर्पित सब आराधन में।

सत्याग्रह आश्रम के बदले
साबरमती का शुरू हुआ,
कपड़ा-मिल के मजदूरों का
सत्याग्रह भी शुरू हुआ।

मिल-मालिक कब झुकने वाले !
श्रमिक मनोबल काँप उठा,
भोजन छोड़ा श्रमिकों के हित
तब मजूर उठ खड़ा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुक गया दम्भ, जीते मजूर
खेड़ा की आयी तब पुकार
लेकर पटेल को साथ चले
गांधी घर-घर औ' द्वार-द्वार।

था विश्व-युद्ध नाजुक क्षण में
रंगरूट चाहिए थे उनको
भर्ती की आवश्यकता पर
समझाया गांधी ने सबको।

इसी बीच बहुत बीमार हुए
अंग्रेज युद्ध थे जीत गये,
रोलट-रिपोर्ट थी आयी अब
लेकर काले कानून नये।

आधारभूत अधिकार सभी
औ' स्वतन्त्रता छिनने को थी
यदि पास हो गये तो,
यह मानवता मरने को थी।

गांधी बोले—'स्वीकार नहीं
कर सकता कोई देश इसे',
प्रस्ताव हुआ, संगठन बना
सब नेताओं की स्वीकृति से।

शासक के होते तर्क भिन्न
हो गये पास कानून सभी,
भारत उदास, नेतागण थे
प्रादेशिक मन से खिन्न सभी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब प्रथम बार सम्पूर्ण राष्ट्र में
गूँजा हड़ताली नारा,
'सब बन्द करो, सब जाम करो!
अंग्रेजों का शोषण सारा!!'

पंजाब और कुछ नगरों में
हड़ताल अहिंसक रह न सकी,
सम्पूर्ण नष्ट कर देने को
सत्ता भी तब चुप रह न सकी।

गांधी जी को यह बोध हुआ
यह भूल हिमालय जैसी थी,
सत्याग्रह हेतु अभी जनता
की नहीं हुई तैयारी थी।

सत्याग्रह तो था शेष हुआ
पंजाब आग पर सुलग रही,
निर्मम-निर्द्वन्द्व प्रशासन पर
जनता मन में थी सुलग रही।

इस निर्मम शासन के विरुद्ध
तब हुआ सभा का आयोजन,
वह जलियाँ वाला बाग जहाँ
जहाँ लालाजी जैसे नेतागण।

दीवार घिरा वह पार्क, जहाँ
आने-जाने का एक द्वार,
पहुँचा तब तक जनरल डायर
लेकर तोपें औ' घुड़सवार।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब दगी तोप, जनता चौंकी
जो शान्त भाव से बैठी थी,
सत्ता का शब्दों से विरोध
करने, जनता वहाँ बैठी थी।

तोपों-बन्दूकों-संगीनों को देख
भीड़ तब बन्दी बनी,
द्वार एक पर बाहर जाने को
आतुर थी भीड़ घनी।

सोलह सौ बार चली गोली
किरचों ने भोंक दिए सीने,
महिलाएँ—बच्चे डर कर सब
थे लगे चीखने औ' रोने।

ढेर लग गया लाशों का
था कोई पुरसाहाल नहीं,
सिर पर लाठी के पड़ते ही
लाला जी थे गिर पड़े वहीं।

डरे प्राण औ' भग्न अंग
जो भाग सके बाहर आये
पंजाब भूमि के वे घायल
नख-दन्त हीन बाहर आये।

सम्मान कुचल डाला थां, तब
सत्ता-मदान्ध उस डायर ने
था बाध्य किया—'रेंगो भू-पर
कीड़ों के जैसा'—डायर ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जब भी गोरा सम्मुख आये
तुमको सलाम करना होगा,
अंग्रेजी ध्वज को, मीलों चल
प्रतिदिन सलाम करना होगा।'

आये दिन बाजारों में थे
अपमान, गालियाँ औ' कोड़े
बिजली-पानी सब काट दिये
थे कौन करम उनने छोड़े!

आये गांधी, सब जाँच हुई
जनता के दुःख में घोर दुखी,
किस मुँह से आश्वासन सम्भव
इतनी जनता थी त्रस्त, दुखी।

ऐसी सत्ता से लड़ने को
जो शस्त्र शेष था गांधी का
जगने दो घर-घर में प्रताप
अब असहयोग की आँधी का।

त्यागो पदवी, सम्मान-पत्र
छोड़ो सरकारी नौकरियाँ,
यूरप की चीजें औ' कपड़े—
शिक्षा की दूषित पद्धतियाँ।

यह नयी हवा, उत्साह नया
मानो स्वराज्य आने को है
हर बार कह रहे थे गांधी
ऐसे स्वराज्य आने को है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मन में शंकित कांग्रेस
तकली-चरखा-खादी लेकर
कैसे आजादी मिल सकती
उपवास-अहिंसा को लेकर?

युवराज तभी भारत आये
स्वागत अपूर्व ही होना था
राजे-महाराजे जुटे किन्तु राष्ट्र
का असहयोग ही होना था।

बन्द-हड़तालें शहर-शहर
सन्नाटों के तोरण-वन्दन
किस राष्ट्र पुरुष का हुआ कभी
ऐसा श्मशान-सा अभिनन्दन!

सत्ता इस पर चुप रह न सकी
दंगे करवाये यहाँ-वहाँ
अब दमन-चक्र आरम्भ हुआ
बन्दी नेतागण यहाँ-वहाँ।

नेहरू-पटेल थे बन्दी
सारा देश प्रतीक्षा करता सा,
उद्यत गांधी आन्दोलन को
क्रमशः इतिहास सरकता-सा।

ऐसे क्षण चौरी-चौरा में
हिंसा जनता में भड़क उठी,
सत्ता कैसे सहती यह सब
दुगुनी हिंसा ले भड़क उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार बहुत चौकन्नी थी
देखा आन्दोलन शान्त हुआ
गांधी को डाल यरवदा में
तब जाकर शासन शान्त हुआ।

पूरे दस वर्षों तक गांधी
सब राजनीति से विमुख रहे
अपने लेखों औ' कार्यक्रमों से
जनमानस थे जगा रहे।

उस सहज वाणी में जादू था
चुम्बक था उसके दर्शन में
उसमें भारत की थी सुगन्ध
उसका चन्दन था जन-मन में।

वह भारत था या गांधी था
या भारत गांधी बन आया,
कितना विशिष्ट वह साधारण
साधारण, गांधी बन आया।

वह नहीं, स्वयं युग ही उसके
पदचिह्नों का था अनुगामी,
निष्काम, किन्तु वह एक मात्र
था सत्य-अहिंसा का कामी।

आकण्ठ सदाशय गांधी की
सरकार परीक्षा लेती थी
झुकता था, पर निःस्वार्थ हेतु
हर बार परीक्षा होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साइमन को भी काले झण्डों
का ही अभिनन्दन पाना था,
औ' पटेल को बारडोलि में
ही 'सरदार' कहाना था।

रावी के तट पर कांग्रेस भी
माँग चुकी थी आजादी
सोच रहे थे सब, देखें
आगे क्या करते हैं गांधी?

औ, तभी नमक सत्याग्रह का
गांधी जी ने ऐलान किया,
और अवज्ञा-आन्दोलन का
ज्यों जारी फरमान किया।

चिट्ठी लिखकर वाइसराय को
बतलाये थे सब कारण—
अंधाधुन्ध सेना के खर्चे
क्रमशः बढ़ता यह शोषण!

दासों जैसी हालत कब तक
सह सकता है भारत?
आजादी दो, नहीं अवज्ञा
पर आमादा भारत।

और मार्च बारह को, ज्यों
इतिहास चला आश्रम से
साथ अठहत्तर आश्रमवासी
निकले अपने क्रम से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर अरब-सागर के तट पर
दांडी तक जाना था
सिन्धु तीर पर पड़ी हुई
ज्यों आजादी लाना था।

हुई घोषणा दांडी में—
यह नमक-नियम टूटेगा,
यह साधारण नहीं अवज्ञा
ब्रिटिश - राज्य टूटेगा।

पूरी दुनिया देख रही थी
यह दांडी की यात्रा,
राजनीति का नाटक थी
चौबीस दिवस की यात्रा।

मुट्ठी भर ये पदयात्री
यों तो थे साधारणजन,
टिक जाते पेड़ों के नीचे
होते प्रवचन - कीर्तन।

सिन्धु ओर थी चली जा रही
राजनीति की गंगा,
कैसा था यह महाभगीरथ
जो फकीर था नंगा!

पर्वत छोड़ चुकी थी गंगा
जनता मैदान बनी थी
कृशकाय देह की वैष्णवता
युग का भगवान बनी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी पथ के दोनों ओर खड़ी
कैसी असीम जन श्रद्धा,
सब युग में होती है जन की
यह अश्रुसिंचिता श्रद्धा।

गांधी! तुम ही हो देश,
तुम्हीं इतिहास, तुम्हीं इसकी जय
जैसा भी होता विनयशील
इसका प्रमाण है नमक-विजय।

सूर्योदय का समय
सिन्धु पर खड़े हुए गांधी जी,
सेतु - बन्ध पर राम खड़े
ज्यों रूप धरे गांधी जी।

वह नमक नहीं, थी सिन्धु
और पृथ्वी की पावन साक्षी
अब तो स्वतन्त्रता का प्रतीक
गांधी तो केवल साक्षी।

अब दांडी भी तो था प्रतीक
जो फैला भारत भर में
औ' स्वतन्त्रता के प्रसाद-सा
नमक बना घर - घर में।

गांधी जी को छोड़, बनाये
बन्दी सब नेतागण
जेलें सारी हुईं ठसाठस
पुनः क्रूर था शासन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस पर रोक लग गयी
अखबारों पर ताले
लिखना-पढ़ना बन्द हो गया
नियम बने फिर काले।

घरसाने में नमक - डिपो
था बहुत बड़ा सरकारी
उस पर कब्जा कर लेने की
उनकी थी तैयारी।

गांधी फिर यरवदा जेल में
ब्रिटिश-राज के बन्दी
उधर डिपो पर चालू थी
लोगों की धरना - बन्दी।

दल के दल आहत होते
पर नहीं टूटता था क्रम
हार गयीं बन्दूक - गोलियाँ
शासन को अब संभ्रम।

गिरफ्तार गांधी—सुनकर
हैरान हुई सब दुनिया
काँप उठी लन्दन की सत्ता
थी विरोध में दुनिया।

बिन गांधी के मुश्किल था
अनुशासन और नियन्त्रण
समझ रहा था सच्चाई को
वह गोरों का शासन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी तब बाहर आये
असन्तोष था भारी
सुलह हुई औ' गोलमेज
की होने लगी तैयारी।

अपना प्रतिनिधि कांग्रेस ने
गांधी जी को माना,
लन्दन की सत्ता से मिलने
गांधी हुए रवाना।

हुआ वही, जो होता आया
बहसें औ' आश्वासन
गांधी जी के हाथ लगा
केवल अंग्रेजी जन - मन।

नये सिरे से अंग्रेजों ने
दमन-पाश था फेंका
कुर्क हुई सम्पत्ति और घर
जब्त बैंक का पैसा।

पुनः यरवदा जेल
पुनः गांधी जी बन्दी
'फूट डाल कर राज करो' की
राजनीति थी अन्धी।

सत्ता ने चाहा बँट जायें
ये सब हिन्दू, हरिजन,
क्षुब्ध हुआ सुनकर कुतर्क
यह, गांधी का बन्दी मन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारा की प्राचीरों के पीछे
से वे चिल्लाये—
'नहीं बँटेंगे हिन्दू-हरिजन
प्राण भले ही जायें।'

शुरू हुआ उपवास जेल में
पुनः परीक्षा आयी,
चारों ओर देश में फिर
से शोक-कालिमा छायी।

लगा बीतने एक-एक दिन
गांधी होते दुर्बल,
वह गांधी, जो भारत-जन
का एकमात्र था सम्बल।

गांधी के प्राणों की चिन्ता
छायी सबके मन में,
दिया पूर्ण आश्वासन गांधी जी
को अम्बेडकर ने।

सफल नहीं हो पायी वह
अलगाव - नीति सत्ता की
आखिर झुकना पड़ा और
किरकिरी हुई सत्ता की।

गांधी के वक्षस्थल पर
सिर रख, रवि ठाकुर रोये
बचे प्राण गांधी के—
मानो पाद देश ने धोये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्क हो चुका पहले ही
साबरमती का आश्रम
राजनीति की राजधानी था
अब वर्धा का आश्रम।

स्वाधीनता का मूल्य

सत्ता से थीं मिली देश को
कुछ सुविधाएँ और सुधार
किन्तु तभी यूरप में होने
लगा युद्ध का हाहाकार।

सहानुभूति से अधिक, नहीं
कुछ गांधी दे सकते थे,
हिंसा का भी नहीं समर्थन
गांधी कर सकते थे।

कांग्रेस-मंत्रिमण्डल में रक्खा
उनने यही विचार
आजादी दो, नहीं, हमें
यह शासन-सत्ता अस्वीकार।

आयी सबसे कठिन घड़ी
गांधी - जीवनदर्शन की
राजनीति से कहीं बड़ी है
मूल्य-दृष्टि, जीवन की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर केवल गांधी जी
और दूसरी ओर सुभाष,
'यह अवसर है, एक चोट में
बदल जायेगा सब इतिहास।'

बहुत कठिन था इस मत से
सहमत होना गांधी का,
पर सबसे व्यक्तित्व बड़ा था
तपःपूत गांधी का।

उनके मत से, राजनीति से
सदा बड़ी नैतिकता,
साध्य नहीं रह सकता पावन
बिन साधन की शुचिता।

अब गांधी जी, बापू थे
कुटिया में बैठे रहते
औ' चटाइयों पर बैठे
नेतागण घेरे रहते।

टकराते थे तर्क, अचल थी
चट्टानी नैतिकता,
थी गांधी के लिए, स्वतन्त्रता
से ऊँची नैतिकता।

संकट समय शत्रु पर हमला
बापू को था अस्वीकार
जीत वही पावन है जिसमें
किसी पक्ष की ना हो हार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयक्तिक सत्याग्रह ही अब
अहिंसात्मक था हथियार
गांधी के इस आवाहन पर
जेल गये तब तीस हजार।

देश बन्द था जेलों में
थे गांधी जी ही बाहर
आत्मा में चिन्तन, विकल्प
कुटिया में चरखे के स्वर।

मनुष्यत्व कैसे बदले, इस
चिन्ता में रत, अन्तर
क्या नैतिकता अर्थ नहीं
रखती कोई जगती पर?

प्रश्न नहीं था राजनीति
और स्वतन्त्रता का केवल
राज्य और सत्ता के सम्मुख
क्या, नैतिकता है बल?

मार्च मास, सन् बयालीस में
क्रिप्स-मिशन था आया
युद्ध बाद, स्वाधीन बनोगे
आश्वासन था लाया।

किन्तु दूध का जला, छाछ भी
फूँक-फूँक कर पीता,
राजनीति के आश्वासन पर
कौन भला जी सकता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौ अगस्त सन् बयालीस था
बम्बई का अधिवेशन
उत्तेजित था देश बहुत ही
गांधी में भी कम्पन।

और अधिक अब नहीं चलेगा
यह गोरों का शासन
'भारत-छोड़ो' के नारों से
गूँज उठा अधिवेशन।

'करो या मरो, देशवासियो!
यह समय का नारा
अंग्रेजो! अब भारत छोड़ो
हिन्दुस्तान हमारा !!'

यह थी गांधी ही की वाणी
भरा युद्ध-आवाहन,
संचालक, बन्दी थे, फिर भी
फैला यह आन्दोलन।

उठे लोग तब गाँव-गाँव से
नगर-नगर से नारे,
कुचल डालना चाह रहे थे
सत्ता के हत्यारे।

जाम हो गयीं रेलें सारी
बन्द मिलों के करघे
सड़कों पर थे घूम रहे
संगीनें ताने गुरखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठप्प हो गयी सारी सत्ता
गाँवों - कस्बों - नगरों,
देश लड़ रहा था गोरों से
खेतों - मेड़ों - डगरों।

आगा खां के राज-महल में
गांधी जी थे बन्दी
बापू को एकाकी कर
बा इस धरती से चल दीं।

महादेव भाई के जाते
रुग्ण हुए गांधी जी
लगा कि जैसे पटाक्षेप
कर जायेंगे गांधी जी।

युद्ध शेष था, सत्ता ने
तब गांधी जी को छोड़ा
भारत के बारे में दुनिया के
जन-मत को मोड़ा।

युद्ध बाद आज़ाद बनाना
सत्ता को था अब स्वीकार
'हिन्दू-मुसलिम' एक नहीं हैं
आयी जिन्ना की ललकार।

सीमातीत विनय गांधी
शिद्दत की जिद जिन्ना की
पाकिस्तान रहेगा बनकर
एक मात्र हठ जिन्ना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्ना की हर शंका पर
गांधी जी करते समाधान
पर स्वतन्त्रता से जिन्ना का
मतलब होता था पाकिस्तान।

हार गये जिन्ना से आखिर
जो न किसी से थे हारे
राष्ट्र दे दिया जिन्ना को
स्वीकार नहीं, भय के मारे।

जब चुनाव के द्वारा भी
इसका निर्णय कुछ नहीं हुआ
हानि-लाभ सब कुछ समझाये
पर निर्णय कुछ नहीं हुआ।

जिन्ना बोले—'यही दवा है
देश बँटेगा हिन्दुस्तान',
गांधी बोले—'मुझे काट दो
पर मत बाँटो हिन्दुस्तान।'

व्यक्ति नहीं होता है जो
होता सिद्धान्त घृणा का है
अर्थ नहीं कुछ उसके आगे
मानवता-करुणा का है।

बनी अन्तरिम गवर्नमेंट जब
बापू वर्धा को तैयार
डरे हुए थे सब अन्तर में
दुर्घटना के थे आसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीग अभी तक बाहर थी
शतरंज चाल थी टेढ़ी
ऊँट पता क्या करवट ले
थी चाल बड़ी ही टेढ़ी।

अब जाकर लीग हुई शामिल
तब तक आये ये समाचार
नोआखाली में सरेआम
हिन्दू पर होते अनाचार।

थी आगजनी औ' लूटपाट
घर छोड़ भागते नर-नारी
इज्जत, तो कच्ची हाँड़ी थी
भोगा उसको, जो थी नारी।

चाकू-भाले दिखला-दिखला
था विवश किया मुस्लिम बनने
क्या सवाल था शादी का
हिन्दू थी, डाल लिया घर में।

लाखों कत्ल किये बकरों से
राजनीति की ईद मनी
सुहरावर्दी के लीगी-शासन
की पहली ईद मनी।

सम्प्रदाय की घृणित आग यह
पहुँच चुकी अब तक पंजाब
धुआँ दे रहा था बिहार भी
तपा पड़ रहा था दोआब।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिन्ध और मुल्तान जिलों का
था इससे भी भीषण हाल
नंगे-भूखे अपमानित सब
भय से पागल, थे बेहाल।

इस पीड़ित मानवता को
क्या सहानुभूति, क्या आश्वासन
कहाँ जा रहे थे अनाथ ये
हिन्दू-मुस्लिम छोड़ वतन।

आजादी का प्रथम चरण था
हिन्दू-मुस्लिम होम हुए
राजनीति के घृणित खेल में
प्यादे सब थे होम हुए।

देश-विभाजन को कितने
भारी मन से स्वीकार किया
चोट बड़ी थी, पर क्या करते
वह भी अंगीकार किया।

भारी मन से नेहरू जी ने
बापू से सब कथा कही
कटा देश आँखों के सम्मुख
गांधी ने क्या व्यथा सही।

वह देश नहीं, भूगोल नहीं
जिसको उस दिन सबने काटा
वह गांधी था, थी मानवता
हमने, तुमने, सबने काटा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या विषम भाग्य, क्या श्रीगणेश
भारत की आजादी आयी
नर-मुण्डों की माला डाले
कैसी आजादी थी आयी।

लाखों हिन्दू, लाखों मुस्लिम
दीन-हीन, घर-हीन हुए
बेचिराग हो गया देश यह
क्या उत्सव के दीप जले।

गाँव-गाँव, घर-घर आश्वासन
लिये डोलता गांधी था
नोआखाली से लेकर पंजाब
तलक बस गांधी था।

इतिहास चल रहा हो भूगोल
वही बापू थे वृद्ध हुए
तपे हुए तन-मन के थे
पर अब बापू जी वृद्ध हुए।

आग लगी थी दिल्ली में भी
मुसलमान थे डरे हुए
जाते थे पंजाब किन्तु
बापू जी दिल्ली में उतरे।

मुस्लिम-रक्षा के खातिर तब
बापू ने उपवास किया
बाजी लगा प्राण की अपनी
मुसलमान को अभय दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँप गये हिन्दू नेता गण
काजी-मुल्ला सभी डरे
तोड़ा तब उपवास कि लिखकर
जब आश्वासन दिये गये।

सब खण्डित थे, राजनीति ने
सबके साथ किया था छल,
गले-गले तक सब डूबे
थे फिरकों-धर्मों के दलदल।

कैसे थे तूफान भरे दिन
कैसी काली रातें थीं,
नंगे आकाशों के नीचे
लुटे हुओं की पाँतें थीं।

एक अकेला बचा हुआ था
झेल रहा था जो तूफान
रोज प्रार्थना बाद जगाता
सबमें अल्ला औ' भगवान।

झाड़ सभी इतिहास, खड़ा था
नैतिकता के शिखरों पर,
राजनीति बौनी घुटनों तक
वह था गगन-कंगूरों पर।

पुरुष सनातन चला जा रहा था
था कन्धों पर हाथ रखे
निकला वह हतभागा, जो
पिस्तौल सदा था साथ रखे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझे मात्र व्यक्ति है सम्मुख
पर वह निकला काल अनाम
चली गोलियाँ, बापू बोले,
'राम! राम! हे राम!! राम!!!

शेष हुई धरती की गाथा
गगन गिर पड़ा था भू पर
रक्त स्नात इतिहास पड़ा था
स्वतन्त्रता के गोपुर पर।

सन्नाटा खिंच गया चतुर्दिक
विह्वल थी सारी दुनिया,
आत्मा के उतरे वस्त्रों सी
म्लान पड़ी थी सब दुनिया।।

परमपुरुष वह लौट गया
पावन चरित्र का दे चन्दन
'विश्व एक परिवार बने
मैं चला, सुखी हों सारे जन।'

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शबरी

[रचनाकाल : १९७८]

- त्रेता
- पम्पासर
- तपस्या
- परीक्षा
- दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय दृष्टि उत्पन्न हो इसके लिए
पुत्र ईशान और पुत्री वान्या को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेता

त्रेता-युग की व्यथामयी
यह कथा दीन नारी की,
राम-कथा से जुड़ कर
पावन हुई, उसी शबरी की।

बदल गया था सतयुग
का सारा समाज त्रेता में,
वन-अरण्य की ग्राम-सभ्यता
नागर थी त्रेता में।

काट वनों को लोगों ने
खलिहान-खेत फैलाये
जोड़ पथों से विकट दूरियाँ
कस्बे-नगर बसाये।

जन्म ले रहे थे समाज में
राज्य और कुछ जनपद
सभी सभ्यताएँ पनपी हैं
मैदानों, नदियों तट।

विन्ध्य-हिमालय बीच
अगर गंगा ना होती,
क्या होता यह देश
और संस्कृति क्या होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम्र-कुञ्ज, गेहूँ गन्नों का
उपजाऊ मैदान सुहाना,
ऋषियों के वे पावन आश्रम
नदी-घाट के तीरथ नाना।

आर्य बस्तियाँ फैल रही
थीं, नगर-सभ्यता लेकर
वन्य-जातियाँ भी छिटपुट
थीं, आदिमता को लेकर।

उत्तर का मैदान आर्य
था कोल-किरात विन्ध्याचल,
द्राविड़ था दक्षिण का
सारा प्रायद्वीप, अरुणाचल।

यात्राएँ थीं कठिन
मार्ग भी सुगम नहीं थे
लूट-पाट करते डाकू-दल
फैले सभी कहीं थे।

व्यापारी गण सार्थ बनाकर
सीमान्तों तक जाते
सिन्धु तटों से माल, लाद
नौकाओं में ले जाते।

थे समाज में वर्ण,
श्रेणियाँ अधिक नहीं थीं;
बनी संहिता आचारों की
सामाजिकता अधिक नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी सरल ही था समाज
औ' राजनीति भी क्रूर नहीं थी,
नगर-सभ्यता त्रेता की, यह
धन-धरनी से दूर नहीं थी।

धर्म और नैतिकता की
तब नींव पड़ी जन-मन में
थे ब्राह्मण सिरमौर, तपस्या
के कारण सब जन में।

रक्षक औ पालक क्षत्रिय
थे वैश्य बने व्यापारी,
श्रमिक शूद्र थे, थी समाज
की यही व्यवस्था सारी।

जिन्हें न थे स्वीकार
धर्म-नैतिकता के ये बन्धन
आर्य जाति के होने पर भी
कहलाये राक्षस गण।

यज्ञों को विध्वन्स, सताया
करते आश्रम-वासी,
रक्त-मांस से दूषित।
कर जाते सब सत्यानाशी।

वन्य जातियाँ अब भी थीं
आखेट आदि ही करतीं,
पशु-पक्षी-मछली पर
अपना जीवन-यापन करतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ष्याभक्ष्य किसी बात का
कब विवेक था उनमें?
छोटे-छोटे गोल बनाकर
रहते थे जंगल में।

हिंसा, लूटपाट, हत्याएँ
इनका जीवन-दर्शन
रेवा से लेकर कावेरी
तक फैले थे ये जन।

ऐसी ही थी शबर जाति
भी, विन्ध्यवनों में रहती,
मनुष्यता से दूर, जाति
यह अपने ही में रहती।

श्रमणा नामक शबरी वह
ऐसा ही जीवन जीती,
उसे घृणा थी पशु-हिंसा से
पर क्या कर सकती थी।

घर क्या था बूचड़खाना था
मांस मँहकता रहता
कहीं, किसी की खाल खिंच
रही, कोई छुरी से कटता।

काँटे हड्डी फैले रहते
रक्त-लकीरें भू पर
जीवित नरक सरीखे घर में
उसका जीवन दूभर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था सब कुछ वीभत्स वहाँ
परिवार लोग भी सारे,
काले तन पर कसे लँगोटी
लगते ज्यों हत्यारे!

कौन जन्म का पुण्य जगा
श्रमणा शबरी के मन में—
'पाप-कर्म ही लिखा हुआ है
क्या मेरे जीवन में?'

रक्त सने हथियार नदी में
धोते सोचा करती—
'प्रभु ने कितने मधुर बनाये
वन, सरिता, यह धरती।

'पर मनुष्य यह कितना पापी
बैर सभी जीवन से
नहीं जानता क्या होगा
उसका इस आत्म-हनन से।

माना यह सब कुल-कुटुम्ब है
अपने ही हैं प्रिय जन
पर इस बन्धन में रहते
सम्भव क्या उन्नत जीवन?

'पता नहीं किस साधू ने,
यह नाम दिया था श्रमणा
भला शबर लड़की का होता
नाम कभी भी श्रमणा?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमणा जैसा नाम, किन्तु,
रहना तो घोर नरक में
बीत जाएगा क्या यह
सारा जीवन इसी नरक में?

पकता रहता मांस आग में,
घुटनों पर वह सिर धर
लाल आँच में तप उठती
पर पहुँचे किस निर्णय पर?

'सब बन्धन से कहीं श्रेष्ठ है
उस प्रभु का ही बन्धन
कुल-कुटुम्ब की चिन्ता से
अच्छा है प्रभु-आराधन।'

घोर वितृष्णा घिर आयी
श्रमणा शबरी के मन में,
त्यागो यह परिवार-मोह
यदि करना कुछ जीवन में।

अर्धरात्रि की गहन निशा में
सोये थे सब बच्चे,
पति की बाँह गले में थी
थे मोहसूत्र ये कच्चे।

सुबह तलक जो मृगशावक था
अब था वह मृगछाला
कहीं मनुजता नाम नहीं
यह कैसा जीवन काला?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्बी के दीये का भी
आलोक भला कुछ होता?
आकण्ठ पापमय हैं ये सारे
छोड़ो इनको सोता।

बाहर निकली, देखा नभ में
मंगल सुलगा पड़ता
नभ-गंगा आकाश बीच थी
काल-पुरुष था जगता।

वृत्त बनाकर तिरछे थे
उत्तर में सप्तर्षि तारे
गहरा नीला हो आया था
नभ कुछ, क्षितिज किनारे।

कृष्ण पक्ष, था, मन्द हवा, थी,
था वृक्षों में कम्पन
एक अकेले नाले का था
शब्द, नहीं तो, निर्जन।

एक बार फिर कुटिया में
जाकर देखा, सब सोये,
नाक बज रही थी सबकी
सब सपनों में खोये।

पम्पासर

शाल और सागौन वनों को
पार किया शबरी ने,
सुन रक्खा था नाम कभी
पम्पासर का शबरी ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पम्पासर में बड़े-बड़े ऋषि
मुनियों के हैं आश्रम
ज्ञान-ध्यान, तप-आराधन
के तीर्थरूप हैं आश्रम।

इन ऋषि-मुनियों में मतंग
ऋषि थे सबसे तेजस्वी
दूर देश से सुनने आते
वाणी जो ओजस्वी।

पम्पासर में पहुँच, लगा
आश्रम में कैसे जाये?
शबर जाति की स्त्री
कैसे ऋषि के दर्शन पाये?

प्रातःकाल हुआ ही था,
सब स्नान-ध्यान में रत थे,
यज्ञ आदि के लिए बटुक-
जन लकड़ी बीन रहे थे।

कोई क्यारी छाँट रहा था
सींच रहा जल कोई,
दुही जा चुकी थीं गायें सब
रँभा रही थी कोई।

गीले आँगन में हरिणों के
खुर उभरे पड़ते थे,
बैठ आम की डाली पर
तोते चीखे पड़ते थे।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलकलशी ले ऋषि-कन्याएँ
पोखर आतीं-जातीं,
भीगी, एकवसन में वे
सब, धुले चरण धर चलतीं।

यज्ञ-वेदियाँ सुलग चुकी थीं
वेदपाठ था जारी,
कितनी दिव्य और भव्य थी
शान्ति यहाँ की सारी।

थी विशाल कितनी हरीतिमा
शोभित थीं पगवाटें,
था विराट वट-वृक्ष खड़ा
फैलाए वृद्ध जटाएँ।

दूर किसी एकान्त विजन में
मुग्ध मयूरी तन्मय,
देख रही अपने प्रिय का
रास नृत्य जो रसमय।

हर सिंगार, चम्पा, कनेर
कदली, केला थे फूले,
कमलों पर टूटे पड़ते थे
भ्रमर सभी रस भूले।

पहुँची वह मतंग ऋषि-आश्रम
यज्ञ-धूम था पावन
दिव्य-गंध से युक्त हवा थी
सामगान मन-भावन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर स्नान किया पोखर में
हो पवित्र तन-मन से,
बैठ गयी आश्रम-फाटक पर
सार्थक हो दर्शन से।

शान्ति-पाठ हो चुका, मतंग
तब मण्डप से उठ आये,
देखा फाटक पर स्त्री को
तो थोड़ा सकुचाये।

देखा, सम्मुख भव्य व्यक्ति था
मानों तप ही आया
शबरी ने उठकर ऋषि के
चरणों में शीश झुकाया।

पूछा ऋषि ने-तुम कौन?
कौन हो? और कहाँ से आयी
देखा न तपोवन में पहले
क्या नयी-नयी ही आयी?

ऋषि की जिज्ञासा-वाणी सुन
भर आये शबरी के लोचन,
कैसे बतलाये अन्त्यज है
शबर जाति की; दुखमोचन!

यदि बतला दूँ, तो क्या, मुझको
आश्रम में रख लेंगे ऋषिवर?
यदि रख भी लें, तो बाकी के
कर देंगे जीवन ही दूभर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त्यज अछूत, फिर शबर जाति
उस पर स्त्री, क्या हेतु कहूँ?
अध्यात्म-पिपासा लेकर मैं—
आयी हूँ, कैसे बात कहूँ?

बोली, 'प्रभु के दर्शन से मेरा
जीवन आज कृतार्थ हुआ
मैं शबर जाति की श्यामा हूँ
प्रभु-सेवा मेरा इष्ट हुआ?'

'क्या कहा, यहाँ सेवा करने
आयी हो मेरे आश्रम में?
कैसे अछूत स्त्री को मैं
रख सकता अपने आश्रम में?

सौभाग्यवती तुम लगती हो
परिवार और पुरजन होंगे',
'परिवार और पुरजन कैसे?'
'कुछ सांसारिक बन्धन होंगे!'

'मैं सब को तृणवत त्याग
चली आयी प्रभु के श्रीचरणों में'
'अन्त्यज सीमा ज्ञात मुझे
पर पड़ी रहूँ श्रीचरणों में।'

'आश्रम की भी सामाजिकता
कैसे अछूत रह सकता है?
उस पर स्त्री, घर से भागी
कुछ भी प्रवाद हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स्थान यहाँ देना तुमको
इसका निर्णय सब पर निर्भर,
यदि उच्चवर्ण की होतीं तुम
तो प्रश्न नहीं था कुछ दूभर।'

'मैं समझी प्रभु हैं अग्निरूप
सब सांसारिकता से ऊपर
अन्त्यज भी हो जाते पावन
जिनकी पवित्रता को छूकर।

'क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका आराधन क्यों सीमित?'

चौंके मतंग, वह समझ गये
कीचड़ में कमल खिला है यह।
होगी अछूत, पर जाने किन
जन्मों का पुण्य खिला है यह।

चुप देख, पुनः शबरी बोली
'चिन्ता न करें मेरे कारण,
मैं किसी पेड़ के नीचे रह कर
कर लूँगी जीवन-यापन।

'मैं चाह रही, केवल प्रभु के
श्रीचरणों की सेवा करना,
मैं कर लूँगी सन्तोष मिले
यदि गायों की सेवा करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रभु के श्रीमुख से प्रवचन सुन
यह भवसागर तर जाऊँगी,
पापी हूँ, गुरु की कृपा हुई
तो हरि-गुण गा तर जाऊँगी।'

बोले मतंग—'बेटी शबरी !
यदि अन्त्यज तू, तो कौन श्रेष्ठ?
तुझमें तो प्रभु ही बोल रहे
निश्चय होगी तू भक्त श्रेष्ठ।

'मैं तुझे सौंपता गौशाला
पालना करना आश्रम जीवन
हरि से है कोई नहीं बड़ा
प्रभु नाम-जाप ही आराधन।'

आँखें भर आयीं शबरी की
गिर पड़ी गुरु पद-पद्मों पर,
विह्वल शबरी यमुना सी थी
ऋषि के उज्ज्वल पद-पद्मों पर।

'मैं पापी हूँ, हूँ हतभागी
इस भवसागर से पार करो
प्रभु-चरणों में हो भक्ति अटल
मुझ को दासी स्वीकार करो।'

विह्वल शबरी को तब मतंग
आश्वासन दे भीतर लाये,
सब शिष्य और आश्रमवासी
थे देख रहे अति चकराये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ने मुँह बिचकाया, कुछ ने
मुस्कान-कुटिलता दरसायी,
कुछ ने सोचा-यह कौन देवि
जो श्यामा बन आश्रम आयी!

पर कुटिया के भीतर जाना
था शबरी को स्वीकार नहीं
माना ऋषि को आपत्ति न थी
पर वे ही तो संसार नहीं।

वह पहुँची तब गौशाला में
देखी धौला, कपिला, श्यामा
वे गायें थीं या कामधेनु
चित्रित सींगों की अभिरामा।

थे देख रहे अचरज से
बछड़े गायें शबरी को,
सिर हिला, बजा गलघंटी
ज्यों पूछ रहे शबरी को।

थीं तो पशु की ही आँखें
पर भाव भरा था उनमें,
शबरी को पास बुलाता
था मौन निमन्त्रण उनमें।

निर्भय धौली तक पहुँची
फिर सहलाया कपिला को,
सिर सूँघा तब कृष्णा का
गलबाँही दी श्यामा को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिप कर मतंग ने देखी
पशु-शबरी की यह लीला,
सोचा-किस घाट बही थी
निर्मल, पुण्या यह सलिला।

विश्वास हो गया ऋषि को
शबरी निश्चय पुण्यात्मा
जाने किन कर्मों के हित
थी भटक गयी यह आत्मा।

सम्भव है आश्रम के जन
या अन्य तपोवन वासी,
आपत्ति करें शबरी के
बनने पर अन्तेवासी।

जब प्रभु ही ने है भेजा
वे पथ भी दिखलाएँगे,
है दीनबन्धु, निश्चय इस
दीना को अपनाएँगे।

तपस्या

कुछ दूर तपोवन से हट
पम्पासर के कोने में,
शबरी ने कुटिया छायी
निर्जन जंगल सूने में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुद को ही अचरज होता
अपने इस परिवर्तन पर,
कैसे वितृष्ण थी मन से
घर वालों के जीवन पर।

बचपन में भी जब सखियाँ
पेड़ों पर थी चढ़ जातीं,
नीड़ों से कच्चे अण्डे
लेकर वे सब खा जातीं।

यह देख-देख शबरी को
जाने कैसा सा लगता
कटते पशुओं का कँपना
उसको सपने में दिखता।

निर्मम तो प्रकृति भी है
पर उससे भी निर्मम मानव
सब भोजन हैं इसके तो
यह कैसा भूखा दानव!!

क्यों खोज असुन्दर की हो
जब इतना कुछ है सुन्दर
सरिता बालारुण तारे
नालों का कोमल मर्मर!

क्या कोई अर्थ नहीं है
फूलों का या परिमल का?
क्या व्यर्थ झाँकना है यह
जल में इन स्वर्ण-कमल का?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मन्त्रों के पावन स्वर
किसको सम्बोधन करते?
है कौन घास बन फैला
जिसको पशु तन्मय चरते।

कोई तो होगा नभ में
जल में, थल में या हममें,
जो गन्ध समीरण बनकर
है घूम रहा कण-कण में।

गुरु की आज्ञा थी, आश्रम
का जीवन पालन करना
था प्रथम पाठ जीवन का
अपने पर अंकुश रखना।

भिनसार ब्राह्मवेला में
बिस्तर से वह उठ जाती
स्नान-ध्यान कर तब वह
कुश-फूल आदि चुन लाती।

सूर्योदय के पहले ही
गुरु-गोशाला में होती,
दाना-पानी दे सबको
तब गायें दुहती होती।

ताजे गोबर से नित ही
तब आँगन लीपे जाते,
उसके आँचल में मुँह दे
मृग-शावक घूमा करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोते-मैना पिंजरों में
जो अब तक मौन बने थे,
शबरी के दिखते ही वे
सब कान पका देते थे।

तब धान धूप में देना
कुटना-पिसना सब करना,
प्रत्येक बटुक तक की भी
आवश्यकता पूरी करना।

आश्रम की नित्य सफाई
थे काम नित्य शबरी के,
कामों में बझे-बझे ही
दिन ढल जाते शबरी के।

प्रायः तो आते-जाते, सुनती
रहती वह प्रवचन,
एकाग्र चित्त वह उस दिन
जब हो विशेष आयोजन।

सन्ध्या को नित ही ऋषिवर
शिष्यों को कथा सुनाते,
कोने के खम्भे से टिक
सुनती, क्या अर्थ बताते?

आश्रम की दीया-बत्ती
करने पर ही घर जाती,
तब अपने भीतर कैसा
प्रभु का सम्बोधन पाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जिस पवित्रता के हित
आयी थी घर से चलकर
वह जिस सुगन्ध के पीछे
निकली थी हरिणी बन कर

कुटिया के बाहर सीढ़ी
पर जैसे बैठी मिलती,
है कोई संग में प्रतिक्षण
ऐसी आहट सी मिलती।

दिन भर कुटिया थी सूनी
यह लगा नहीं कोई दिन,
ताजा ही लगता सब कुछ
ये फूल और यह पूजन।

ठाकुर-प्रतिमा के सम्मुख
तन्मय हो कीर्तन करती
प्राय: तो रातें उसकी
पूजा में बीता करतीं।

कब दीप शेष हो जाता
वह कब बेसुध हो जाती
कब आँसू झरने लगते
कब हिचकी सी बँध जाती।

खिड़की से कोई वन-पशु
कुछ ताक-झाँक कर जाता
आती सियार की बोली
कोई पत्ते खड़काता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन शबरी तो दिन में
भी प्रभु में तन्मय रहती
वह सभी कर्म को प्रभु का
शृंगार समझ कर करती।

जब अँधियारे पाखों की
एकान्त रात्रियाँ होतीं
तब मुग्ध भाव से निर्भय
सीढ़ी पर बैठी होती।

वह होती, होता सम्मुख
प्रभु के विराट सा यह नभ
आनन्द बरसने लगता
प्रभुमय हो जाता अग-जग।

जब मोरपंख चाँदनियाँ
झालर सी हिलने लगतीं
प्रभु आये मलमल पहने,
वह गीत सुनाने लगती।

कपिला-तन सी जब बिजली
मेघों में कँप-कँप उठती
शबरी विभोर हो वन-वन
अपने ठाकुर को गुनती

ये मन्द हवा के झोंके
कैसे चन्दन-गन्धी हैं
क्या प्रभु-दुकूल को छूकर
ये इतने मृदु-गन्धी हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नभ भी तो ऋषि ही है
नक्षत्र-मन्त्र जो लिखता
प्रभु के रहस्य सा क्या नभ
इतना ही, जितना दिखता?

मुझको विराट! मत भटका
सुर - गंगा के आँगन में,
तुम प्रतिमा बनकर आओ
मेरे टूटे छाजन में।

मैं गरुड़ नहीं, ना हंसी
जो लाँघ दूरियाँ आऊँ,
प्रारब्ध नहीं है इतना
जो यज्ञ-याग कर पाऊँ।

तेरी विशाल रचना में
मैं घास-पात ही केवल,
शबरी का तो है तू ही
आराध्य और बस तप-बल

शबरी की सारी रातें
मनुहार भरी ही होतीं,
भिनसार देख तब शबरी
आश्रम को उन्मुख होती।

कर स्नान आदि पोखर से
ऋषि पथ में थे मिल जाते,
शबरी-मुख की तन्मयता
से मन ही मन मुस्काते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे शिष्या से अब यह
थी भक्त बन रही प्रतिदिन,
कोई क्या गुरु हो सकता
इसका, जो प्रभु को अर्पण।

मन्दार पुष्प सा जिसका
सर्वस्व समर्पित प्रभु को,
जो स्वयं तपस्या है अब
क्या वेद-मन्त्र हैं उसको।

यह क्षार झाड़ जिस दिन भी
ज्योतित होगी तेजस बन
त्रैलोक्य छोड़ तब प्रभु ही
आएँगे देने दर्शन।

परीक्षा

शबरी की दिनचर्या अब
पूजा-प्रबन्ध था करना,
अब थी अभिभावक पूरी
सब पर निगरानी रखना।

अब कभी-कभी प्रवचन में
उल्लेखित होती शबरी,
मानो वह परम सती हो
हो भक्त शिरोमणि शबरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल तक जो जंगल-जंगल
थी घास-पात जैसी ही,
थी दया-पात्र जो सबकी,
अब वह आश्रम की तुलसी।

नभ का पवित्र नीलापन
था उसके श्याम बरन में,
चन्दन सुगन्ध थी उसके
उस सात्विक भोलेपन में।

उन नयनों में करुणा थी
औ, थी पवित्र पावनता,
उसको सब प्रभुमय लगता
थी उसमें प्रभु की प्रभुता।

प्रत्येक वृक्ष का पत्ता
प्रभु नाम सरीखा लगता,
हो फूल कहीं भी कोई
प्रभु संकीर्तन सा लगता।

लगता वह स्वयं नदी है
फूलों में कल-कल बहती,
कोकिल बन कुंजों-कुंजों
प्रभु नाम टेरती रहती।

वह ही फैली है बनकर
वन-कानन और तपोवन,
प्रभु शाद्वल बन कर फैले
वह चरती बनकर गोधन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हँसती धूप सरीखी
शिशु सी व्याकुल हो जाती,
कोई आहट या ध्वनि सुन
तन्मय विभोर हो जाती।

लगता वह प्रभु अधरों की
बाँशी है, गूँज रही है,
वह स्वयं मन्त्र है कोई
जो प्रभु को खोज रही है।

ये सूर्य-चन्द्र सब उसको
अपने में उगते लगते,
आकाश पहन लेती वह
सब बौने लगने लगते।

केवल मतंग थे जो इस
शबरी-स्वरूप से परिचित,
इस दीन हीन श्यामा के
थे महाभाव से हर्षित।

पर किसको औ' किस युग में
स्वीकार किया लोगों ने?
हर तरह तपा कर देखा
है, युग ने औ' लोगों ने।

अपमान और बदनामी
तो मामूली बातें हैं
पीड़ा, दुःख देना, ये तो
लोगों की प्रिय घातें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर शबरी जैसी अन्त्यज
को लोग छोड़ सकते थे?
मुनि-साधू होने से क्या
वे द्वेष छोड़ सकते थे?

यह भील जाति की कुलटा
सतियों सी होगी पावन?
अब आर्य-कण्ठ से शूद्रा
का करना होगा गायन?

चाहे मतंग ऋषि जो भी
जैसा भी इसको मानें,
वे शबरी पर चाहें तो
मन्त्रों को ही रच डालें।

पर सामाजिक नियमों का
करना ही होगा पालन,
क्या शूद्र आर्य हो सकता
करने से प्रभु-आराधन?

यह तो है उच्छृंखलता
इससे समाज टूटेगा,
मर्यादाएँ हटने से
सारा समाज बिखरेगा।

सामाजिकता के अंकुश
से ऊपर धर्म नहीं है,
ये यज्ञ-याग औ' पूजन
शूद्रों का कर्म नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है सार्वजनिक पम्पासर
पर शूद्रों के हित वर्जित,
तब किस आज्ञा से शबरी
है स्नान आदि करती नित?

भूले मतंग ऋषि शायद
आश्रम - जीवन मर्यादा,
यह अनाचार है कैसा
घर में रक्खे हैं शूद्रा।

'शिव-शिव'—मतंग की तो
मति ही अब भ्रष्ट हुई है
अब आर्य स्त्रियों की ही
यह शबरी इष्ट हुई है?

नित कथा और प्रवचन में
इसका दृष्टांत सुनाना
सावित्री-अनसूया के
सँग, शबरी नाम गिनाना।

इससे ज्यादा भी कोई
पातक हो सकता जग में?
ऋषि होकर कुलटा-शूद्रा
को सती बताते जग में।

स्वीकार नहीं कर सकता
पम्पासर का यह ऋषिकुल,
चुन लें वे शबरी या फिर
अपना आश्रम और गुरुकुल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषित है पम्पासर का
जल, शूद्रा के छूने से,
गो-हत्या पाप लगेगा
इस जल को अब छूने से।

वर्जित है अब से इसमें
सब स्नान पान करना भी,
घोर पाप सा होगा
इसका दर्शन करना भी।

एकत्र हुए थे सारे
ऋषि-मुनि-साधु- संन्यासी;
शबरी मतंग को लेकर
उत्तेजित अन्तेवासी।

माना मतंग थे ऋषिवर
ज्ञानी औ' परम तपस्वी,
पर उनके यश-दिनकर पर
छायी थी शबरी-बदली।

आचार किसी का जग में
वैयक्तिक कब हो सकता?
हैं अन्य स्त्रियाँ-कन्या
जिन पर प्रभाव पड़ सकता।

करना ही होगा वर्जित
दासी शबरी, जो शूद्रा
ऋषि का चरित्र यह कैसा!
क्या मिल सकती है शिक्षा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार न हो यदि उनको
सारे समाज का निर्णय,
तो बहिष्कार करने का
करना ही होगा निश्चय।

सुनकर समाज का निर्णय
बस खिन्न हुए ऋषि मन में,
कब धर्म-मर्म जागेगा
साधू-समाज के मन में?

अपने को श्रेष्ठ समझना
यह दम्भ नहीं तो क्या है?
जिसका जीवन है सात्विक
वह आर्य नहीं तो क्या है?

क्या धर्म-तत्व से ऊँची
है वर्णाश्रम मर्यादा?
तब व्यर्थ तपस्या-पूजन
यह गंगा भी है शूद्रा।

जब तक शबरी शूद्रा थी
थी तब तक वह प्राकृतजन,
अब वह नर से भी ऊपर
है शक्ति, देवि, नारायण।

वैराग्य रूप है शबरी
वह जन्म-मरण से ऊपर
सौ यज्ञों के पुण्यों से, है
श्रेष्ठ भक्ति इस भू पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम कहते हो शबरी ने
यह जल दूषित कर डाला,
पूछो कुश-दूर्वाओं से
किसकी जपते हैं माला?

यदि पम्पासर है तीर्थ
रहेगा आगे, तो शबरी से
आदिकाल की सतियाँ भी हैं
सती आज, तो इस शबरी से।

पर समाज तो सभी युगों
में ऐसा ही होता है,
अच्छे जन के ही मारग में
यह कण्टक बोता है।

और त्यागना पड़ा तपोवन
ऋषि को, शबरी को भी
कुटी जला, सब नष्ट किया
शूद्रा की स्मृति को भी

था थोड़ी ही दूर जलाशय
फिर से कुटी बनायी,
यज्ञ-याग, कीर्तन-आराधन
पुनः पवित्रता आयी।

महाभाव की परिभाषा था
उस शबरी का जीवन
अब मतंग ने सिखलाये
कुछ योग और कुछ दर्शन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल तक जो शबरी झाड़ी थी
उसे सँवारा ऋषि ने,
योग-भक्ति में निपुण बनाया
शबरी को उन ऋषि ने।

शक्ति एक है, किसी मार्ग से
चलो, वहीं पहुँचोगे,
योगी-भक्त कहाओ कुछ भी
प्रभु तक ही पहुँचोगे।

बीत गया जो वह भी प्रभु था
औ' भविष्य भी प्रभु है,
नदियों में प्रतिक्षण बहता
औ' अडिग शिखर भी प्रभु है।

वह सत्ता है, नाम-रूप धर
कर आती इस जग में
साधारण जन सा चलता
भी देख सकोगे मग में।

महाभाव के सँग में था
अब ज्ञान-बोध शबरी में,
भक्ति-योग की गंगा-यमुना
का संगम शबरी में।

हुई गुरु-कृपा और बनी
अब अन्नपूर्णा शबरी
प्रभु की तुलसी-कण्ठी थी
तो योग-अग्नि भी शबरी।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी परीक्षा बाकी थी
उसके पावन जीवन की,
थी समाज में घोर लांछना
ऐकान्तिक जीवन भी।

प्रतिहिंसा की आग अभी तक
थी समाज के मन में,
सबकी करके घोर उपेक्षा
क्यों रहते हैं निर्जन में?

शबरी अब भी बनी हुई थी
यही क्रोध का कारण,
अब वह योगी भी है, यह
सुन पीड़ित सारा जन-मन।

समझे थे, मतंग ऋषि
सबसे क्षमा, माँग, शबरी को
कर देंगे निष्कासित, औ'
सब भूलेंगे शबरी को।

पर उसके इस दिन-दिन
बढ़ते तेज-रूप को सुन कर,
और अधिक तब ऋषि—
मुनियों के साँप लोटता उर पर।

पता चलाया लोगों ने—
तब उसके पति का, घर का,
और गया तब एक आदमी
लेकर पता शबर का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खबर मिली तो दौड़ा आया
लिए साथ में साथी,
क्रोध अभी भी था उस
पर जो बरसों पहले भागी।

धनुष-बाण, हथियार लिए
सब लड़ने की तैयारी,
शबर जाति की इस स्त्री
ने काटी नाक हमारी।

समझाया सबने उसको
ऋषि ने उसको रख छोड़ा
यदि उसको पाना ही है
तो धैर्य धरो कुछ थोड़ा।

जाना तुम सब अर्ध रात में
जब शबरी हो सोयी
उसकी कुटिया अलग बनी है
वहाँ न होता कोई।

जाग गये औ' पता चल गया
ऋषि को तो है आफत,
सभी भस्म हो जाओगे औ'
आ जाएगी शामत।

ले जाओ मुँह बाँध उसे
चुपचाप अँधेरे ही में
जैसे भी हो ले जाना
वन पार अँधेरे ही में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज अमावस और तुम्हारी
इष्ट-देवि का दिन है,
खोयी स्त्री तुम्हें मिल रही
कैसा मंगल दिन है।

सब कुछ समझ, चला शबर—
दल शबरी के आश्रम पर,
कृष्ण-गरुड़ सा अन्धकार
था फैलाये अपने पर।

उग आये थे तारे निर्मल
हवा शान्त, था निर्जन
पेड़ों के पीछे छुपकर सब
बैठ गये शाबर-जन।

पहले झींगुर झन्नाये, फिर
आयी उलूक की घुप-घुप,
आधी रात समझकर शाबर
बढ़े सभी तब गुपचुप।

चलने से पत्तों की चरमर
थोड़ी तो होती थी,
कहीं जलाशय पार विरहिणी
चकवी भी रोती थी।

सन्नाटे में लोग देख, कोई
सियार भग उठता,
अन्धकार वन की साँसों सा
उठता-गिरता लगता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धकार में दिखलायी दी
तब छोटी सी कुटिया,
खिड़की के छनते प्रकाश में
पुतली सी थी कुटिया।

तभी उन्हें उस अन्धकार
में दिखा दूर पर आश्रम,
यह किसकी कुटिया है, इसका
मिटा सभी को संभ्रम।

पूर्ण सजग हो, शबरी का पति
पहुँचा तब खिड़की तक,
धीरे-धीरे और आ गये
औ पहुँचे खिड़की तक।

दीप जल रहा था सिंहासन
की प्रतिमा के आगे
आँखें बन्द किये बैठी थी
शबरी प्रभु के आगे।

कभी न देखी थी पवित्रता
ऐसी उन शबरों ने,
थी शबरी ही, पर अजीब थी
देखा सब शबरों ने।

श्याम वर्ण की झील सरीखा
शबरी-मुख था सुन्दर,
कैसी चन्दन-गन्ध आ रही
थी कुटिया के अन्दर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें लगा कुटिया के भीतर
कोई जाग रहा है
जादु-पुरुष है कोई जो
हम सबको देख रहा है।

दरवाजा उढ़का था, खोला
पहुँचे वे सब अन्दर,
कभी न जिनने भय जाना
वे लगे काँपने थर-थर।

अब भी शबरी तन्मय थी
था दीपक भी तो निश्चल,
दिग्विमूढ़ वह खड़ा हुआ था
शबर और शाबर-दल।

सोच रहे थे खड़े हुए वे
शबरी यदि चिल्लायी
औ' ऋषि ने सुन लिया
अगर, तो सबकी आफत आयी।

एक साथ सब झपट दबोचें
उचित यही है करना,
किसी तरह मुँह बाँध इसे
लेकर झटपट चल पड़ना।

गोल बना कर बढ़ा दो कदम
आगे तब शाबर-दल,
तभी दिखा शबरी के चारों
ओर आग का कुण्डल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ न पाये पहले तो वे
समझे कोई भ्रम है,
देखा रक्षा करता बैठा
वह साँपों का क्रम है।

बढ़ा आ रहा था कुण्डल वह
लाल-लाल लपटों में
लगा कि जैसे भस्म कर
दिए जाएँगे लपटों में।

धीरे-धीरे गरमी सबकी
देह लगी झुलसाने,
आग फुँकी पड़ रही सभी
में, और लगे चिल्लाने।

कौन वहाँ था, जो सब सुनता
और कहाँ था स्वर भी?
वे थे अब केवल पदार्थ-जड़
जिन्हें न लगता डर भी।

तभी हुई आहट सी, देखा
खड़े हुए थे ऋषिवर,
उनके आते ही कुटिया का
जादू डूबा सत्वर।

पूछा ऋषि ने—कौन? रात में
क्यों और कैसे आये?
लगता है कुछ दुष्ट प्रयोजन
लेकर तुम सब आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात यम ही सम्मुख थे
काँप उठा शाबर-दल,
क्षमा माँगते सभी गिर पड़े
कम्पित, ऋषि के पदतल।

पूरी बात सुनी जब ऋषि ने
दुःखी हुए वह मन से,
प्रभु की कृपा बिना मुश्किल
है, उन्नत होना मन से।

क्षमा कर दिया सबको
लौटे प्रसन्न वे सारे,
थे अब भी चमक रहे कुछ
प्रातः के नीलम तारे।

महाभाव में शबरी तो
थी प्रशान्त तल्लीना
वह श्यामा थी या शिव थी
यह था रहस्य अति झीना।

द्वार बन्द कर लौटे
ऋषिवर तब अपने आश्रम,
थी कालरात्रि यह कैसी
सब कुछ सम्भव था दुर्दम।

ऋषि को अवगत थी घटना
वे तो त्रिकालदर्शी थे
सब कुछ के प्रति इस जग में
वे तो करुणादर्शी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा, थी पूर्व दिशा में
ऊषा के रथ की लाली,
आएँगी अन्य उषाएँ
लेकर आभा सोनाली।

चैतन्य बनी शबरी अब
कुटिया के बाहर आयी
देखा ऋषि लौट रहे थे
वह समझ नहीं कुछ पायी।

कैसा एकान्त विजन में
फैला था ज्यों सागर हो,
इन आकाशों को पहने
बैठा कोई नागर हो।

कर रही प्रतीक्षा हर क्षण
शबरी किस परम-पुरुष की,
जब वह धरती जैसी है
होगा आकाश पुरुष भी।

दर्शन

था उग्र अभी भी जनमत
शबरी-मतंग को लेकर,
जो भी प्रचार सम्भव था
था दूर-दूर औ' घर-घर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब जान चुके थे अब तक
सीता की हरण-कथा को,
सब समझ रहे थे मन में
इस दारुण राम-व्यथा को।

कोई क्या कर सकता था
थी गहन समस्या भारी,
जो यज्ञों का रक्षक हो
उसकी ही हर ली नारी।

वह आर्य-जनों का त्राता
था घूम रहा वन-वन में,
केवल सन्तोष यही था
थे लक्ष्मण उनके संग में।

युवराज या कि रक्षक का
ही था स्वरूप जन-मन में।
थे अति ही आज्ञाकारी
जो भटक रहे थे वन में।

पर ऋषि मतंग तो दृष्टा
सब देख रहे माया को,
भगवान रूप धर, सार्थक
करने आये धरती को।

निश्चिन्त हुए वह सुनकर
प्रभु पहुँच गये हैं वन में
जाएगी शबरी निश्चय
अब तो प्रभु-कृपा-शरण में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकले मतंग ऋषि बाहर
पूरा कर सन्ध्या-वन्दन,
सूर्यास्त-आरती नभ में
कीर्तन सारा खग-कूजन।

सुन पड़ा दूर कोलाहल
फिर दिखे लोग आते से,
उत्तेजित भी थे शायद
कुछ बातें समझाते से।

शबरी अपनी कुटिया में
थी महाभाव में डूबी,
वह समय-देश से ऊपर
प्रभु में तन्मय, रस-डूबी।

भीड़ निकट आ पहुँची तो
ऋषि आश्रम-बाहर आये,
तब तक दो देवपुरुष से
ऋषि-चरणों पर झुक आये।

यह श्याम-श्वेत की जोड़ी
हैं राम और लक्ष्मण ही,
यह देवमुखों सी मुद्रा
बतलाती प्रभु-लक्षणं ही।

सादर सबको भीतर ले
पहुँचे मतंग आश्रम में,
कुछ तनी हुई मुद्रा में
कुछ खोज रहे आश्रम में।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब अप्रिय सन्नाटे में
बैठे थे कुश-आसन पर,
थे समझ रहे ऋषिवर सब
क्यों आये ये आश्रम पर।

जब कुशल-क्षेम भी होली
बोले मतंग तब सादर,
है कौन प्रयोजन वह जो
की कृपा सभी ने आकर?

सब चुप पम्पासर-वासी
बोले विनम्र रघुनन्दन,
इस शान्त-तपोवन आकर
सार्थक है मेरा जीवन।

'पम्पासर में जब पहुँचा
प्रभु का आश्रम था सूना,
सब ज्ञात हुआ लोगों से
मन में दुःख जागा दूना।

'मिथ्या प्रवाद यह कैसा
फैलाया अज्ञ जनों ने,
है क्या मतंग के जैसा
चौदह समस्त भुवनों में?

'जो ज्ञान-भक्ति का साधक
ऋषियों का भी आराधक
वह मर्यादा-नियमों का
कैसे हो सकता बाधक?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह धर्मरूप है जिससे
सब धर्म जन्म लेते हैं
वह तपस्याग्नि है जिसको
छू सभी स्वर्ण होते हैं।

'मैं सुन आया हूँ शबरी
की सारी तप-गाथा को,
होगी कृतार्थ मानवता
सुनकर सुगन्ध-गाथा को।

'शबरी अन्त्यज है तो क्या
वह शक्ति रूप है शूद्रा,
है तेज रूप वह केवल
शिव-शक्ति रूप है शूद्रा।'

'होने कृतार्थ आया था
है नम्र निवेदन केवल।
कर रहा प्रतीक्षा प्रभु की
वह आश्रम, पम्पासर-जल।'

'आहट पा देखा सबने
रमणी है या कि समस्या,
थी श्वेत-वसन में जैसे
कोई अकलंक तपस्या।'

उन दूज-चंद्र नैनों में
कितनी अगाध करुणा थी
चल रही धरा पर ऐसे
जैसे नभ की अरुणा थी।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि दिवस-तेज था उसमें
रातों सी नींरवता थी,
यदि कोलाहल लगती थी
तो थी मृदु कलरवता थी।

यह धरा, उपनिषद जैसे
वह मन्त्र-देवता उसकी
यह उसकी पूजा ही की
अत्यन्त सरलता उसकी।

उपवन-आश्रम के सारे
थे फूल सुगन्धित उससे,
थी वह पवित्रता ऐसी
होती पवित्रता जिससे।

वह भीड़ चीर कर सीधी
पहुँची ऋषिवर के सम्मुख,
पूजा-प्रसाद लायी थी
रख दिया उसे गुरु-सम्मुख

थे बेर जंगली केवल
यह था प्रसाद शबरी का
है अन्य और भी कोई
तब ध्यान गया शबरी का।

जब श्यामवर्ण में देखा
श्री रामचन्द्र को उसने,
यह, कौन उपस्थित सम्मुख
क्या रूप धरा है प्रभु ने?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह समझ गयी यह प्रभु हैं
आये कृतार्थ करने को,
हैं यही राम-लक्ष्मण जो
आये दर्शन देने को।

देखा न किसी को उसने
हैं पम्पासर वासी भी,
वह तो प्रभु में तल्लीना
हो गयी गीत गाती सी।

आनन्द जगा था उसमें
था पुष्पित सारा तन-मन,
कैसी विराट सन्ध्या थी
हो रहा प्रकृति में पूजन।

आनन्द-अश्रु में प्रभु-मुख
हर बार डूबने लगता,
उस क्षण यह जाने कैसा
प्रभु के वियोग सा लगता।

यह कैसी महाकृपा थी
प्रभु अपने से थे आये,
दुर्गम अरण्य-वन चल कर
शूद्रा शबरी-घर आये।

आँखों में खिंच आयी थी
सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसकी,
था राग बज रहा उसमें
रस-लीन इन्द्रियाँ उसकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तक तो वह थी केवल
जैसे नदिया मरुथल की,
सींचे अब सारा अग-जग
है यही सार्थता जल की।

पर अब तो सागर खुद ही
आया था चलकर द्वारे,
थी कब की यह आकांक्षा
नदिया को सिन्धु पुकारे।

प्रभु - नाम - फूल हैं फूले
जीवन - कदम्ब में उसके
ये धूम - रात्रियों वाले
हैं दीप जल रहे किसके?

दक्षिण के मलय सरीखा
उत्तर - समीर यह आया,
यह नील - पुरुष उसके हित
मधु अंगराग है लाया।

प्रभु को कैसे बैठाये
परिधान कौन सा लाये?
किन मन्त्रों से आवाहन
वह गान कौन सा गाये?

स्वीकार करेंगे क्या प्रभु
वनफूलों की ही माला?
प्रभु-कण्ठहार वह होती
होती यदि तुलसी-माला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे वह चरण पखारे
कैसे वह विजन डुलाये,
प्रभु को क्या सम्बोधन दे
क्या कह कर उन्हें बुलाये?

त्रैलोक्यपती के आगे
क्या रक्खे और परोसे?
यह जनमजली शबरी तो
प्रभु! तेरे आस-भरोसे।

तुम इसे मुक्ति दो प्रभु! अब
हैं पाद-पद्म अनुरागी
इस कुलकलंकिनी शूद्रा
को कर दो तुम बड़भागी।

वह झुकी हुई थी प्रभु के
चरणों पर श्रद्धानत हो,
आँसू से भीग गये पग
श्रद्धा थी झुकी, विनत हो।

प्रभु ने शबरी को सादर
आसन देकर बैठाला,
वह गूँथ रही थी आँखों
से प्रेम-अश्रु की माला।

प्रभु बोले—'क्या न मिलेगा
पूजा-प्रसाद इस जन को?'
'हैं बेर जंगली ये तो'
सुन कर हँस दिये कथन को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं बेर जंगली आखिर
होंगे मीठे-कड़वे भी,
रख सकती थी प्रभु आगे
मीठे होते यदि ये भी।

संकोच बहुत था भारी
क्या व्यञ्जन दे वह प्रभु को?
वह अधम रहेगी सब दिन
ये बेर खिला कर प्रभु को।

संकोच भक्त को था, पर
भगवान भाव के भूखे,
उत्सुक प्रभु को जो देखा
आँसू शबरी के सूखे।

प्रभु को देगी वह चख
कर, होंगे रसाल जो मीठे,
वह प्रभु की जिह्वा बनकर
चक्खेगी कड़वे - मीठे।

वह सहज-भाव से चखती
मीठे प्रभु को दे देती,
प्रभु सहज भाव से खाते
आँखों से कृपा बरसती।

लक्ष्मण अवाक थे शबरी
का भाव देख यह निश्छल,
निश्चय पी लेंगे प्रभु, यदि
दे भक्त उन्हें हलाहल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु बोले मन्द्र स्वरों में
जनता को कर सम्बोधन—
'शबरी तो जगज्जननि है
मैं हुआ आज ही पावन।

थी ज्ञात मुझे पहले ही
गाथा इस परम सती की,
वह जन्म-चक्र से ऊपर
जिस पर हो कृपा सती की।

'है, अन्य कौन त्रेता में
जो श्रेष्ठ भक्त, शबरी से,
है मन्त्र, यज्ञ यह सब कुछ
सब सिद्ध इसी शबरी से।

'मैं तो आया हूँ केवल
करने जयकार सती का
मैं हूँ कृतार्थ पाकर यह
स्वागत-सत्कार सती का।'

शबरी बोली तब प्रभु से—
'है मात्र निवेदन इतना
मैं सहन नहीं कर सकती
अब तो वियोग, क्षण जितना।

थीं सुलग उठीं शबरी में
योगाग्नि पुण्य-ज्वालाएँ,
था दिव्य तेज उस मुख पर
सूरज की स्वर्ण-प्रभाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश-भागवत की वह
थी प्रथम श्लोक सी-शबरी
करने कृतार्थ जाती थी
अब स्वर्गलोक शबरी।

जयकार कर उठे सारे
सच ही वह परम सती थी,
उस कृष्ण-कमल में निश्चय
ही आर्य-गन्ध बसती थी।

केवल मतंग थे अविचल
संतोष बड़ा था मन में,
शूद्रा से शक्ति बनी वह
सम्भव सब कुछ जीवन में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिकाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले दिनों नंगे पैरों

हुआ यह कि गत वर्ष नवम्बर १९८७ में इलाहाबाद जाने के लिए हमेशा की तरह ही खंडवा गया, पर उस बार किसी कार्यवश एक दिन पहले ही पहुँच गया था अत: अगले दिन शाम तक का समय एक प्रकार से खाली था, क्योंकि ट्रेन शाम को ही जाती थी इसलिए डॉ० शहज़ाद कुरेशी और कुमारी दिभा सेठी की राय हुई कि क्यों नहीं इस खाली समय का सदुपयोग असीरगढ़ घूमकर किया जाए? मुझे भी असीरगढ़ से ज्यादा लालच तो सतपुड़ा की आरण्यक एकान्तता और नीमाड़ी परिदृश्य का था, अत: हम लोग चले।

असीरगढ़ का क़िला कोई ख़ास बड़ा नहीं कहा जा सकता और न ही उसमें खाइयों, दरवाजों (दर-दरवाजों) वाला बड़े किलों का सा कोई खूँखार किलापन ही है, फिर भी अपनी तरह का वह क़िला तो है ही। हाँ, अपनी भौगोलिक स्थिति तथा प्राकृतिक पृष्ठभूमि के कारण आकर्षक अवश्य है। कभी निश्चित ही उत्तरापथ और दक्षिणापथ के बीच सभी युगों में मार्गों और आक्रमणों सम्बन्धी अपनी ऐतिहासिक भूमिका भी निबाही होगी। आज भी इसकी गोल, मध्यम ऊँचाई की अलग-थलग पथरीली पहाड़ी पर से चारों ओर का विस्तृत नीमाड़ी भूखण्ड देखना, एक ऐसा अनुभव है जो देखने से ही सम्बन्ध रखता है। वैसे स्वयं किले में देखने के लिए तो विशेष कुछ नहीं है—एक मस्जिद, एक फाँसीघर, समाप्त होते मध्यकाल के अंग्रेज़ रेजीडेन्ट का गिरी पड़ती मेहराबों वाला उजड़ा आवास और दो-चार बूढ़ी होती हुई ईसाई क़ब्रों के। इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण तो वहाँ का वह प्राकृतिक परिदृश्य है जो अपनी काल-सम्पन्नता में पितामह जैसा लगता है, मगर इससे भी अधिक चौंकाने वाली बात तो चिरंजीवी अश्वत्थामा की वह किंवदन्ती है कि महाभारत का यह अन्तिम दुर्दान्त सेनापति नर्मदा पोषित इस भूखण्ड में आज भी सक्रिय है और महेश्वर के परली पार के नर्मदा-तट पर स्नान करके रोज रात को इस किले में लौट आता है। अश्वत्थामा की यह चिरंजीवी शाश्वत उपस्थित चाहे मिथ्या ही हो, पर यह प्रवाद मात्र ही इस निर्जन परिवेश के सारे सतपुड़ापन और असीरगढ़ किले की वृद्धता को रहस्यात्मकता तो देता ही है, अस्तु—

इलाहाबाद पहुँच कर ऐसा नहीं लगा कि किसी विशेष स्थान की यात्रा की गयी है। दूसरी यात्राओं की तरह ही यह यात्रा भी आयी-गयी हो जानी है। वैसे इसके पूर्व भी देश के कुछ प्रमुख किलों और ऐतिहासिक स्थलों जैसे—दिल्ली, आगरा, ग्वालियर, आमेर, चित्तौड़, माँडू, गोलकुण्डा आदि को देखने-सुनने का अवसर मिला है और थोड़ा-बहुत प्रभावित भी हुआ हूँगा पर इतिहास को लेकर कुछ रचने या लिखने का कभी कोई उत्साह नहीं जागा। इतिहास, विशेषकर मध्यकालीन इतिहास, चाहे वह किसी भी देश, जाति या समुदाय का हो लगभग एक ही प्रकार के सत्ता और स्त्री-कामी या दुर्दान्त आक्रमणकारियों के लिए प्रधान ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। रूमानियत का भी बड़ा ही फूहड़ और क्रूर प्रकार ही रहा है, जैसे तलवार ही एक मात्र पुरुषार्थ है और नारी-देह पर बलात् आधिपत्य ही विलास की पराकाष्ठा। शौर्य और क्रूरता के बीच भेद भी मध्यकाल में गायब जैसा ही है। निरंकुश सत्ता की लिप्सा किस सीमा तक जा सकती है यह वैसे तो इतिहास मात्र में है पर मध्यकाल में विशेष रूप से दर्शनीय है। मध्यकाल का सन्दर्भ इसलिए आया कि अभी इसकी स्याही भी बमुश्किल तमाम ही सूखी होगी। उन्नीस-बीस के हेर-फेर से इस काल की सारी झूठी-सच्ची कहानियाँ भी वीरोचित या मनोरंजक से तो बर्बर या लोमहर्षक ही ज्यादा हैं। शायद इसीलिए इस काल के इतिहास की तमाम राजकीय पोशाकों, शाही लिबासों और जिरहबख्तरों से वीरता या इत्र से ज्यादा तो मानव रक्त और उसकी यंत्रणा की दुर्गन्ध का भभका आज भी उठता है। हमारा मध्यकाल भी तमाम ताम-झाम के बावजूद कोई इसका अपवाद नहीं है।

इस बार अप्रैल १९८८ में जब इलाहाबाद से वापस यहाँ लौटा तो विचार था कि वर्षों से अधूरे पड़े कामों को अब तो निबटा ही दिया जाए। सोचा यही था और सारी तैयारी भी वैसी ही होने लगी, मगर मई के प्रथम सप्ताह से ही हर क्षण न जाने कौन-कौन से किले, महल, बारादरियाँ, वहाँ के पथरीले वीरानों में उतरती उदास, सन्नाटों वाली शामें और शामों के साथ घिरता अँधेरा, वहाँ के विशाल खालीपन में टहलते, भागते, चीखते-चिल्लाते बिना चेहरों और बिना नामों के लोग ही लोग आँखों के आगे घूमते से लगे। खासतौर पर असीरगढ़ की मस्जिद की वह अकेली मीनार, जो कोसों दूर से अजीब प्रकार की आदिमता लिये आकाश की गहराइयों में खड़ी दिखती है, घिरती रही। लगता कि जैसे असीरगढ़ आकाश में तलवार खींचकर ललकार रहा है, पर किसे? तलवार के इस खिंचेपन को लेकर शायद सतपुड़ा की, नर्मदा-ताप्ती के बीच की छितरी-फैली ये पहाड़ियाँ भी नहीं समझ पा रही हैं और बस सन्नाटे में मौन खड़ी देख रही हैं। ऐसा लगता है कि इन कविताओं का शायद यही प्रारम्भ-बिन्दु बना। असीरगढ़ भी इसी प्रारम्भ के बाद उत्तरोत्तर पृष्ठभूमि में विलीन होता गया और ये कविताएँ पूरे मध्यकाल के किलों, प्रस्तरों और मानसिकता पर क्रमशः फैलती चली गयीं, अस्तु—

वस्तुतः इन कविताओं का आरम्भ ''राग-मन ले, सीढ़ियों की ओर'' की रागात्मक मानसिकता से हुआ। आरम्भ में यही लगा था कि असीरगढ़ की पृष्ठभूमि को लेकर पहाड़ी-धुन जैसी दस-पाँच राग-रचनाएँ लिखी जाएँगी और बस। और शुरू-शुरू में हुआ भी कुछ ऐसा ही। आरम्भिक स्वरूप में वे एक नोटबुक में टीप ली गयीं। परन्तु धीरे-धीरे ये कविताएँ अपनी प्रारम्भिक नितान्तता से निकल रागात्मकता की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए क्रमशः इतिहास की ओर, नहीं अधिक सटीक तो कहना यह होगा कि ऐतिहासिक मानसिकता की ओर, जो कि इतिहास से कम सच नहीं हुआ करती, वेग से वेगतर होती अग्रसित होने लगीं। कालान्तर में क्रमशः इनके नियागरा-प्रपात बन जाने की उद्दाम, भयावह परिणति की पूर्व-कल्पना कम से कम मुझे तो नहीं ही थी। राग-मन की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ''खून टपकाते, अँधेरे गुम्बदों के तले'' जब पहुँचना हुआ तो लगा कि यह तो ऐतिहासिक आदिमता की ऐसी किलेबन्दी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घिरना हुआ है, जहाँ से पीछे लौटने का कोई मार्ग नहीं है। अब यदि कोई मार्ग सम्भव हो सकता है तो वह सिर्फ आगे ही हो सकता है, पीछे नहीं। और ऐतिहासिकता के उन अँधेरों में आगे बढ़ने का अर्थ भी समझ में आ रहा था—सर्जनात्मकता और रचनात्मकता का लहूलुहान होकर आकण्ठ रक्त-स्नान। निश्चित ही मध्यकाल के इस आतंकपूर्ण क्रूरता और अमानवीयता के बीच से गुजरे बिना उस सम्भावित मार्ग या द्वार तक भी नहीं पहुँचा जा सकता था, जो यदि कहीं हो सकता था तो आगे, केवल आगे ही। और वह भी अनिश्चयात्मकता के किसी मुहाने पर ही। उस घिरेपन की स्थिति में सोचा भी नहीं जा सकता था कि इस ऐतिहासिकता के अँधेरे का कोई मुहाना भी सम्भव है, और यदि है तो वहाँ सचमुच ही निष्कृति का कोई द्वार प्रतीक्षित मिलेगा। बहरहाल उस समय तो मध्यकाल के उन अमानवीय अँधेरों और सन्नाटों के बीच से अनाश्वस्त कविता बनकर गुजरना ही नियति थी, और नियति होती ही है स्वीकारने के लिए। ऐतिहासिकता के किलों, महलों, तहखानों और आईनाखानों की त्रासद मानसिकता से बाहर निकलने पर निरपेक्ष खुली हवा में पहुँचने पर लगा कि, नहीं-अभी भी हवा है, धूप है और है आकाश का अगाध विश्वास। हम सचमुच ही इतिहास से निरपेक्ष तथा निर्भय प्रशान्त प्रार्थना और उसके उदात्त व्यक्तित्व के रूबरू खड़े हैं। एक अवधूत व्यक्तित्व है जो इतिहासों की अमानवीय उथल-पुथल के समानान्तर न केवल प्रार्थना-व्यक्तित्व से चल ही नहीं रहा है, बल्कि देश और काल को अहोरात्र सम्बोधन करते हुए वैसे ही सक्रिय है जैसे कि प्राकृतिकता को स्वरूपित करने के लिए प्रकृति सक्रिय रहती है—निरपेक्ष। उजले वस्त्रों वाली प्रार्थना की यह प्रशान्त सान्निध्यता ही अगत्या ''काव्य की नि:शब्द अबाधता के बीच'' वापस ले जाती है और मुक्त कर देती है। सर्जनात्मकता इस बिन्दु पर पहुँचकर नि:शेष हो जाती है। ऐसी नि:शेषता ही काव्य का विराट या आकाश होना होता है। अपने से बाहर विराट होने के लिए ली गयी उड़ान ही सर्जनात्मकता है। शायद इन कविताओं की सर्जनात्मक-यात्रा के स्वरूप और मार्ग का ऐसा ही कुछ वृत्तान्त-लेखा है।

वस्तुत: ये कविताएँ मध्यकालीन ऐतिहासिकता पर नंगे पैरों जैसी चलनी थीं, इसलिए इस संग्रह की अन्तिम कविता की पहली पंक्ति ''पिछले दिनों नंगे पैरों'' से उपयुक्त, भले ही सार्थक न भी सही, दूसरा नाम या संज्ञा इस संकलन का नहीं हो सकता था। इन कविताओं के लिखे जाने के समय भी कोई क्रमयोजना नहीं थी और न ही उसकी कोई पूर्व परिकल्पना। कुछ ऐसा लगता है जैसे कि ऐतिहासिकता, कविताओं को सभी दिशाओं से पुकार रही है और कविताएँ मुझे अनुगमन करने का आदेश दे रही हैं। वर्ण्य विषय-वस्तु की व्यवस्था का क्रम भले ही न लगे पर सर्जनात्मक एकतानता तथा प्रभाव की समन्विती अवश्य है। सम्भवत: यही वह आधार-सूत्र है जो इन्हें रचनात्मक स्तर पर भी तथा प्रभाव के स्तर पर भी एक सम्पूर्ण समग्र कृति होने का भाव देता है, न कि अलग-अलग कविताएँ होने की प्रतीति। इनका रचनात्मक पार्थक्य सर्जनात्मक ऐक्य को व्यक्त और अभिव्यक्त करने के लिए ही है। यही कहना ही तथता होगी कि इन कविताओं ने स्वत: यह सारा वितान ताना। मैंने तो केवल माध्यम की तरह ही इस सर्जनात्मकता की आज्ञा का पालन किया। शायद इसीलिए मैं आद्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने को यथासम्भव अनुपस्थित किये रहा ताकि वे कविताएँ अपनी संरचनात्मक अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के भरसक समय उपस्थित रहें और दिखें भी।

जैसा मैंने कहा कि इन कविताओं में इतिहास को नहीं, बल्कि उसकी अनुपस्थित मानसिकता को अमूर्त पात्र और चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है; इसलिए उस काल के कुछ सम्बोधनों, पदवियों और उपकरणों को चारित्रिक व्यक्तित्व जैसा व्यवहार करने दिया गया है। शायद यही उचित था, क्योंकि यदि इतिहास होता तो फिर तत्कालीन मूर्त पात्र और चरित्र भी होते। अमूर्त ऐतिहासिकता को अमूर्त पात्र ही व्यक्त और वहन कर सकते हैं, इसलिए सिवाय अनिवार्य विशेषणात्मक सम्बोधनों के प्रसिद्ध से प्रसिद्ध व्यक्ति, नाम, संज्ञाएँ या घटनाएँ किसी का भी कोई परोक्ष उल्लेख या सन्दर्भ भी नहीं होगा। इसलिए इतिहास या उसका मूर्त रूप विलुप्त भले ही हो पर सर्वथा अनुपस्थित संभव ही नहीं, और यदि होता तो फिर उस रचना का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता था। अत: ऐतिहासिकता नितान्त अप्रामाणिक भी न हो जाए, जिसका कि आसन्न खतरा था, इसलिए इतिहास की उपस्थिति की गन्ध और छींटें कहीं-कहीं आभास देते चलते हैं, पर केवल आभास रूप में ही।

हमें इतिहास की मूल प्रकृति, चरित्र और स्वरूप को भी नहीं भूलना चाहिए। इतिहास कभी भी किसी वर्ग, जाति या समुदाय का लेखा-जोखा न होकर किसी भी भूखण्ड के समग्र स्वरूप और व्यक्तित्व का होता है। किसी काल खण्ड में कोई एक सक्रिय होता है तो किसी दूसरे काल खण्ड में कोई दूसरा। अत: माध्यम बने इन लोगों की इस सक्रियता का प्रभाव तत्कालीन इतिहास के स्वरूप पर ही मुख्य रूप से पड़ता है, परन्तु इतिहास का आधारभूत चरित्र और प्रकृति तो तब भी अपने शाश्वत रूप में ही रहते हैं क्योंकि ये सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं। इतिहास-सिंहासन के जो शाश्वत चार पाद हैं—वे हैं सत्ता, सम्पदा, सुरा और सुन्दरी। स्थानीय सामाजिक विभिन्न जलवायु, तात्कालिक समस्याओं और क्षेत्रीय परिस्थितियों के कारण जो स्वरूपगत अन्तर आ जाता है उससे इतिहास का आधारभूत चरित्र या प्रकृति नहीं बदलते। ताश में जिस प्रकार कुल बावन पत्ते ही होते हैं, परन्तु अनन्त काल तक भी खेले जाने पर उसकी नित्य नवीनता में कोई अन्तर नहीं आता उसी प्रकार इतिहास के ये चार आधारभूत तत्त्व दूसरी युगानुगत स्थितियों के साथ मिलकर सनातन से यह खूनी खेल, खेल रहे हैं और भविष्य में भी खेला जाता रहेगा, क्योंकि इसका सम्बन्ध मनुष्य से है न कि किसी सामाजिक व्यवस्था या काल खण्ड से है। आदिम तंत्र से लेकर लोकतंत्र तक इस खेल की प्रकृति और चरित्र में कोई. परिवर्तन नहीं हुआ होगा। जो परिवर्तन दिखते हैं वे उसके आयुधों, प्रणालियों और लोगों की सहभागिता के ही होंगे, अस्तु—

इसी प्रकार इतिहास का काल-विभाजन भी एक प्रकार से निरर्थक जैसा ही है, फिर भी काल-क्रम के साथ जो बदलाव, जो कि ऊपरी ही होते हैं तात्त्विक नहीं, आ जाते हैं उन्हें इस प्रकार के विभाजन के द्वारा समझने की चेष्टा से ज्यादा और कुछ नहीं है। ऐसा कभी नहीं हुआ है कि महाभारतकालीन इतिहास-चरित्र में और मध्यकालीन इतिहास-चरित्र में कोई तात्त्विक अन्तर आया, क्योंकि मूलभूत समस्याएँ जब वही हों तब भला मूल चरित्र और प्रकृति कैसे

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल सकती है? काल क्रम के साथ पात्र और परिस्थितियाँ बदल जाती हैं पर सत्ता, सम्पदा, सुरा और सुन्दरी का आधारभूत नाटक तो एक ही है। शेक्सपियर काल की 'हैमलेट' की नाट्य-प्रस्तुति और लारेन्स ऑलीवर की आधुनिक प्रस्तुति में जो अन्तर होगा, जो कि पात्रों की अवधारणा और शैली का होगा, पर नाटक का मूल स्वरूप तो वही रहेगा। क्या मध्यकालीन ऐतिहासिक अमानवीयता और आधुनिक लोकतंत्र की अमानवीयता में कोई गुणात्मक या तात्त्विक अन्तर आया है? तंत्र-पद्धतियों के स्वरूप बदल जाने से इतिहास-चरित्र नहीं बदल जाया करता। वस्तुतः इतिहास भी हमारे सामाजिक जीवन में एक तत्त्व के रूप में उसी नैसर्गिक अविच्छिन्न गति से सम्पन्न हो रहा है जैसे कि दूसरे तत्त्व सक्रिय होते हैं। महाभारतकालीन धूप आज भी धूप ही है उसी प्रकार महाभारतकालीन राज्य सत्ता की लिप्सा वाला इतिहास आज भी वही है! समाज के नैरन्तर्य के समानान्तर इतिहास भी तदनुरूप ही गतिशील रहता है। जिस प्रकार समाज उत्तरोत्तर विस्तृत हुआ है उसी प्रकार इतिहास की गतिविधियाँ और पद्धतियाँ भी विस्तृत हुई हैं, बस कुल इतना ही परिवर्तन हुआ होगा और कुछ नहीं, अस्तु—

दूसरे खण्ड 'खून टपकाते, अँधेरे गुम्बदों के तले' की कविताओं में 'तख़्तेताऊस' संज्ञा का प्रयोग इतिहास प्रसिद्ध मुग़लकालीन मयूर-सिंहासन के रूप में नहीं किया गया है, बल्कि जैसे वह स्वयं ही सत्ता की वह संज्ञा है जिसके चारों ओर मध्यकाल का इतिहास-चक्र चक्रायित है। वस्तुतः 'तख़्तेताऊस' एक प्रतीक उसी प्रकार है जैसे परम प्रतापी रावण के ही नहीं, बल्कि समस्त राक्षस-साम्राज्य की यदि कोई प्रतीक-संज्ञा हो सकती है तो वह रावण की 'चन्द्रहास' तलवार ही हो सकती है। उसी प्रकार इंग्लैंड या विशेषकर फ्रांस के मध्यकाल के समाप्त होते इतिहास का यदि कोई प्रतीक हो सकता है तो वह 'गुलेटिन' ही संभव है। प्रतीक वही हो सकता है जो समग्रता को अभिव्यक्त कर सके। 'तख़्तेताऊस' को संज्ञा या प्रतीक रूप में प्रयुक्त करने के पीछे यही मनोभाव रहा है, इसलिए वह सिंहासन न रहकर स्वयं वह सत्ता-पुरुष हो गया है जो मध्यकाल के पूरे काल-खण्ड तथा भू-खण्ड में विभिन्न नामों से परिव्याप्त है। इस एक प्रतीक में शेष सारे नाम, संज्ञाएँ तिरोहित हो जाती हैं। इसीलिए उसे संज्ञा बनाकर नहीं, बल्कि संज्ञा-विशेषण के रूप में रचा और प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इस खण्ड की कविताओं में फ़ारसी शब्दावली का बाहुल्य है, जो कि मध्यकाल की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के लिए आवश्यक था। फ़ारसी, मध्यकाल की इतिहास-भाषा, राज-भाषा रही है, हालाँकि वह कभी लोक-भाषा नहीं बन सकी, फिर भी ऐतिहासिकता को वहन करती वह केन्द्रीय-भाषा तो थी ही इसलिए तथता की दृष्टि से इसे आना ही था। प्रत्येक राजभाषा का अपना एक तेवर, एक मिजाज़ और एक दरबारी सहीपन भी होता है और उसको यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किये बिना उस काल-खण्ड को तद्रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अपनी ओर से भाषा, परम्परा आदि के बारे में चेष्टा और सतर्कता बरती तो गयी है पर कितना कुछ निर्वाह हो सका है, कहना कठिन है। कई प्रचलित संबोधन और परम्पराएँ अनेक कारणों से छोड़ दिये गये हैं। फिर भी यदि किसी विज्ञ को इस संबंध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूलें, जो कि सम्भव है हों, लगें, तो मैं अपनी अज्ञता के लिए पहले से ही क्षमा माँग लेता हूँ, अस्तु—

ये सारी कविताएँ एक ही मानसिकता तथा एक ही रचना-अवधि के अंतर्गत लिखी गयी हैं, स्वरूप में चाहे स्वतंत्र लगें, परन्तु इनके सर्जनात्मक स्वत्व वैसे ही एक हैं जैसे नग होता तो एक ही है लेकिन उसके पहलू स्वतंत्र भी लगते हैं, मतलब यह कि लगते हैं, होते नहीं हैं। आद्यन्त एक सृजनात्मक क्रम है जो अपनी प्रस्तुति में इन कविताओं को निजी तथा स्वतंत्र स्वत्व भी देता है पर कुल मिलाकर ये सब एक-दूसरे की प्रतिपूरक ही हैं जिन पर ऐतिहासिक मानसिकता की यह सृजनात्मक मीनार खड़ी है। इसीलिए इन कविताओं को स्वतंत्र या पृथक शीर्षक उस रूप में नहीं दिये गये जिस रूप में कविताओं के दिये जाते हैं। इन्हें इनके शीर्षबिन्दु जहाँ अलग करते हैं वहां पाठ्यक्रम के समय ऐसा भाव भी दें, जो कि मेरा आशय है, कि प्रत्येक शीर्षबिन्दु से आरम्भ, फिर आरम्भ होता है पर विकसित रूप में, यानी पड़ाव, दर-पड़ाव का भाव, न समाप्ति का। विराम उपरान्त विराम के क्रम के अन्तर्गत इन कविताओं के माध्यम से ऐतिहासिक मानसिकता की सृजनात्मकता यात्रित है। पूर्ण विराम तो 'काव्य की निःशब्द अबाधता के बीच' पहुँचने पर ही होता है, इसके पूर्व नहीं। साथ ही खण्डों का विभाजन सृजनात्मक मानसिकता के बदलाव और यात्रा के विकास की सूचना के लिए ही है।

इतनी पृष्ठभूमि और आधारभूमि देनी शायद आवश्यक थी इन कविताओं की सृजन-प्रक्रिया और काव्य-यात्रा के स्वरूप के बारे में, न कि कविताओं के बारे में। मुझे अब आपके और इन कविताओं के बीच से अपने को अनुपस्थित कर लेना चाहिए ताकि वे कविताएँ आपसे अपनी व्यथा-कथा कहें और आप सुनें। सम्भव है इन्हें सुनते समय आपको भी लगे कि आप भी इनके साथ इतिहास की अमानवीय ऐतिहासिकता के जलते तवे पर नंगे पैरों सहयात्रा कर रहे हैं, अस्तु। मेरा कथन शेष हुआ।

इति नमस्कारान्ते—

१८ जून, १९८८

प्रेमचन्द्र सृजनपीठ

विक्रम विश्वविद्यालय परिसर, उज्जैन।

●

देखना एक दिन

'उत्सवा', 'अरण्या' आदि काव्य-संकलनों तथा 'महाप्रस्थान', 'प्रवाद-पर्व' आदि प्रबन्ध-काव्यों की भूमिकाओं में तथा अन्यत्र भी काव्य सम्बन्धी अपनी मान्यताओं की विस्तार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से चर्चा करता रहा हूँ। वस्तुतः मेरे कवि की यही आधारभूत सृजनात्मक भूमि और मानसिकता है। इधर के काव्य-संकलनों—'आखिर समुद्र से तात्पर्य', 'पिछले दिनों नंगे पैरों' या यह संकलन 'देखना, एक दिन' यदि पूर्व संकलनों से अलग लगते हैं, जो कि कुछ तो लगते ही हैं, तो यह स्वरूपगत या बानकगत ही ज्यादा होगा। मैं किसी ऊर्ध्व से नीचे आकर अब धरती के ज्यादा निकट हुआ हूँ या लग रहा हूँ, ऐसा मानना वास्तविक न होगा। वैसे इस भ्रम का कारण 'अरण्या' संग्रह की 'अरण्यानी से वापसी' नामक कविता से हो सकता है, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं पूर्व संकलनों के समय धरती पर नहीं था अथवा इधर के संकलनों में मैंने अपनी आधारभूत ऊर्ध्वता खोयी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सृजनात्मकता मात्र के लिए इन दोनों सम्पुट स्थितियों का होना अनिवार्यता है; हाँ, प्रश्न केवल प्राथमिकता का ही हुआ करता है। यह ठीक है कि ऐसी प्राथमिकता के कारण कुछ अन्तर अवश्य दिखने लगता है, परन्तु उसे सर्वथा यथार्थ नहीं माना जाना चाहिए। निश्चित ही इधर के इन संकलनों की प्राथमिकता पूर्व संकलनों से भिन्न है, परन्तु तात्विक काव्य-मानसिकता, जीवन-दृष्टि आद्यन्त एक ही है। वैसे यह भी सच है कि इस प्रकार की प्राथमिकता के कारण कुछ तो अन्तर, गुणात्मक न भी सही लेकिन स्वरूपगत ही, आ तो जाता ही है और कई बार लोगों की प्रियता-अप्रियता का यही कारण बन जाया करता है। चलिए, यह भी सही।

आशा है यदि प्राथमिकता की इस भिन्नता और बदलाव के कारण ही इधर की कविताओं का आस्वाद कुछ रुचिकर लगा हो तो यही कृपा क्या कम है।

इति नमस्कारान्ते—

नवरात्र, ५ अक्टूबर, १९८९

उज्जैन

●

संशय की एक रात

'समय देवता' तथा 'चीन' जैसी लम्बी कविताओं के बाद सन् '५२ में ही 'पृथिवी पुत्र' शीर्षक से एक फेन्टेसी लिखी, किन्तु उस प्रमाद-दशक की अन्य कृतियों की भाँति वह भी अप्रकाशित रही।

प्रस्तुत कृति सन् '५९ में प्रयाग आने पर आरम्भ की। अन्तिम समय तक विचार था कि इसमें पाँच सर्ग रहेंगे। 'पार्थिव पूजा और पृथुज्जन' उसका शीर्षक था। लिखा भी गया, लेकिन प्रश्न उठा कि उसका दिया जाना समुचित है या नहीं? कारण कि यह कृति, राम की एक विशिष्ट मनोदशा तथा युद्ध एवं शान्ति से संबंधित प्रश्नों के एक विशेष प्रयोजन को ही प्रस्तुत करती है। प्रश्न और उनके निराकरण, अपनी सामाजिकता के बाद भी, राम उन्हें व्यक्तिगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में ही पाते हैं। यह उन्हें निरा व्यक्ति कर देने की चेष्टा नहीं है, बल्कि उनके व्यक्तित्व को देखने की चेष्टा है। ऐसे सन्दर्भ में पाँचवें सर्ग में पार्थिव पूजा के बाद उपस्थित सैनिकों तथा पृथुज्जनों को उद्‌बोधित करते हुए दैवी शक्तियों को चुनौतना, शिल्प संयोजन की दृष्टि से सम्प्रति समुचित नहीं लगा। यदि कभी तर्क संगत लगा तो सम्भव है कभी जोड़ ही दूँ।

प्रस्तुत कृति में राम, आधुनिक प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं। युद्ध, आज की प्रमुख समस्या है। संभवतः सभी युग की। इस विभीषिका को सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों में भोगा जाता रहा और इसलिए राम को भी ऐसा ही एकत्व देकर प्रश्न उठाये गये। जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा-पुरुष भी सनातन प्रतीक होते हैं। राम, ऐसे ही प्रज्ञा-प्रतीक हैं।

अपने विशेष प्रयोजन के लिए ही रामकथा का मैंने वह स्थल चुना जो घटनाहीन था किन्तु मेरी रचना-संभावना के लिए उर्वर। राम जिस द्विविधात्त्व को प्रस्तुत करते हैं उसके लिए यही उपयुक्त स्थल था।

यह अन्तरीप मन का, स्थल का।

राम के साथ एक गरिमा का बोध होता है उसे आधुनिक बोध के साथ संयोजित करना कठिन काम है। कारण कि एक युग की गरिमा दूसरे युग की भी गरिमा हो, इसकी कोई स्वीकृति नहीं। ऐसी स्थिति में विभिन्न युगीन गरिमाओं को योजित करना खतरे से खाली नहीं। इसके अतिरिक्त विभिन्न मूल्यों, बोधों वाले समाज से कोई चरित्र लेकर एकदम विपरीत मूल्यों, बोधों, मान्यताओं में, विभिन्न उद्देश्य के लिए प्रस्तुत करना काफी संकटपूर्ण होता है। लेकिन ऐसा संकट, एक रचनाकार का ही हो सकता है। और बिना संकट उठाये किसी के लिए भी केवल रचना ही नहीं उसकी उपलब्धि भी संभव नहीं।

एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिए तथा निवारण के लिए द्वितीय सर्ग में हेमलेट की शैली प्रयुक्त की गयी है। किसी का इस पर भी मतभेद या तीव्र विरोध हो सकता है। ये सारी बातें, रचनाकार के उसी संकट में समाविष्ट होती हैं।

कोई भी रचनाकार प्रयास करता है इससे अधिक का उसका दावा सत्य नहीं माना जाना चाहिए। अस्तु—

अन्त में मैं श्री शमशेरजी का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मूल्यवान सुझाव देकर भारी भूलों से बचाने की चेष्टा की। साथ ही श्रीमती महिमा मेहता एवं श्री विपिन शर्मा ने अपने सहजज्ञान के द्वारा इसे सन्तुलित बनाये रखने में जो सहयोग दिया वह उल्लेखनीय है।

इति नमस्कारान्ते—

२८ अप्रैल, १९६२

९९-ए, लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्रस्थान

प्रस्थान-पूर्व

प्रत्येक मनुष्य के भीतर आरात्रिक रामायण सम्पन्न होती है तो आक्षण अपने परिवेश में वह महाभारत का साक्षात करता है। अपनी प्रकृति, संस्कार, गुण, धर्म तथा स्वत्व के अनुरूप ही इन कथा-गाथाओं में हम अपना पक्ष निर्धारित करते हैं। यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि ये या इन जैसे अन्य आर्ष-ग्रन्थ, भारतीय जीवन की ऐतिहासिकताएँ हैं, या नहीं, वास्तविकता तो यह है कि ये ग्रन्थ, हमारी ही नहीं मनुष्य मात्र की शाश्वतताएँ हैं; नियति भी कहा जा सकता है। इतिहास सिवाय काल सम्बन्धी आश्वस्ति से अधिक और क्या है? विचार कालातीत तो होते ही हैं, परन्तु मानवीय आश्वस्ति भी होते हैं अतः इतिहास से कहीं अधिक सार्थक, उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण भी।

रामायण, वैयक्तिक चक्रव्यूह की करुण-कथा है तो महाभारत, सामाजिक व्यूहों-प्रतिव्यूहों की अनन्त त्रासद महागाथा। एक में दुःख भोगते मनुष्य का एकान्त बाँशीरव है तो दूसरा युद्धकामी मानवों का दुर्धर्ष वाद्यवृन्द। दोनों के केन्द्रों में राज्य है। कैसी विषमता है कि सभ्यता का प्रतापी ग्रह भी राज्य ही है तथा मारकेश भी। राज्य त्याग के बाद राम वनवासी होते हैं तो राज्य प्राप्त होने पर भी भरत आश्रमवासी। राज्य का अर्थ न भोगी, न कांक्षी किसी के लिए कुछ नहीं रहता। वैसे शालीन भरत ने तो राज्य की कांक्षा भी नहीं की थी। राज्य, यह कैसा प्रतीक-विनायक है जो कि अपने सम्पर्क में आने वाले को केवल उलझाता ही है। महाभारत में तो यह प्रतीक-विनायक विकसिततम रूप में विद्यमान है। धृतराष्ट्र का अन्धापन एक ऐसा सार्वजनीन सत्य है जिसे केवल चरित्र-विशेष नहीं कहा जा सकता। कम-से-कम महाभारत तो मात्र महाकाव्य नहीं लगता। इतिहास की कैसी ही समग्र संज्ञा उसके लिए छोटी ही होगी। वह स्वयं ही अपने में इतना सम्पूर्ण संसार है कि उसकी एकमात्र संज्ञा प्रतिसृष्टि ही सम्भव है। कई बार तो ऐसा लगता है कि महाभारत, काव्य मात्र की भृगुसंहिता है। किसी भी देश-काल में मनुष्य कैसा ही वैयक्तिक अथवा सामाजिक आचरण करे, महाभारत में उसकी प्रतिकृति अवश्य मिल जाएगी। मनुष्य-व्यवहार का यह प्रथम एवं अन्तिम कोष है।

मनुष्य से अधिक उन्नत एवं संस्पर्शी रचनात्मक वाद्यता सृष्टि में अन्यत्र नहीं। प्रकृति, पदार्थ और चेतना को मिश्रित रूप में इससे अधिक विकसित नहीं प्रस्तुत कर सकती। जैवीयता की पराकाष्ठा है मनुष्य और इसीलिए यह श्रेष्ठ है। यह संस्पर्शी श्रेष्ठता उसके गुणसम्पन्नों की है। जिस दिन मनुष्य गुणसम्पन्न युक्त अपने भागवत-स्वरूप को पहचान लेता है तो वह पूर्ण-पुरुष होने के लिए बाध्य है, परन्तु यह भी उतना ही कटु सत्य है कि मनुष्य से अधिक जड़ भी जड़ नहीं होता। जड़ता और ऊर्ध्वता, दोनों ध्रुवों पर मनुष्य ही है। यह स्वयं पर निर्भर करता है कि आप इस सोपान में अपने का कहाँ स्थित करते हैं। अतः इस आक्षांश-देशान्तर वाली भूमि का जैसा भी और जितना भी दैवीय और क्रूर इतिहास है वह केवल मनुष्य का इतिहास है। शेष सृष्टि चाहे वह पशु-पक्षी की हो या जंगल-मैदान की, सब की हवि दी गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुत: हमें अपनी इतिहास-दृष्टि में परिवर्तन करना चाहिए। इतिहास के नाम पर केवल क्रूर पुरुषों को ही इस प्रकार पढ़ाया जाता है जैसे कि वे आदर्श-पुरुष हैं। तलवारों के बल पर भौगोलिकताओं को बदलने वाले इतिहास-पुरुषों को पढ़ाया जाए और अपेक्षा यह की जाय कि हम आचरण उस निरीह सन्तों के जीवन की भाँति करें जिन्हें या तो क्रास पर चढ़ा दिया गया या सूली दे दी गयी या विष दे दिया गया या अन्त में गोली का शिकार होना पड़ा। इस निरर्थक तथा वैषम्यपूर्ण शिक्षा का तनाव मानवीय व्यक्तित्व का, संकल्प का, दिशा का हनन करता है। इतिहास की सबसे बड़ी दुरभिसन्धि यह है कि वह राजनीतिक नृशंसता को सभ्यता की केन्द्रीय शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित तथा गौरवान्वित करता है और मानवीय उदात्तता एवं सद्गुणों को अप्रासंगिक एवं अवान्तर बनाता चलता है, जब तक इस इतिहास-दृष्टि के बारे में आमूल परिवर्तन नहीं होगा तब तक मानवीय कल्पद्रुमता सम्पूर्ण सामाजिक स्तर पर पुष्पित नहीं हो सकती।

मुझे सदा यह लगता रहा है कि जिस देश और जाति के पास जितना बड़ा इतिहास, समुन्नत संस्कृति, धार्मिक उदात्त दृष्टि एवं श्रेष्ठ साहित्य होता है, उसके दो ही परिणाम हुआ करते हैं। या तो हम सामान्य व्यक्ति की भाँति अपने अतीत का गौरव-गान करते हुए अपनी हीनता को छुपाते रहें अथवा अतीत की उस महिमा मण्डित महाद्वीपता के समकक्ष अपना भी कोई यशद्वीप समानान्तर रूप से निर्मित करें अथवा वाला यह कार्य उतना सामान्य नहीं। इसके लिए असामान्य वर्चस्व तथा निर्मम संकल्प की अपेक्षा हुआ करती है। अतीत को वर्तमान बनाकर भविष्य के रूप में प्रस्तुत कर देना भगीरथ व्यक्तित्व की माँग रखता है। वैसे तो सभी देशों, जातियों और सभ्यताओं के पास या तो अतीत की पौराणिकता है या नहीं तो मध्यकालीन ऐतिहासिकता की कुछ-न-कुछ ऐसी परम्पराएँ हैं ही कि जिन पर उचित-अनुचित गर्व कर सकते हैं, परन्तु हमारी कठिनाई दूसरी सारी सभ्यताओं, जातियों तथा देशों से कहीं अधिक है। इतिहास के क्रम में अधिकांश सभ्यताएँ अपने अतीत से कट कर सर्वथा भिन्न-भावभूमि ग्रहण कर चुकी हैं अत: उनका अतीत एक प्रकार से उनके रचनात्मक व्यक्तित्व के लिए शेष हो चुका है। परन्तु हमारी कठिनाई यह है कि एक ओर तो हम बहुश्रुत तथा बहुविध परम्पराओं से मण्डित हैं और दूसरी ओर हमारी जातीय अस्मिता पर गत दो हजार वर्षों से क्षारपर्तें निरन्तर पड़ते-पड़ते इतनी कड़ी पड़ गयी हैं कि रामकृष्ण, विवेकानन्द, गांधी या अरविन्द द्वारा किये जाने वाले मोहभंग से भी हमारा स्वत्व जाग्रत नहीं होता। चाहें तो कह सकते हैं कि इसके लिए आवश्यक हो गया है—मृत्युभंग!! हमारी अस्मिताहीनता में और जड़ता में थोड़ा ही अन्तर रह गया होगा। भले ही हम अपनी अस्मिताहरणता के लिए सामी-वैचारिकता को दोषी ठहराएँ पर वास्तविकता यह है कि अब हमें किसी भी बाहरी शत्रु की आवश्यकता नहीं रह गई है।

जिस प्रकार किसी देश की भौगोलिकता में परिवर्तन मनुष्य द्वारा नहीं सम्भव है उसी प्रकार घटित इतिहास को भी नहीं बदला जा सकता और क्यों? पश्चिम की भूमि में आम नहीं होता क्योंकि वह पूर्वीय भूमि की भौगोलिकता की ही विशेषता है, तब हमें धर्म की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिकता क्यों असुविधाजनक लगती है? मैं किसी भी प्रकार के धार्मिक संस्थान का पक्षधर नहीं, परन्तु तात्त्विक स्तर पर पूछना चाहूँगा कि क्या हमारी धर्मदृष्टि भी सामी-धर्मदृष्टियों की भाँति अनुदार रही है? क्या निरन्तर उसमें परिवर्तन करते हुए उसे मनुष्य मात्र के लिए सहज उपलब्ध बनाने की चेष्टाएँ नहीं की गई हैं? जीवन को देखने-परखने और रचने की सीमा-दृष्टि ही एकमात्र ऐतिहासिक, आधुनिक तथा किसी सीमा तक वैज्ञानिक दृष्टि भी है, यह मानकर अपनी दृष्टि को तिलांजलि दे देना कितना खतरनाक होता है इसके हम प्रमाण हैं। औद्योगिक युग में दासता का यही स्वरूप हुआ करता है। अतः हम प्रथम कोटि में आते हैं कि अतीत का गुणगान करते हुए अपनी हीनता को छुपाये रखें। अपने अतीत का गुणगान करने का भी यदाकदा वाला जो यह साहस है उसके पीछे भी पश्चिम का ही प्रश्रय है न कि किसी आत्म-प्रतीतिवश हम ऐसा करते हैं।

हमने अपनी स्वतन्त्र इतिहास-दृष्टि गत दो हजार वर्षों में कभी निर्मित ही नहीं की तब भला वह विकसित कैसे होती? इसीलिए सामी जातियों, सभ्यताओं और संस्कृतियों की दरारों, दुरभिसन्धियों तथा कूटताओं को कभी नहीं जान पाये। अपने धर्म-परिवर्तन के कारण सामी जातियाँ अपने अतीत की गौरव परम्पराओं, वैचारिक सम्पदाओं तथा पूजा-आस्थाओं से कट गयीं। इस प्रकार की बातों का सामान्य जीवन तक पर प्रभाव पड़ा करता है। यह बात अलग है कि सामान्य जन इसका दुष्परिणाम प्रायः नहीं समझ पाता है, परन्तु इस प्रकार की ऐतिहासिक दुर्घटनाओं से जातीय सृजनात्मकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जाया करते हैं। जातीय सृजनात्मकता की प्रकृति ही बदल जाती है। किसी भी देश की या जाति की जातीयता उसकी मिथकता है। सामी-धर्मों ने धर्म परिवर्तन करने वाली जातियों, देशों और सभ्यताओं को उनके अपने विचार-दर्शन, पूजा आस्थाओं और मिथकों से सदा के लिए काट दिया, फलतः समय के साथ गहनतर हो जाने वाले सभ्यता के विकास की, जो कि धर्म को भी विकसित करता है, दिशा ही अवरुद्ध हो गयी। जब धर्म या दर्शन अपनी जातीय अस्मिता, इतिहास-प्रक्रिया की उपज नहीं होता तब वह जातीय रचनात्मकता में सहयोगी नहीं होता। अतीत की ऐसी मिथकता क्या पश्चिम, क्या मिस्र, क्या ईरान सभी के लिए मृतप्राय है, परन्तु ऐसा हमारे साथ तो नहीं है। राम, कृष्ण, शिव तथा इन्द्र की मिथकहीनता के बाद क्या भारतीय सृजनात्मक-मनस वैसा ही निष्प्रभ नहीं हो जायेगा जैसा कि सामी देशों में है? इसीलिए जीवन्त मिथकता के अभाव में धर्म की रूढ़ियाँ जकड़बन्दी अधिक हो जाया करती हैं। भारतीय सन्दर्भ में धर्म की वैसी जकड़बन्दी, सामाजिक अनिवार्यता नहीं है जैसी कि सामी धर्मों में है। इसीलिए भारतीय सृजनात्मक-मनस की यात्रा और सामी सृजनात्मक-मनस की यात्रा में प्रतिविरोध है। सामाजिक रूप से कट्टर धार्मिकता-वाला सभी सृजनात्मक-मनस, रचनात्मक स्तर पर अराजक होने की चेष्टा करता है। अपने अवचेतन में वह उस धार्मिक जकड़बन्दी से मुक्ति का अनुभव करना चाहता है और वह एकाकी हो उठता है; जबकि इसके विपरीत सामाजिक रूप से अराजक धार्मिकता वाला भारतीय सृजनात्मक-मनस, रचनात्मक स्तर पर धर्मप्राण होने की चेष्टा करता है ताकि सृष्टि के महाभाव से एकात्मकता अनुभव कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके। क्या यह साधारण अन्तर है कि भारतीय सन्दर्भ में सारी महत्त्वपूर्ण कविता धार्मिक महाभाव प्रधान रही है, परन्तु सामी-साहित्यों में धर्म और काव्य में एसी कोई युति नहीं है? अपनी रचनात्मक अक्षमता की क्षतिपूर्ति के लिए पश्चिम ने गद्य का विकास यथार्थ के धरातल पर किया। मिथकों के अभाव को यथार्थ चरित्रों के द्वारा दूर करने की चेष्टा की गयी। विस्तार में न जाकर इतना ही कह देना काफी होगा कि मिथक, जातीय मूल्यवत्ता के प्रतीक होते हैं जबकि चरित्र अधिक से अधिक वैयक्तिक अथवा सामाजिक वैचारिकता घटनात्मकता के प्रतीक होते हैं। अत: शुद्ध यथार्थिक चरित्र की ओर की गयी पश्चिमी गद्य की इस सृजनात्मक-यात्रा का क्या परिणाम निकला? ऊर्ध्वोन्मुखी मिथकों के स्थान पर जड़ीय वैयक्तिकता तथा अमानवीय सामाजिकता की अन्ध-गुफाओं में भटकते हुए मूल्यहीन, व्यक्ति-द्वीप वाले अजनबी लोग या फिर राजनीतिक यातना-शिविरों में त्रास पाती मानवता ही तो सामने आयी। इससे अस्वीकार हो ही नहीं सकता है कि साहित्य की आधारभूत भाव-भूमि यथार्थ ही होती है, परन्तु प्रश्न है सृजनात्मक दृष्टि का। जब तक वह ऊर्ध्वोन्मुखी असंगता से प्रसूत नहीं होगी तब तक कैसा ही मेधावी प्रणयन क्यों न हो सामाजिक परिवर्तन का कारण नहीं बन सकता। जातीय ऊर्ध्वोन्मुखी अस्मिता की वाहिका धर्मदृष्टि हुआ करती है। मैं पुन: स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि धर्म से तात्पर्य किसी सम्प्रदाय, मठ या संस्थान से नहीं है। धर्म, प्रकृति की भाँति उदार एवं असंग होता है। काव्य और साहित्य के लिए मैं इसी धर्म की अस्मिता का पक्षधर हूँ। आज के अस्मिताहीन वातावरण में ऐसी काव्य-अस्मिता की चर्चा पर समकालीनता लांछन लगा सकती है, परन्तु इससे सृजनात्मक शून्यता की वास्तविकता नहीं बदल जाएगी। हम जितनी तेजी से बिना अपनी भौगोलिकता एवं जलवायु का विचार किये भारतीय स्थापत्य के स्थान पर पश्चिमी स्थापत्य ला रहे हैं संभवत: उससे भी अधिक तेजी से उन स्थापत्यों में बसाये जाने के लिए सामाजिकता को भी स्वरूपित करने में सन्नद्ध हैं। चार ठगों ने प्राचीनकाल में किसी सत्पुरुष के बछड़े को बारम्बार श्वान कहकर उसे ठगा था। कठिनाई केवल यही हुई कि हमने इस कथा को पढ़ते समय भी तथा आज भी अपने अस्मिताहरण से कहीं इसे नहीं जोड़ा।

व्यक्तिगत रूप से हम सब रामायण के पात्र हैं जो कि प्रति-व्यवहार करते समय महाभारत के चरित्र बन जाते हैं। इसीलिए ये दोनों ग्रन्थ पढ़ते समय ऐसा नहीं लगता कि ये केवल मात्र पोथियाँ ही हैं जिनका प्रणयन वाल्मीकि, व्यास, वैशम्पायन और सौति तक ही सीमित है। मानवीय चरित्र की ऐसी विशाल फलकता और अप्रतिम प्रतिभा, संयम की कलात्मक यथार्थता क्या कोई सृजनात्मक चुनौती नहीं देती? कालपत्रों पर उत्कीर्णित महाभारत की यह महागाथा किसी भी मेधावी को ठण्डा पसीना ला सकती है। कहना न होगा कि भारतीय भौगोलिकता का सिंचन जिस प्रकार मुख्य रूप से हिमालय, विन्ध्य और सह्यादि पुत्रियों से ही होता है, उसी प्रकार भारतीय मानसिकता का सिंचन-पल्लवन रामायण-महाभारत आदि आकर-स्रोतों से ही सम्भव है। धर्म, संस्कृति, सभ्यता या साहित्य कभी भी गमलाई-वानस्पतिकता नहीं हुआ करते। प्रमाण हैं—दीनेइलाही, ब्राह्म-समाज, प्रार्थना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज, उर्दू भाषा-साहित्य और आज के अंग्रेजी के भारतीय लेखक। इन आकर-स्रोतों तक प्रत्येक भारतीय सृजनशीलता ने अपनी मिट्टी में स्नात होकर पदयात्रा की। वैसे तो इस प्रकार की थोड़ी-बहुत यात्राएँ प्रत्येक प्रकार की सृजनशीलता को भी करनी ही पड़ती हैं और तभी समझ में आता है कि कौन यात्रिक था और कौन 'टूरिस्ट'। हिमालय जड़ भी है और चेतन भी। वह गमलाई-वनस्पति के पोषकों के लिए 'हिमालया' पहाड़ भर है पर अधिकांश धूसरित भारतीयता के लिए धूर्जटी चेतना रूप है। हिम की शुभ्रता, तेजस्विता आदि हमारी पात्रता और स्थिति पर निर्भर करती है। धर्म-दृष्टि बदल जाने के बाद कुछ के लिए गंगा और गन्दे जल में कोई अन्तर नहीं रह जाता। अपने मिथकों से कट जाने का ही यह परिणाम होता है कि देवतात्मा हिमालय तथा पंचगंगाओं के बीच में होने पर भी गढ़वाल में भैंसे चराते काश्मीरी मुस्लिम अहीरों की न जल, न पर्वत, न अरण्य किसी से कोई रागात्मिकता नहीं होती। मुझे यह लगता है कि भारतीयता, शेष मानवता से इसी अर्थ में भिन्न है कि हमारी विकास यात्रा हिंसा से अहिंसा की ओर रही है जबकि शेष मानवता की यात्रा हिंसा से घोर हिंसा की ओर। भारतीयता ने जड़ को भी चेतनत्व प्रदान किया जब कि शेष ने मनुष्य को भी जड़ बना देने का उपक्रम किया है। जब तक इन बातों को आधार बनाकर इतिहास-दृष्टि निर्मित नहीं की जायेगी तब तक हम सदा गलत निर्णयों पर पहुँचेंगे।

मुझे यह संसार, सृष्टि, संगीत के पर्याय लगते रहे हैं। धूप मेरे लिए वस्तुतः धूप न होकर जौनपुरी का आलाप लगती है। इसीलिए जहाँ रामायण मुझे भारतीय ऐकान्तिकता की कोमलकान्त भैरवी या ब्राह्ममुहूर्त के पूर्व की ब्राह्मणी विहाग लगती है, वहाँ मुझे, महाभारत, भारतीय समवेतता का उदात्त एवं असंग भैरव या अग्निकाषायी शंकरा लगता है। इस संगीत-वाकोत्सव को मैंने अपने व्यक्तित्व के अनगढ़ इकतारे में एक सुगन्धित अनुष्ठान के रूप में सम्पन्न होने दिया है फलतः अनायास ही मेरे असिद्ध-कण्ठ से भी कभी कोई आलाप फूट पड़ता है।

सम्पूर्णता की दृष्टि से यही लगता कि रामायण, भारतीय जन-जीवन का माधुरी भाव है जो कि अगत्या महाभारत के निष्काम-कर्म की ही भाँति निर्वेद है। सृजनशीलता की इस असंगता ने मुझे बारम्बार झकझोरा है। रचनात्मकता के स्तर पर न पात्र, न चरित्र और न रचनाकार किसी भी आसक्ति का कोई अर्थ नहीं। सम्भवतः इसीलिए भारतीय काव्य में 'पर्सनल-लेखन' जैसा कोई विभाजन नहीं। लेखन के क्षेत्रों में भी इस प्रकार की पर्सनल-भावना पाश्चात्य औद्योगिक कूटता की देन है। सामन्तयुगीन वास्तुशिल्प में भी निजी-कक्ष नामक कोई कक्ष नहीं होता था। खुले प्रांगणों-दालानों के उस राजस-जीवन तक में दास-दासियों तक का खुला प्रवेश था। लेखक भी सार्वजनीन था। हाँ, पर्सनल से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति जो हमें देखने को मिलती है वह थी आत्म-साक्षात्कार की। अतः इस प्रकार की अनेकानेक बातें हैं जिन पर आधुनिक ढंग से, पाश्चात्य-मुक्त मनस से विचार करने पर ही हम अपनी अस्मिता को समझ सकेंगे अन्यथा हम पश्चिम के वैचारिक-उपनिवेश ही सघनतर होते जाएँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे पूर्व भी अनेक सार्थक कवियों ने इन आकर-स्रोतों तक रचनात्मक यात्राएँ की हैं। इस सन्दर्भ में सबसे बड़ी कठिनाई यंह होती है कि इन महाग्रन्थों में जो घटनाएँ हैं यदि उन्हें यथातथ्य रूप में ही ग्रहण किया जाए तो वह रचना, मात्र इतिवृत्तात्मक तो हो ही जाएगी, लेकिन इससे भी अधिक संकट की स्थिति यह होगी कि जैसे स्फटिक प्रसन्न-जल अपनी संपूर्ण स्पष्टता में भी यह नहीं अभिव्यक्त होने देता है कि उसका जलीय व्यक्तित्व कितने 'पुरुस' का है। हम साधारणत: इस प्रकार के जलीय व्यक्तित्व में इतिवृत्तात्मकता समझकर ही प्रविष्टते हैं और वह स्फटिक स्पष्टता वास्तविकता में असाधारण अथाह निकलती है। वैसे इससे बचने के लिए नवीन उद्‌भावनाओं वाला मार्ग तभी सुकर हो सकता है जब रचनाकार के पास भी उतनी ही बड़ी नयी लोकदृष्टि एवं आधुनिक सृजनात्मक क्षमता उपलब्ध हो, अन्यथा पौराणिकता के जलों को नहीं छूना चाहिए। ये ऐसी एकान्त बावड़ियाँ हैं जो अपने प्रशान्त जलों पर काई के आवरण डाले मौन हैं। इनमें अवगाहन आसान नहीं होता। तुलसी ने मात्र प्रसंग सम्बन्धी नवीन उद्‌भावनाएँ ही नहीं कीं, बल्कि अपनी लोक-दृष्टि एवं सृजनात्मक क्षमता के बल पर राम-कथा को अन्तिम रूप से धर्म-वेदी प्रदान की। इसी प्रकार कालिदास ने भी 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में नागरिकता और आरण्यकता को प्रति-सम्मुख खड़ा करके महाभारत के एक साधारण प्रसंग को अप्रतिम बना दिया। वैसे एक और मार्ग भी है—'प्रसाद' का। 'कामायनी' का अतीत, आतीतिक ग्रन्थिवाला या पौराणिक ग्रंथिवाला अतीत नहीं है। 'कामायनी' का वर्ण्य-विषय उस अर्थ में पौराणिक नहीं है जिस अर्थ में पौराणिकता से भय लगता है अथवा जिसकी उपेक्षा की जाती है। 'प्रसाद' ने पौराणिकताहीन इस अतीत का सम्पूर्ण लाभ उठाया है। फिर भी यह प्रश्न तो है ही कि क्या पौराणिकता के ब्यूह का भेदन करके उसमें घिरी या अभिव्यक्त जीवनदृष्टि को पुन: आधुनिक सन्दर्भ दिया जा सकता है? मुझे लगता है कि यह सर्वथा सम्भव है क्योंकि वे मात्र चरित्र नहीं हैं बल्कि मिथक हैं। आधुनिक कविता से दो प्रमाण तो दिये ही जा सकते हैं कि ऐसा सम्भव है—'अन्धा युग' और 'आत्मजयी'। मुख्य बात है स्वतन्त्र काव्य-दृष्टि। यदि कवि के पास यह प्रज्ञात्मकता है तो वह असन्दिग्ध रूप से सभी प्रकार के जलों में सन्तरण कर सकता है।

राम और श्रीकृष्ण भारतीय मानसिकता के अक्षांश और देशान्तर हैं तथा इन दोनों की युति वाला आग्नेय बिन्दु ही शिव है। पुराण, धर्म के कथा-वस्त्र हैं। इन्हीं कथा-वस्त्रों में सज्जित कर धार्मिक संप्रदाय अपने-अपने इष्ट प्रस्तुत करते हैं। राम, श्रीकृष्ण और शिव के चरित्रों में आधारभूत भिन्नताएँ हैं। इसीलिए इन तीन इष्टों का अपने-अपने सम्प्रदायों से सम्बन्ध भी भिन्न प्रकार का है। राम अत्यन्त कोमल राग हैं। राम के आदि गायक वाल्मीकि ने आरम्भ से ही राम के व्यक्ति में कोमल, तीव्र और षड्ज स्वरों का बहुत अधिक ध्यान रखा है। सम्पूर्ण राम-कथा जलरंग चित्रशैली में प्रस्तुत हुई है। विषम से विषम स्थिति के रंग भी धुले, फीके तथा घुले-मिले हैं। कोई रंग किसी दूसरे रंग पर आक्रामक रूप से छाता नहीं है बल्कि सब्र एक दूसरे को प्रति-सम्पूर्ण ही बनाते हैं। एक चरित्र के रूप में राम का जितना सृजनात्मक व्यवहार हुआ उतना दूसरे किसी चरित्र का नहीं हुआ। इसका कारण सम्भवत: यह था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि राम में अपौरुषेयता के स्थान पर कहीं विश्वसनीय साधारणता भी रही है। राम की दैवीयता में मानवीय सुगन्ध भी थी। गत चार सौ वर्ष पूर्व तुलसी की मेधा ने इस चरित्र को बड़े ही रचनात्मक साधिकार-भाव से मन्दिर-मण्डित कर दिया। तुलसी के पूर्व भी राम देवता थे परन्तु तुलसी ने राम के चरित्र के देवत्व को आग्रह के साथ रेखांकित किया। इसी आग्रह-दृष्टि के कारण तुलसी प्राय: साहित्य की सीमा का भी अतिक्रमण करते रहते हैं। राम के चरित्र में इस मन्दिर-मर्यादा ने यह आमूल परिवर्तन ला दिया कि जनमानस के लिए वह कई अर्थों में अब विश्वसनीय साधारणता वाले दैवीय-पुरुष न रहकर कीर्तनप्रिय प्रतिमा बन गये। नतीजा यह हुआ कि सृजनात्मक मनस, राम से दूर होता गया। समस्त रीतिकाल में राम कहीं आलम्बन नहीं हैं। छायावाद में 'राम की शक्ति-पूजा' ही एक मात्र अपवाद है, जबकि भारतीयता का दावा उसका काफी बड़ा रहा है। क्या यह कहना बहुत अनुचित होगा कि छायावाद मुख्यत: फैशनेबल भारतीयता का ही काव्य है? ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज का ही साहित्यिक स्वरूप रवीन्द्र तथा छायावादी काव्य हैं। इसीलिए रवीन्द्र के पूजा-गीत या निराला की प्रार्थनाएँ साहित्य की सीमाएँ अति-क्रमित नहीं कर पायीं। छायावादी-काव्य किसी धर्म-दृष्टि या दर्शन की भावभूमि का प्रतिफल नहीं है। वह तो रीतिकालीन या उत्तर रीतिकालीन तद्भव काव्य-भाषा के विरुद्ध तत्सम काव्य-भाषा का आन्दोलन था। यदि किसी अभिनव धर्मदृष्टि या दार्शनिक भावभूमि का प्रतिफल होता तो तुलसी या भक्तिकालीन कवियों की बढ़ती लोकप्रियता का विकल्प बनता, अस्तु। सृजनात्मकता के किस स्तर पर कवि-दृष्टि को भविष्य में सम्प्रदायवादी मन्दिर-मर्यादा वाले राम को पुन: प्राप्त करने का रचनात्मक संघर्ष करना पड़ेगा, आज कहना कठिन है; परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि साहित्य, राम जैसे महत्त्वपूर्ण मिथक को सदा के लिए कीर्तनियों के हाथों में नहीं रहने दे सकता। राम यदि मात्र चरित्र होते तो चिन्ता न होती, परन्तु वह जातीय मिथक हैं। तुलसी ने राम में वाल्मीकि से आगे की सम्भावनाएँ प्रस्तुत कीं। अब वह भविष्य के कवि का काम होना चाहिए कि इस मिथक की भावी सम्भावनाएँ प्रस्तुत करे।

जहाँ तक श्रीकृष्ण का सम्बन्ध है, वह सर्वमान्य लीलापुरुष हैं। उनकी यह लीलामयता उनके चरित्र निरूपण में भी विद्यमान है। श्रीकृष्ण की कल्पना में चरित्र और मिथक का योग है; यह सन्धि है गोपाल और पार्थसारथी की। इस सन्धि के पीछे कितनी ऐतिहासिकता, कितनी वास्तविकता आदि है यह प्रमाणित करना कठिन भी है तथा हमारा प्रतिपाद्य भी नहीं। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित संप्रदायों ने या तो उनके बालमुकुन्द रूप को स्वीकारा या बहुत हुआ तो उनकी गोपीवल्लभता के कारण राधायुक्त युगल-सरकार को मान्यता दी। संप्रदायों की इस परिसीमा के कारण श्रीकृष्ण के चरित्र में जो सर्वसत्तात्मक, सर्वप्रभुत्ता संपन्न, अनासक्त एवं गत्यात्मकता महाभारत में वर्णित है वह साहित्य के लिए अक्षय भण्डार है। उत्तर वैदिक देवतावाद में श्रीकृष्ण ही पौराणिकों की ऐसी देन हैं जो वैदिक सृष्टि-पुरुष तथा इन्द्र के समीप हैं। श्रीकृष्ण की चरित्र-खनिजता, मानवीय उदात्तीकरण के लिए सहज सुलभ हैं। युद्ध के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चटख लाल रंगों की धधकती पृष्ठभूमि में अनासक्त गीता-गायक का निर्वेद नीलवर्णी व्यक्तित्व जिस अप्रतिम रूप में उकेरा या चित्रित किया गया है, उसका समकक्ष स्वयं भारतीय पौराणिकता में दूसरा नहीं है तब ग्रीक, यूनानी या चीनी पौराणिकता की तो बात ही क्या है। जिन किन्हीं बाह्य कारणों से अवतारों को मूर्त करने की आवश्यकता पौराणिक चिन्तकों को अनुभव हुई होगी उसका सम्यक एवं पूर्ण परिपक्व मिथक श्रीकृष्ण हैं। बुद्ध की आद्यन्त करुणा तथा राम के अकुण्ठ मर्यादा स्वरूप से शेष सभी गुणज्ञता श्रीकृष्ण के चरित्र की विभूति है। वैदिकता को छोड़कर जैन, बौद्ध और स्वयं सनातन धर्म मिथकों में भी श्रीकृष्ण की परिकल्पना से अधिक विकसित दूसरा कोई मिथक नहीं।

शिव मुख्यत: वैदिक देवता हैं। कहने को तो शिव से सम्बन्धित संप्रदाय हैं, परन्तु वस्तुत: शिव ने कभी न तो संप्रदाय को और न ही देवताओं वाली किसी धार्मिक सुविधा को स्वीकारा। वास्तव में शिव निरन्तर विकसित होते रहने वाले एकमात्र देवता रहे हैं। शिव की सम्पूर्ण विकासयात्रा को देखने पर लगता है कि वह देवत्व का भी अतिक्रमण कर गये हैं। शिव से बड़ी अवधारणा किसी भी भावी मानव-मस्तिष्क से भी सम्भव नहीं हो सकेगी। काल और देशगत सभी सम्भावित एवं असम्भावित की मिथकता ही शिव हैं। साधारण ग्रामीण जन के बीच भोले बाबा नन्दी पर सपरिवार चढ़कर गाँव-गाँव में लोगों की करुणा से विगलित अवढरदानी हैं तो तांत्रिकों के परमाराध्य अघोरशीर्ष भी हैं। हिमालय, संगीत, नृत्य, श्मशान, शक्ति, अनासक्ति, कल्याण, प्रलय, रौद्र, सहज, जन्मातीतता किसके प्रतीक शिव नहीं हैं? वह स्वयं प्रकृति भी हैं और पुरुष भी, इसीलिए सम्पूर्ण मानवी सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और धर्म की मिथक अवधारणाओं में केवल शिव ही अर्द्धनारीश्वर हैं। पाशुपत रुद्र, सदाशिव भी हैं। बड़े ही सहज भाव से उन्हें प्रसन्न किया जाकर छला जा सकता है। शुभ्रवर्ण के इस देवाधिदेव के प्रति द्रविड़वंशी होने की भी शंकाएँ की गयी हैं। राम और रावण दोनों के ही वे आराध्य हैं। राक्षसों के मस्तक पर त्रिपुण्ड बन मण्डित होते हैं तो उनके संहार वाले सारे देवयजनों में अपनी शक्ति का प्रयोग भी करते हैं। शिव के देवत्व का जिस प्रकार का साधारणीकरण हुआ उतना किसी महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय देवता का नहीं हुआ। शायद ही कोई ऐसी भारतीय बस्ती होगी जहाँ शिव प्रस्थापित न मिलें। इसीलिए केवल सृष्टि ही नहीं, बल्कि देश-कालातीत ऋतम्भरा प्रज्ञा की पराब्रह्माण्डता भी जिस पर आश्रित है वह शिव ही हैं। काल या देश का मूर्त या अमूर्त स्पर्श करने का तात्पर्य ही शिव का स्पर्श है। तात्पर्य यह है कि शिव से पृथक कुछ भी नहीं।

इस संदर्भ में एक विचारणीय बात यह है कि जिस ऐतिहासिक दबाव में वैदिक धर्म को जब नवरूपित किया गया तब वह सनातन-धर्म कहलाया। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का काफी श्रेय एकमात्र भारतीय सम्राट पुष्यमित्र शुङ्ग को जाता है। सनातन धर्म के आकर-ग्रन्थों का निरूपण, प्रणयन तथा सम्पादन आदि किया गया। इसी सांस्कृतिक कार्यक्रम में पुराण सामने आये। पुराणिकों ने अपने मिशनरी उत्साह में कुछ आधारभूत गलतियाँ भी कीं। यदि ये गलतियाँ अज्ञानवश होतीं तब तो समय ने उन्हें ठीक कर लिया होता, परन्तु लगता है वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायास चेष्टाएँ थीं। उनमें से हम कुछेक की यहाँ चर्चा करना चाहेंगे। पुराणिकों ने शिव और इन्द्र के साथ स्पष्टत: पक्षधरता बरती। इस मिशनरी संकीर्णता की आँच काफी-कुछ शिव को लगी, पर इन्द्र तो उसमें स्वाहा ही हो गये। बेचारे ब्रह्मा—प्रजापति होने के बाद भी उन्हें तर्पण देने वाला तक नहीं रहा। निश्चय ही इन्द्र की हत्या में पुराणिकों का घोषित हाथ है। ऐसा करने के पीछे कौन-सा ऐतिहासिक दबाव या दार्शनिक तर्क अथवा सिद्धांत है, समझ में नहीं आता। हाँ, ऐतिहासिक दबाव को किसी हद तक समझ सकता है। तत्कालीन भारतीय स्थिति लगभग ऐसी थी कि विन्ध्य के ऊपर के भारत में बौद्ध-धर्म अधिकांशत: राज-धर्म बन चुका था। साथ ही कलिंग (वर्तमान उत्कल) से लेकर समस्त दक्षिण भारत गुजरात और साँभरझील तक का राजस्थान जैनधर्म से प्रभावित क्षेत्र था। वैदिक धर्म के प्रमुख देवता थे इन्द्र और वैदिक धर्म की मुख्य पहचान थी यज्ञ, और यज्ञ से हिंसा होती थी। अत: पुराणिकों की बाध्यता समझ में आती है कि जिस औपनिषदिक तथा वेदान्तिक चिन्तन की अहिंसा वाली सर्वात्म विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त कर जैन-बौद्ध विकसित हुए थे उसी को आधार बनाकर यज्ञ की कल्पना में आमूल परिवर्तन किया गया। यह परिवर्तन निश्चय ही स्तुत्य था। इस परिवर्तन का फल यह हुआ कि भारतीय भूमि का आधारभूत धर्म, पुन: अपनी विशाल वटता में पुष्पित हो उठा। जैन तीर्थंकरों की परम्परा या बुद्ध और बोधिसत्वों की परम्परा कारण थे या और कुछ, कह नहीं सकते, परन्तु सनातन-धर्म में अवतारवाद का सिद्धांत अजीब गडमड रूप से प्रस्तुत हुआ। मत्स्य, कच्छप आदि अवतारों का आधार तो वैज्ञानिक सृष्टि विकास का द्योतक है, जो कि वेदसम्मत भी है, परन्तु राम, परशुराम, श्रीकृष्ण तो सर्वथा पुराणिकों की सृष्टियाँ हैं। वेद में जो विष्णु एक गौण देवता हैं उनकी वैदिकी वामनता को पुराणिकों ने विराटता में परिणत कर दिया। विष्णु को ऐसी प्रमुखता मिलने में निश्चय ही इन्द्र बाधक हो सकते थे अत: जिस रूप में, जिस भाषा में और जिस कृतघ्नता ने इन्द्र को विष्णु के महाभिषेक में बलिपशु बनाया गया वह नितान्त जघन्य कृत्य था। मुझे प्राय: यह लगा कि सनातन-धर्म की नींव में 'इन्द्रमेध' सम्पन्न हुआ है। पुराणिकों ने अति उत्साह में अनेक विरोधी बातें तक कहीं हैं जिसमें एक तो ''हिमालयन-ब्लंडर'' की भाँति स्पष्ट है। क्या एक ही युग में एक ही साथ दो-दो अवतार सम्भव हैं? यदि ऐसा है तो 'यदा यदा हि' वाले श्लोक के अनुसार त्रेतायुग में कितना बड़ा अधर्म का विनाश रूप रहा होगा। जब राम और परशुराम अवतार साथ-साथ हुए। दूसरे यह कि अवतार तो विष्णु के हुए हैं तब राम की भाँति परशुराम भी विष्णु रूप ही हुए। समझ में नहीं आता कि विष्णु को एक ही साथ दो अवतारों की क्या आवश्यकता हुई थी? तीसरे यह कि राम द्वारा परशुराम का अपमान, सारे राजाओं की उपस्थिति में पुराणिकों की ओछी मनोवृत्ति का परिचायक है। क्या यह निष्कर्ष बहुत गलत होगा कि पुराणिक यह सिद्ध करना चाहते थे कि यदि कोई अवतार भी शिवभक्त या शिव का पक्षधर होगा तो उसे भी नीचा देखना पड़ेगा?

देवराज इन्द्र, आर्य सभ्यता के परमाराध्य थे जिन्होंने असुरमहत (अहुरमज्द) वरुण पंथियों से संघर्ष करके आर्य-सभ्यता को स्वरूपित किया था। वह कोई काल्पनिक चरित्र नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उनकी जिजीविषा, चरित्र एवं व्यवहार अत्यन्त मानवीय था। समस्त वेद पद-पद पर जिसकी स्तुति से भरे पड़े हैं वही हठात् पुराणों में लुच्चा, लम्पट, चरित्रहीन, षड्यन्त्री, कायर तथा पदलोलुप बना दिया गया। जनता में इन्द्र की चरित्र-हत्या के लिए अहल्या-बलात्कार तथा गोवर्धन-धारण जैसे निरर्थक प्रसंगों की उद्भावनाएँ की गयीं। लगता है इन पुराणिकों का इन्द्रद्वेष कोई सीमा नहीं रखता। लगे हाथ कुछ अन्य धर्मों ने भी इन्द्र को अपने मन्दिरों का द्वारपाल बना डाला। पुराणिकों की इस हीन ग्रन्थि को भलीभाँति समझा जा सकता है कि जब तक इन्द्र का पतन नहीं होगा तब तक वेदों के नगण्य विष्णु को सर्वसत्तात्मक सिद्ध नहीं किया जा सकेगा। राम और कृष्ण के भगवान रूपों की जो भी स्थिति हो, परन्तु विष्णु न तो जनमानस और न ही भारतीय सृजनात्मकता—किसी को भी उद्दीपित न कर सके। पुराणिकों के ही अशोभन एवं अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार का ही नतीजा हुआ कि दो कदम आगे बढ़कर सरेआम वाजिदअली शाह ने अपने पतुरिया समाज का नाम ही "इन्दर सभा" रखा। इतने बड़े किसी जातीय मिथक का ऐसा घोर पतन, नृशंस हत्या अन्य धर्मावलम्बियों के द्वारा तो हुआ है, परन्तु अपने ही देश में, अपनी ही जाति के द्वारा हुआ हो, ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीयता के अस्मिताहीन हो जाने का और क्या प्रमाण हो सकता है? निश्चय ही राम और कृष्ण इन्द्र के स्थानापन्न नहीं बन सके, इसीलिए वर्चस्वी इन्द्र का पराभव, आधारभूत भारतीय वर्चस्विता, अस्मिता का पराभव है। उस आधारभूत भारतीयता का ही पराभव है जिसके उत्थान के हेतु पुराणिकों ने इन्द्र के विरुद्ध षड्यन्त्र किया। कई बार मुझे लगता है कि इस देश, जाति, संस्कृति और सभ्यता की ऐसी प्रदीर्घ अस्मिताहीनता का क्या कारण है? वेद, उपनिषद्, उन्नत दर्शन सम्प्रदाय, प्रशांत आकर-ग्रन्थ, पुष्कल सद्ग्रन्थ, सन्तों-महात्माओं की अक्षुण्ण परम्परा के होते हुए भी यह देश क्रमशः अस्मिताहीन ही कैसे होता गया? ज्ञान की सारी पोथियों का स्थान अगत्या सत्यनारायण की कथा-पोथी ले लेती है! शीर्षस्थ देवत्व का क्रमशः अवमूल्यन होते-होते कैसे अजीब देवी-देवता प्रमुखता पा जाते हैं। अतः ऐसा लगता है कि इस अस्मिता को इन्द्र का शाप लगा है। कल तक जो इन्द्र परमाराध्य था, उसे हमने पतुरियों के बीच में ले जाकर बैठाल दिया। जो काम महमूद गजनवी जैसे विधर्मी न कर सके वह काम स्वधर्मी होकर पुराणिकों ने सम्पन्न किया। निश्चय ही पुराणिकों ने हमें राम-कृष्ण की श्री से मण्डित किया, परन्तु इन्द्र से श्रीहीन भी किया है।

ऊपर मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि इन जातीय-मिथकों तथा जातीय कथाओं की सार्थकता हमारे आज के जीवन संघर्ष के संदर्भ में भी है। 'संशय की एक रात' में युद्ध की अनुपादेयता को केन्द्र बनाकर राम के प्रज्ञा-व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी। प्रस्तुत काव्य में राज्य, राज्य-व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति को स्पष्ट करना चाहा है। इसीलिए मैंने कथा और कथा-पुरुषों की निर्वेद स्थिति एवं मनःस्थिति को ही अपने दोनों काव्यों में चुना, क्योंकि निर्वेद की स्थिति में ही मानवीय प्रज्ञात्मकता अपने विवेक रूप में होती है। यह अनासक्त मनःस्थिति होती है अतः अत्यन्त स्पष्ट रूप में समस्याओं के उलझे सूत्रों को, विरोधी गतिविधियों को देख सकती है। बिना ऐसी समग्र स्थिति एवं मनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति के हम जीवन को परिभाषित नहीं कर सकते। कहाँ तक प्रस्तुत काव्य में जीवन परिभाषित हो सका है—कह सकना मेरे लिए कठिन है, परन्तु यदि किंचित भी आज के संदर्भ में यह काव्य किसी प्रकार प्रासंगिक लगे तो रचनाकार के नाते मैं अपना श्रम सफल समझूँगा। अन्त में श्री गिरिराज किशोर, अमर गोस्वामी और डॉक्टर सत्यप्रकाश मिश्र ने पाण्डुलिपि को पढ़कर जो सुझाव दिये उनके लिए आभारी हूँ।

इति नमस्कारान्ते—

नवरात्रि, अक्टूबर १९७४

९९-ए, लूकरगंज, इलाहाबाद-१

प्रवाद पर्व

काव्य, मनुष्य और भाषा दोनों की ही उदात्ततम एवं विकसिततम अवस्था है। नर का नारायणत्व तथा भाषा का मंत्रत्व, प्रकारान्तर से काव्यात्मक उदात्तता के ही नाम हैं। एक में धर्मभूमि से मनुष्य के विराट होने का संकेत है, तो दूसरे में भाषाभूमि से मनुष्य के ऋषिरूप हो जाने की प्रतीति है। भूमियों का अन्तर है, तत्त्व का नहीं। भूमियों के अन्तर से भाषा, भाव, मुद्रा एवं प्रक्रिया की प्रकृति में थोड़ा अन्तर हो सकता है परन्तु प्रयोजन वही उदात्त रहता है। धरती की पदार्थ-प्रधान स्थूलता जब सूर्य रश्मियों एवं ऋतुओं का सान्निध्य प्राप्त कर ऊर्ध्वमयी होने लगती है तब मनुष्य के चैतन्य स्वरूप की क्या बात है।

ज्ञात या अज्ञात रूप में ऐसा काव्यात्मक वैराट्य, मनुष्य मात्र में होता है। धरती मात्र में जिस प्रकार जल अनिवार्यत: होता ही है उसी प्रकार मनुष्य मात्र में यह काव्यात्मक अथवा वैचारिक ऊर्ध्वता होती ही है। जिस प्रकार भिन्न भूमियों में जल की गहराई, मात्रा भिन्न होती है लगभग यही नैसर्गिकता मानवीय भावदशा के सन्दर्भ में भी सत्य है। तत्त्वत: ऋषि और जघन्यकर्मा एक ही हैं, परन्तु अन्तर केवल यह है कि एक के द्वारा अपनी काव्यात्मकता से साक्षात कर लिया गया होता है, जबकि दूसरे के द्वारा नहीं। इस स्थिति के कारण दोनों के चैतन्य स्वरूप में निश्चय ही तात्त्विक गुणात्मक भेद आ जाता है। एक लपलपाती निर्धूम अग्नि है, वैश्वानर है तो दूसरा क्षाराच्छादित वह्नि। एक में अग्नि से और अधिक अग्नि होने की प्रक्रिया है दूसरे में अग्नि से अ-अग्नि होते जाने की प्रक्रिया है। अत: यह सर्वथा सम्भव है कि एक ही अक्षांश और देशान्तर पर होते हुए भी चैतन्य के स्तर पर दो व्यक्ति सर्वथा विपरीत हों।

सामान्यत: लोग अपनी काव्यात्मकता का साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं। कविता करना और कवि होना, काव्यात्मकता के भिन्न स्तर हैं। सब कविता काव्यात्मकता नहीं हुआ करती। मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता करना बाह्य प्रक्रिया है, परन्तु काव्यात्मकता का साक्षात, कविता करने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। बहुत सम्भव है कि मात्र कविता हमें एक विशिष्ट भाव-दशा तक ही ले जाए जबकि काव्यात्मकता, भाव-दशा या विशिष्ट भाव-स्थिति नहीं हुआ करती। वह तो भाव-मुक्त या भावातीत या 'अभाव' की स्थिति है। कविता के लिए भावों के तनाव की आवश्यकता हो सकती है, परन्तु काव्यात्मकता तो अपने 'स्व' के गुरुत्वाकर्षण की उल्लंघनता है। काव्य से मुक्त हो जाने का नाम ही काव्यात्मकता है। जब तक कविता, काव्य का बोध करवाती है वह काव्यात्मकता की निर्द्वन्द्वता का नहीं, बल्कि भाव या लौकिक तनाव का परिमण्डल है। काव्य से मुक्त काव्यानन्द ही काव्यात्मकता है। साधारणत: तो हम भाव-दशा या विशिष्ट भाव-दशा तक ही रुक जाते हैं, इसका कारण यह है कि काव्यात्मक ऊर्ध्वता या काव्यातीतता की मूल्यवत्ता से हमारा परिचय नहीं होता। वैसे भी ऊँचाई पर असुविधा होती ही है, क्योंकि ऊँचाई हमें निरन्तर निपट अकेला बनाती है। शिखर होने का तात्पर्य ही है नितान्त अकेला होना। अत: काव्यात्मक ऊर्ध्वता पर पहुँच कर यदि वैचारिक या भावनात्मक अकेलेपन के कारण असुविधा होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं। भौतिक ऊँचाई पर भी जब वायुमण्डलीय दबाव अधिक होता ज़ाता है तब यदि काव्यात्मक ऊर्ध्वता पर भी समकालीन वैचारिक वायुमण्डलीय दबाव उत्पन्न हो तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए। प्राय: लोग इस समकालीन दबाव के कारण ही समकालीन या दैनंदिन वाले मनोजगत, भाषा, मुद्रा, मुहावरे और अर्थ के लोक में लौट आते हैं। इसलिए प्राय: हमें कविता में काव्यात्मक ऊर्ध्वता के स्थान पर भाव-दशा या विशिष्ट भाव-दशा ही मिलती है। समकालीनता से अकेले होते जाने के संकट का नाम ही काव्यात्मक ऊर्ध्वता है। हम यह संकट क्यों नहीं लेना चाहते? इसलिए कि ऊर्ध्वता या वैराट्य परम काव्यात्मक आस्वाद से पूर्ण एवं पूर्ण परिचय न होने के कारण हमें काव्यात्मकता की यह पराभूमि या तो अयथार्थिक लगती है या फिर काल्पनिक। इसीलिए सभी युगों में अधिकांश काव्य, काव्यात्मकता तो दूर, कविता की तलाश भर होते हैं।

प्राय: तो भाषा के स्तर पर ही अधिकांश कवि, काव्य-श्रोता एवं पाठक काव्यात्मकता की तलाश में रहते हैं। कितने जानते हैं कि काव्य, भाषा को शब्द और अर्थ से मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है। भाषा के बन्धन का नहीं मुक्ति का नाम काव्य है। शब्द में निहित अर्थ और संस्कार को जब तक काव्य, जाग्रत नहीं करता तब तक वह भाषा या शब्द की ऊपरी सतह शब्दता पर ही टकराता रहेगा। कठिन भाषा या सरल भाषा, शब्द की शब्दता के ही नाम हैं। काव्य में शब्द और अर्थ का प्रयोग उसके भोक्ता, कवि और श्रोता दोनों को ही शब्द और अर्थ से मुक्त होने के लिए होता है। काव्य भाषा और अर्थ इन तीनों से असंग मंत्रात्मकता ही शुद्ध काव्यात्मकता है। जिस प्रकार अग्नि, काष्ठ और हविष्य जन्मा होने पर भी वह न लकड़ी है और न हविष्य। उसी प्रकार काव्य शब्द और अर्थ जन्मा होने पर भी वह न शब्द है और न अर्थ। एक प्रक्रिया के कारण ही कारण, कार्य में परिणत होकर स्वतंत्र संज्ञा, शक्ति हो जाता है। वह कारणों का प्रयोग कर स्वयं कार्य-सत्ता बन जाता है। कार्य-सत्ता बन जाने पर वह असंज्ञ हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। अग्नि बन जाने पर जिस प्रकार यह स्वतंत्र सत्ता हो जाती है उसी प्रकार काव्यात्मकता स्वतंत्र-सत्ता है। धर्म की भाषा में नर का नारायणत्व; दर्शन की भाषा में 'अहं' का 'सोऽहं' होना काव्य की भाषा में शब्द की शब्दातीतता वाली अनन्त अर्थसत्ता वाली काव्यात्मकता के भिन्न नाम, गुण, तर्क और स्वरूप हैं। काव्य, धर्म और दर्शन की भाषा ही तो धर्म और दर्शन काव्य के मात्र कारण हैं। असम्बोधित काव्य ही धर्म दर्शन है जबकि सम्बोधित धर्म दर्शन ही काव्य। जिस प्रकार असम्बोधित अग्नि सामान्यरूपा होती है, परन्तु सम्बोधित अग्नि यज्ञ-देवता हो जाती है उसी प्रकार काव्यात्मकता की स्थिति है।

व्यक्ति-मनस् को सृष्टि-मनस् बनाने की प्रक्रिया का नाम धर्म है, तथा 'सोऽहं' को 'अहं' में विलय कर लेना ही दर्शन है। धर्म में अपने से बाहर जाना होता है जबकि दर्शन में बाहर से 'स्व' में लौटना होता है। काव्य इन दो भिन्न ध्रुवीय उदात्त यात्राओं की रम्य व्याख्या है। चूँकि धर्म, प्रकृति है और दर्शन 'स्व' का चैतन्य है अत: ये दोनों अनव्याख्यायित रह सकते हैं। ये बिना काव्य के भी रह सकते हैं परन्तु काव्य नहीं। शब्द और अर्थ आदि के गुरुत्वाकर्षण का भेदन इनके बिना काव्य नहीं कर सकता है। उच्चाश्रयी होने के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं अन्यथा काव्य, शब्द की जड़ता से ऊपर नहीं उठ पाएगा। काव्य का एकमात्र कार्य है व्यक्ति-मनस् और समष्टि-मनस् में समरसता स्थापित करना। यह समरसता जिस काव्य में जितनी ही उदात्त होगी उसमें उतनी ही अधिक काव्यात्मकता होगी। क्या इसमें मानवीय यथार्थ कहीं बाधक हैं? है, यदि यथार्थ ही काव्य का यात्रा-इष्ट हो जाए। यथार्थ को उसके गुरुत्वाकर्षण से बाहर ले जाना ही काव्य का इष्ट होना चाहिए, यथार्थ, जड़ता होती है और काव्य जब शब्द की जड़ता ही वहन कर सकता है तब अतिरिक्त जड़ता कैसे वहन करेगा? यथार्थ का भी परिशोध आवश्यक है। जिस दिन वृक्ष, ऊर्ध्व के आह्वान से विमुख हो जाता है उस दिन उसका जीवन और सत्ता दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। ऊर्ध्व का आह्वान ही वृक्ष को वृक्षत्व प्रदान करने वाला चैतन्य तत्त्व होता है। धरती की यथार्थिक जड़ता को भेदन करने वाला ही वृक्ष कहलाता है। काव्य भी अपनी सत्ता, पहचान, प्राणवत्ता और प्रयोजन सभी कुछ खो देता है जब वह केवल यथार्थमुखी ही रहता है। शुद्ध यथार्थ, मानवीय जड़ता ही तो है। जड़ता जब स्वयं उन्मुक्त नहीं हो पाती तब वह किसी अन्य को कैसे मुक्त या चैतन्य कर सकती है? यथार्थ की इस जड़ता का शोध, धर्म और दर्शन की भूमि पर ही सम्भव है। यथार्थ को धर्म और दर्शन दो डैने प्रदान करके ही काव्य अपनी काव्यात्मक यात्रा आरम्भ कर सकता है।

मानवीय वाद्य का नाम भाषा है। भाषा, शब्द-वीणा है। मनुष्य ने अपने 'स्व' के अनभिव्यक्त अर्थ को भाषा के निर्माण के द्वारा अभिव्यक्त किया। जिसका जैसा 'स्व' था, वैसी ही भाषा निर्मित हुई। भाषा में ही अस्मिता की गंध स्पष्ट होती है। भाषा, अर्थ को वहन करती है; न कि अर्थ, भाषा को। भाषा सार्वजनिक होती है, परन्तु अर्थ वैयक्तिक। भाषा का चूँकि सार्वजनिक प्रयोग होता है अत: मुख्य रूप से भाषा, सामान्यरूपा होती है, परन्तु अर्थ के निजत्व पर सामाजिकता का कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं होता। एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने पर भी सबके अपने-अपने निजी अर्थ हो सकते हैं। काव्य-भाषा मुख्य रूप से निजत्व वाली भाषा हुआ करती है। जितना बड़ा काव्यात्मकता का दबाव होता है, सामाजिक रूपा भाषा में उतना ही निजत्व उभरता है। सामाजिकता का सबसे कम दबाव वाला स्वरूप काव्य भाषा में ही होता है। भाषा में अर्थ का ऐसा निजत्व—उच्चारण, बलाघात शब्द-शक्ति आदि बातों से आया करता है। काव्य, चूँकि प्रस्तुत के तृतीय आयाम से लेकर अनन्त आयाम को दिखाने की चेष्टा होता है इसलिए काव्य भाषा को उसके दो आयामी वाले सामाजिक स्वरूप से भरसक अलग करता है। एक ही वाद्य और एक ही राग बजाए जाने पर भी विभिन्न वादकों को केवल सुनकर पहचाना जा सकता है। इसका कारण है उन वादकों का स्वरों के प्रति जो निजत्व है वही प्रमुख है। इसी प्रकार भाषा में भी यह निजत्व तथा अर्थ-भेद उसके प्रयोक्ता पर निर्भर करता है। साथ ही यह भी जान लेना जरूरी है कि किसी भी स्थिति में भाषा, शब्दातीत नहीं हो सकती। चूँकि अर्थ की कोई भाषा नहीं होती अत: अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए सम्पूर्ण सृष्टि भी भाषा हो सकती है। न बोलने या मौन की भाषा से हम परिचित ही हैं। मात्र देखना, अर्थ की दृष्टि से कितनी समर्थ भाषा है, इसका हम सबको अनुभव है। अत: भाषा या शब्द का कार्य है अर्थ का विस्तार और अर्थ का कार्य है व्यक्ति को मुक्त करना, किन्तु यह तभी सम्भव है जब अर्थ का विस्तार करने के बाद भाषा अपनी सत्ता विलुप्त कर ले और व्यक्ति को मुक्त करके अर्थ भी समाप्त हो जाय, परन्तु शब्द चूँकि जड़ होते हैं इसलिए उनमें स्वयं अर्थ नहीं होते। वे तो प्रयोक्ता के अर्थ को ही वहन किया करते हैं। यदि भाषा और शब्दों में स्वयं अर्थ होते तो इतनी भिन्न भाषाओं की आवश्यकता भी नहीं होती। भाषा, चूँकि जड़ होती है इसीलिए वह देश और काल से प्रतिबद्ध होती है, जबकि अर्थ नहीं, क्योंकि अर्थ की कोई भाषा नहीं। इसीलिए अर्थ, शब्दातीत ही नहीं, देश-कालातीत भी होता है।

इस भाषा-वाद्य के साथ एक कठिनाई यह भी है इसका आविष्कार हुआ है जबकि अर्थ, इस आविष्कार के पूर्व भी विद्यमान था। प्रत्येक शब्द को आरम्भ में ही हमेशा के लिए कुछ अर्थ दे दिये गये हैं। भाषा या शब्द, संख्या की दृष्टि से भी अनन्त नहीं हो सकते। जबकि अर्थ, मनुष्य की ही भाँति संख्यातीत भी हो सकता है और अनन्त आयामी तो वह है ही। इसलिए एक स्थिति के बाद हमारी भाषा हमारे अर्थ को पूर्णरूप से वहन नहीं करती है। भाषा का प्रयोग हम अपने अर्थ के सम्प्रेषण के लिए ही तो करते हैं, परन्तु जब हमारा अर्थ, भाषा के स्वरूप और शब्दता का अतिक्रमण कर रहा होता है तब हमें भाषागत प्रयोगों की आवश्यकता होने लगती है। प्रयोग का तात्पर्य ही यह होता है कि भाषा और अर्थ में दूरी कम से कम रहे। लेकिन यदि ऐसा करते समय केवल हम ही दोनों छोरों पर होते तब तो कोई कठिनाई नहीं थी, परन्तु दूसरे छोर पर जब हमसे भिन्न व्यक्ति सम्बोधित होते हैं तब इसका क्या प्रमाण कि सम्प्रेषित भाषा का उन व्यक्तियों में भी वही भाषा-संस्कार और अर्थ विस्तार हो रहा है जिसकी हमें अपेक्षा है? भाषा समस्त प्रयोग-क्रिया में से गुजरने के बाद भी एक निश्चित दायरे में रहने के लिए बाध्य है। उसकी सामान्य सामाजिकता को जिस प्रकार सम्पूर्ण रूप से दूर नहीं किया जा सकता उसी प्रकार शब्द को उसकी शब्दता से भी मुक्त नहीं किया जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए काव्य का अंर्थ वैसी ही भाषा में तद्वत सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि भाषा को शब्द-प्रधान नहीं अर्थ-प्रधान होना चाहिए, परन्तु यह कैसे सम्भव है कि भाषा में शब्द-प्रधानता भी न हो और अर्थ-प्रधानत्व भी आ जाए।

शब्द और अर्थ दोनों ही ध्वनि उत्पन्न करते हैं। शब्द की ध्वनि इन्द्रियगम्य है, परन्तु अर्थ की अनुभवगम्य। शब्द की ध्वनि को सामान्य स्तर पर गहा जा सकता है, परन्तु अर्थ की ध्वनि के लिए व्यक्ति-मानस् का उन्नत एवं संस्कारवान होना आवश्यक है। यह वैज्ञानिक प्रक्रिया है कि एक साथ दो ध्वनियाँ एक ही स्तर पर ग्रहण नहीं की जा सकतीं। शब्द की ध्वनि की परिसमाप्ति के बाद ही अर्थ की ध्वनि ग्रहण की जा सकती है। तब शब्द की शब्दता और ध्वनि को कैसे अर्थमय किया जाना चाहिए।

शब्द को ब्रह्म कहा गया है। शब्द का यह ब्रह्म क्या है? शब्द का यह ब्रह्मरूप, वर्णों का संयोजन है जो ध्वनि का परिमण्डल इसलिए विस्तृत करता है ताकि वह अपने वृत्त से बाहर जाए। अपने वृत्त का निर्माण तथा उसका भेदन करने के कारण ही शब्द को ब्रह्म कहा गया है। इसीलिए सवर्णी ध्वनियों से निर्मित शब्द को किसी भिन्नवर्णी या ध्वनि-संयोजन वाले शब्द से बदला नहीं जा सकता है। किसी भी सत्ता को किसी दूसरी सत्ता से नहीं बदला जा सकता है। भाषा में कलम नहीं लगायी जाती। भाषा, वर्णसंकरत्व नहीं वहन कर सकती है। भाषा के प्रति यह दृष्टिकोण रचनात्मकता का है। शब्द को यदि अपने तात्त्विक रूप में ही रहने दिया जाए और तब उसका रचना में प्रयोग हो तो निश्चय ही वह अपनी शब्दता का वल्कल उतारकर अर्थमय हो जाएगा। सही भाषा का तात्पर्य ही यह है। शब्द से अर्थ की ओर जाने की यह शब्दयात्रा किसी पर्याय के द्वारा सम्भव नहीं। पर्यायवाची शब्द के द्वारा काव्य सम्भव नहीं। शब्द का पर्याय स्वयं वही शब्द हुआ करता है। शब्द के अतिरिक्त पर्याय की तलाश का तात्पर्य है काम चलाना। काव्य में कामचलाऊ भाषा या शब्द नहीं, सही भाषा और शब्द की आवश्यकता होती है।

भाषा, भाषा होती है। भाषा न कठिन होती है, न सरल। जिस प्रकार कमल को कठिन फूल कहना और गेंदे को सरल कहना, जो कहा जाएगा वही इस सम्बन्ध में भी कहा जाना चाहिए। प्रश्न यह है कि हम किस रूप में—और किस स्थान पर तथा किस प्रयोजन के लिए भाषा का साक्षात करते हैं यह महत्त्वपूर्ण है और भाषा का स्वरूप भी इसी से निर्धारित होगा। भाषा में अर्थ, गरिमा, संस्कार आदि प्रयोक्ता के होते हैं। हमें भाषा या शब्दों तक जाना होता है। जिस सामान्य रूप में भाषा या शब्द हम तक आते हैं उनसे काव्यात्मकता की निष्पत्ति या सन्तुष्टि सम्भव नहीं।

अन्त में प्रस्तुत काव्य के बारे में यही कहना है कि यह जून १९७५ में लिखी गयी और उसके तत्काल बाद आपात-स्थिति की घोषणा के कारण मुद्रित हो जाने के बाद भी प्रकाशित न हो सकी। एक समय तो यह भी लगा कि यदि 'राज्यकृपा' को इसके मुद्रण की गन्ध भी मिल गयी तो सम्भव है कि यह कभी प्रकाशित रूप में सामने ही न आए। इतिहास ने करवट ली और इसके प्रकाशित होने पर प्रकाशक एवं लेखक दोनों की मुक्ति का अनुभव करें तो क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्य है! हाँ, ऐसा करने के पीछे इस रचना के वास्तविक प्रयोजन को थोड़े ही रूप में सही, उस भीषण-स्थिति का आभास दे सकने का मुझे सन्तोष है।

इति नमस्कारान्ते—
२२ मार्च, १९७७
९९-ए, लूकरगंज, इलाहाबाद

●

प्रार्थना पुरुष

प्रस्तुत गांधी-गाथा वस्तुतः एक इतिवृत्तात्मक लघु कृति है तथा इसकी सृजनात्मकता भी छान्दिक सरलता की है। वर्षों से गांधी जी पर एक प्रतीक-काव्य की योजना है, देखें कब फलित होती है।

मेरी मान्यता है कि महापुरुष, व्यक्ति नहीं हुआ करते, वे तो संस्कृति होते हैं। ऐसे पुरुष, देश पर काल चलते हैं। देश, सीमा को ही वहन कर सकता है, असीम को नहीं, इसलिए इतिहास-दृष्टि से इन्हें खण्डित रूप में ही देखा जा सकता है। कल तक गांधी हमारे साथ इतिहास में चल रहे थे, और आज वह हमारी स्मृति हैं। कुछ काल बाद यह स्मृति ही श्रुति बन जाएगी, और तब श्रुति को मिथक बनते क्या देर लगेगी! यह मिथकत्व ही समग्रता है। गांधी मिथक निश्चित ही बनेंगे और तब उनका दैनन्दिन कार्य-व्यापार, नगण्य को विराट बना देने की प्रतिभा—घटना, इतिहास और प्रतीक के छोटे-छोटे क्षितिजों को लाँघकर मात्र 'लीला' बन जाएँगे। काल की अबाधता और अगाधता में अहोरात्र सम्पन्न होने वाला केवल—उत्सव!! जिस प्रकार राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा प्रत्येक क्षण संवत्सर बनकर मनुष्य मात्र में घटित होते हैं। उसी प्रकार गांधी भी घटित होंगे।

इति नमस्कारान्ते—

●

शबरी

रचना की प्रासंगिकता

प्रत्येक रचना का अपना एक प्रयोजन हुआ करता है। 'शबरी' की रचना के पीछे भी निश्चित ही प्रयोजन-दृष्टि रही है। शबरी की कथा निम्नवर्ग की एक साधारण स्त्री के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों, चरित्रों में भी अपनी पहचान बनाये रखती है। रामायण में प्रयुक्त अन्य साधारण पात्र, अपनी प्रयुक्ति के बाद रचना के गतिशील फलक में विलीन हो जाते हैं, परन्तु शबरी जिस क्षण वाल्मीकि के द्वारा राम-गाथा में प्रयुक्त होती है उस समय तक वह अत्यन्त उच्च भाव-भूमि प्राप्त किये हुए होती

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। रचनात्मक प्रयुक्ति के क्षण में शबरी के लिए राम स्वतंत्र सत्ता नहीं हैं। साधना की यह परावस्था ही शबरी को सारे रामायणकालीन पात्रों में विशिष्ट बनाती है।

आदि-कवि वाल्मीकि का इस प्रसंग के पीछे सामाजिक प्रयोजन भी लगता है। प्रत्येक व्यवस्था का दोषमय होना उसकी नियति एवं प्रकृति है। वर्ण-व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं हो सकती थी। एक व्यक्ति किस प्रकार अपने चैतन्य की रक्षा इस सामूहिक ज़ड़ता से कर सकता है! यह प्रश्न आदि-कवि के युग में भी ज्वलन्त था तथा आज के वर्ग-व्यवस्था वाले समाज में भी ज़ीवन्त समस्या है। वाल्मीकि ने सामाजिक वर्ण-व्यंवस्था से ऊपर व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वत्व एवं असंग कर्म को प्रतिष्ठापित किया और शबरी वही बीज-चरित्र है। कवि की मानवीय दृष्टि ने ही शबरी के साधारणत्व को असाधारणत्व प्रदान किया। चरित्र की दृष्टि से शबरी, मन्त्र-चरित्र लगती है।

श्रम और कर्म में शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर भेद करना होगा। किसी भी व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की संप्राप्ति के लिए अपने श्रम को अगत्या कर्म में परिणत करना होगा। इस रूपान्तर के लिए दृष्टि की आवश्यकता होगी। वाल्मीकि ने शबरी के पात्र को यह दृष्टि प्रदान की और वह चरित्र बन गयी। तुलसी ने शबरी में मात्र भक्त की संभावना ही देखी। तुलसी राम में इतने व्यस्त थे कि अन्य पात्रों की आवश्यकताओं की ओर देखने का न तो उन्हें अवसर ही था और न ही इच्छा। इसलिए तुलसी की दृष्टि भाक्तिक होने पर भी पूर्ण उदार नहीं कही जा सकती, इसलिए आज के संदर्भ में प्रासंगिक भी नहीं लगती, जबकि वाल्मीकि की काव्य-दृष्टि अपनी मनुष्य-प्रधानता के कारण आज भी प्रासंगिक लगती है।

जिस युग की यह कथा है उस समय सामाजिक स्तर पर भले ही वर्ण-व्यवस्था का विधान रहा हो पर व्यक्ति, कर्म के द्वारा वर्ण-मुक्त होने की चेष्टा कर सकता था। शबरी की कथा में भी यही वर्ण-मुक्त होने की चेष्टा है। यह ठीक है कि इसके लिए व्यक्ति को संघर्ष (?) करना ही होता था। जिस समाज में हम रह रहे हैं उसमें वर्ण-व्यवस्था प्रधान है। वर्ण और वर्ग-मुक्त होने की हमारी सबसे प्रमुख समस्या है। सामाजिक वर्ण-व्यवस्था और वैयक्तिक कर्म विधान में एकता की चेष्टा सदा से कवि, विचारक, दार्शनिक और सुधारक करते आये हैं। आज की वर्ग-व्यवस्था वाली सामाजिकता को श्रम-विधान के द्वारा सुलझाने की चेष्टा निरन्तर की जा रही है। संघर्ष की भाषा में बदलाव आया है। वर्ग-मुक्त होने का तात्पर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को ही समाप्त कर देना मान लिया गया है। फलतः हमारा समाज श्रम और कर्म दोनों ही क्षेत्रों में वैसे ही भटक गया है जैसे कि तपते मरुस्थल में कोई सार्थ खो जाता है। आधारभूत समानता आज तक यह है कि सारी समस्याओं के मूल में मनुष्य ही है। मनुष्य का उल्लंघन करके न धर्म, न दर्शन और न राजनीति कोई भी अपनी दृष्टि प्रतिपादित नहीं कर सकते तब भला काव्य-दृष्टि यह कैसे कर सकती है? वस्तुतः काव्य-दृष्टि ही वह सेतु या भाव-द्वीप है जहाँ धर्म, दर्शन, राजनीति, इतिहास सबको एक साथ खड़ा किया जा सकता है। जिस प्रकार राजनीतिक या आर्थिक समता के बिना धर्म का 'सोऽहं' भाव निरा पाखण्ड है उसी प्रकार बिना धर्म या नैतिक मूल्यों के राजनीतिक या आर्थिक समानता निरी क्रूर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाशविक या अवसरवादिता है। धर्म की चैतन्य असंगता और राजनीति की पदार्थिक आसक्ति दोनों का उचित संयोजन ही काव्यात्मक मानवीय दृष्टि है। इसीलिए काव्यात्मक मानवीय दृष्टि की सम्यक या समरसता की पूर्ण सृजनात्मक दृष्टि है—शेष सारी दृष्टियाँ साम्प्रदायिकता या आग्रहीं दृष्टियाँ होंगी। अस्तु—

शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्म दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्ध्वता में परिणत करती है। यह आत्मिक या आध्यात्मिक संघर्ष, व्यक्ति के सन्दर्भ में मुझे आज भी प्रासंगिक लगता है। सामजिक मूढ़ता, परिवेशगत जड़ता तथा अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में व्यक्ति केवल अपने को ही जाग्रत कर सकता है। अपने को ही सम्बोधित कर सकता है। इसी संघर्ष के माध्यम से 'स्व' 'पर' हो सकता है; व्यक्ति, समाज बन सकता है। शबरी अपने वर्ण, वर्ग, समाज युग सबसे ऊपर प्रस्थापित इसी प्रक्रिया के द्वारा हो सकी। इस छोटे से खण्ड-काव्य में मैं अपनी बात को केवल संकेत में ही कह सका हूँ। क्योंकि मुख्य रूप से इसे किसी इतर प्रयोजन के लिए ही मुझसे लिखवाया गया, इसीलिए छन्दोबद्ध भी लिखा तथा रचना की संरचना में वैचारिकता भी कम ही आने दी। फिर भी अपने मूल प्रयोजन में यह रचना भी मेरे कवि का उतना ही प्रतिनिधित्व करती है जितनी की अन्य काव्य-कृतियाँ।

इति नमस्कारान्ते—
मई, १९७७
९९-ए, लूकरगंज, इलाहाबाद

—श्रीनरेश मेहता

102435

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Acc		
		2-3-98
etc		17-1-98
Filing		24/3/98
E A R		
Any other		3-3-98
Checked		

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीनरेश मेहता

श्रीनरेश मेहता आत्मज पं० बिहारीलालजी मेहता का जन्म 15 फरवरी 1922 को शाजापुर (मालवा) में हुआ। आरंभिक शिक्षा कई स्थानों पर हुई और बाद में माधव कालेज उज्जैन से इंटरमीडिएट किया। उज्जैन में ही आप स्वाधीनता-आंदोलन (1942) में छात्र नेता के रूप में सक्रिय हुए।

आपने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया। यहां आप पर अपने गुरु श्री केशवप्रसाद मिश्र का गहरा प्रभाव पड़ा। श्री मिश्रजी वेद एवं उपनिषदों के ज्ञाता एवं प्रकाण्ड पण्डित थे।

सन् 1948 से 53 तक आप आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर कार्यक्रम अधिकारी रहे। 1955 तक आप वामपंथी राजनीति से भी सम्बद्ध रहे। विद्यार्थी काल में वाराणसी से प्रकाशित दैनिक ''आज'' और ''संसार'' में कार्यरत रहे। सन् 1953 में सरकारी सेवा से मुक्त होकर कुछ समय के लिये गांधी प्रतिष्ठान से जुड़े और तत्पश्चात् राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के प्रमुख साप्ताहिक ''भारतीय श्रमिक'' के प्रधान सम्पादक रहे। साथ ही ''कृति'' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का सम्पादन किया।

सन् 1959 से 85 तक आपने इलाहाबाद में रहकर स्वतंत्र लेखन किया। 1985 से फरवरी 1992 तक प्रेमचंद सृजन पीठ के निदेशक रहे। प्रमुख दैनिक ''चौथा संसार'' के प्रधान सम्पादक भी रहे।

आपकी अभी तक काव्य, खण्डकाव्य, उपन्यास, एकांकी, कहानी, निबंध, यात्रा वृतांत आदि 40 रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। श्रीनरेश मेहता म.प्र. शासन, उ.प्र. शासन, साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित किये जा चुके हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं :

म.प्र. शासन सम्मान, सारस्वत सम्मान, म.प्र. शासन शिखर सम्मान, उ.प्र. शासन संस्थान सम्मान। 1985 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मंगला प्रसाद पारितोषिक, केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार, उ.प्र. शासन का सर्वोच्च ''भारत भारती'' सम्मान, म.प्र. नाटक लोक कला अकादमी द्वारा अलंकृत, म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन ''भवभूति अलंकरण'', और सन् 1992 में भारतीय ज्ञानपीठ का सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar